॥ ॐ ॥

नमःसर्वात्मने श्री जगदीश्वराय.

॥ * सुन्दरीसुधार * ॥

यह यथानाम तथागुण वाला महोपकारी सद्ग्रंथ ज़िला फ़र्रुख़ाबाद के पूर्व पाठशालाधीश

पण्डित गोपालरावहरिजी शर्मा ने

अति श्रम और शुद्धी के साथ बना कर

फ़र्रुख़ाबादस्थ.

गोधर्म प्रकाश यंत्रालय में मुद्रित कराया.

संवत् १९५१ वि०, सन् १८९५ ई०

प्रथम वार में, १००० जिल्द.	शमस्तु.	मौल्य प्रति पु० ।) मार्गव्ययादि =) है

विषयोपक्रमसूची.

———:*:———

यदिच इस ग्रंथ में सैकड़ों ही अति प्रशंस्य विषय हैं परन्तु विस्तारभयात् बहुत से अन्तर्गत विषयों का नाम छोड़कर यहां पर केवल ४० बड़े विषयों का ही नाम छांटकर प्रकाशित किया है अर्थात् इन्हीं में वे सम्पूर्ण उपविषय सब को विचारपूर्वक अवलोकन करने से देख मिलेंगे

॥ ऐसा समझा जाय ॥

विषयोपक्रमसूची.

—:※०※:—

निवेदन.

यदिच इस पुस्तक के शुद्ध होने में बहुत कुछ श्रम किया गया तथापि इस में दृष्टिचूक और छपने में जहां कहीं अक्षर वा मात्रा रह गई हों उन को सब सज्जन लोग कृपा करके सुधार लेवें—अलमति विस्तरेण विचारशीलेषु विद्वत्सु ॥

॥ * ओ३म् * ॥

॥ अथ भूमिका ॥

——:***:——

॥ उशना वेद यत् शास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः ॥
॥ स्वभावे नैव तत् शास्त्रं स्त्रीबुद्धौ सुप्रतिष्ठितं॥

विदित हो कि जिस देश की स्त्रियों की प्रशंसा ऊपर लिखे अनुसार सुदीर्घकाल तक यह देखी व सुनी जाती थी कि जिन शास्त्रों को देवासुरों के गुरू बृहस्पति और शुक्राचार्य ऐसे महाविलक्षण बुद्धिवान् विद्वानों ने बहुत परिश्रमों से जाना उन शास्त्रों को हमारे यहां की स्त्रियें अति स्वल्प परिश्रम के साथ अर्थात् बात की बात में हस्तामलकवत् सदा कर लिया करतीं थीं मानों सृष्टिकर्ता परमेश्वर उन को जन्म देने से पूर्व वे समस्त महा क्लिष्ट शास्त्र समझा बुझाकर ही यहां उस काल भेजता रहा इस बात को मिथ्या वा अत्युक्ति कहने का भी कभी कोई साहस न करे क्योंकि उस काल की गार्गी आदि अनेक स्त्रियों के व्याख्यान और इतिहास आज तक प्रत्यक्ष ऐसे विद्यमान हैं कि जिन को देख कर बड़े २ विद्वान् चक्कर में पड़ जाते हैं अर्थात् वे सब ग्रंथ उन की बुद्धिमत्ता की स्पष्ट यह साक्षी दे रहे हैं कि निःसंदेह हमारे यहां की स्त्रियें वैसीं हीं विलक्षण विदुषी और बुद्धिमती हो गई हैं जैसी कि ऊपर उनकी प्रशंसा कीगई है * ॥

परंतु महाशोक का विषय यह है कि उसी देश में उन्हीं समस्त देवता रूप स्त्रियों की सन्तान को आज दिन हम समस्त भारत निवासी बहुधा बहुत ही निंद्य देख सुन रहे हैं सौ में २५ घर तक अब ऐसे नहीं मिलते

* इन के इतिहासों में की बहुतसी कथा आगे इसी पुस्तक में लिखी मिलेंगीं तथा हालही में हुई इन्दौर की रानी अहिल्याबाई का सुचरित्र मगाकर तनक देख लिया जाय ॥

कि जहां के पुरुषों को स्त्री जाति से वैसा सुख प्राप्त होता हो जैसा कि होना आवश्य है अर्थात् जिधर देखो उधर इन के मारे हाय तोबा पड़ रही है सैंकड़ों भाषा और संस्कृत के आधुनिक ग्रंथों में इन के दुष्ट स्वभाव की निंदा दीखने लग गई है जहां इन को रामा, रमणी, प्रिया, प्रियतमा, कुलवधू, वा पतिव्रता आदि विशेषण मिलतेथे तहां स्पष्ट अब इन को दुष्टा, कलहा, क्रूरा, कर्कशा, कृत्या, ग्रामीणा, पापिणी, सर्पिणी पतिघ्नी, कुलघ्नी, राक्षसी, पिशाचिनी, प्रतीपदर्शिनी गृहविनाशिनी वा कुलभ्रष्ट आदि विशेषण मिलने लगगये हैं महाराज भर्तृहरिजी कहते हैं "संसारतवनिस्तारपदवीनदवीयसी—अन्तरादुस्तरानस्युर्यदिरेमदिरेक्षणाः" कि इस संसार सागर का तरना मनुष्य मात्रको इन पाषाणमयी नौका अर्थात् महादुष्टा स्त्रियों के मारे महा कठिन होगया है यदि ये स्त्रियें सन्मार्ग गामिनी हों तो सब लोग उसे बड़ेही आनन्द से तरजाने सक्ते हैं तथा दूसरा कोई महादुखिया भाषा कवि बड़े शोक के साथ आह भरकर कहता है—"पटपांखें भख कांकरें सदा परेई संग—सुखी परेवा जगत में तूही एक बिहंग" कि इन सब महादुखिया मनुष्यों की अपेक्षा इस जगत् में केवल एक परेवा ही (कबूतर) अत्यन्त सुखी देखाजाता है क्योंकि उसकी स्त्री परेई सदा कंकर खाकर उसके अति अनुकूल देखी जाती है।

सारांश इस कथनका भी यही है कि हमारी स्त्रियें उक्त कबूतरी के समान निर्विवाद सहकारिणी व प्रेमवती बन सदा अर्थात् हर अवस्था में स्वयं सुखी व संतुष्ट रह कर अपने पति के अनुकूल इस काल में नहीं बर्तेतीं—इस कारण उन के पुरुषों की बड़ी ही ख्वारी हो रही है वे आठो याम त्राहि त्राहि की आह भर रहे हैं दिनों दिन यह रोग इस भारत में बढ़ रहा है अनेक विद्वान् बुद्धिवान्, चतुर, अधिकारी, रोज़गारी व इतर सर्वैश्वर्यों से समृद्ध सत्पुरुषों तक को यह महा आपत्ति सतारही है प्रलय के दिन पास नहीं न मांगे मौत मिलती है, समझाना बुझाना काम नहीं देता इस भांत सोच विचार में पड़ा प्रत्येक विपत्ति कर्शित पुरुष दिनों दिन छीज रहा है कहो इस का परिणाम क्या होगा और क्या यों यह महा रोग इस देश से दूर होजाने सक्ता है ? कदापि नहीं किंतु उलटा दिनों

दिन बढ़कर अतिसत्वर हमारे भारत को गारत कर छोड़ेगा— नीचे * नोट में लिखे वचनों के आधार पर होनहार को प्रबल समझ राम २ कहना वा "हुइ है वही जो राम रच राखा" के विश्वास पर चुप हो रहना भी इन दिनों महा मूर्खता ठहरती है अतः किया जाय तो क्या किया जाय और कैसे यह सिर चढ़ी बला दूरहो ॥

इस प्रकार बहुकाल से सोच विचार रहा था कि इतने में एक दिन परम दयालु सर्वांतर्यामी श्री जगदीश्वर ने "इत्थं तत् भुवि नास्ति यस्य विधिना नोपाय चिंता कृता" इस महामंत्र × का उपदेश मेरे अंतःकरण में समुपस्थित कर दिया उस समय मेरे आनन्द की सीमा न थी तात्काल उस अनंत शक्ति का बहुतसा बहुवार धन्यवाद करके मैंने दूसरे ही दिन से इस ग्रंथ के बनाने का आरंभ कर दिया बस यही सद्बुद्धि उस करुणा वरुणालय ने उस समय मुझे उक्त अज्ञानजन्य रोग के निवारणार्थ मानो समर्पण की और उस के सहारे यह महा महौषधि रूप ग्रंथ उस परमदयालु की कृपा से निर्विघ्न तयार भीहोगया यदि च यह पुरुषों को भी बहुत लाभ पहुंचा सक्ता है परन्तु मेरा मुख्य उद्देश्य स्त्रियों का सुधार

---

* प्राप्तेकलियुगेघोरे नराःपुण्यविवर्जिताः ॥ दुराचाररताःसर्वे सत्यवार्ता पराङ्मुखाः ॥ १ ॥ स्त्रियश्चप्रायशोभ्रष्टा भर्त्रवज्ञाननिर्भयाः ॥ श्वशुरद्रोहकारिण्यो भविष्यंति न संशयः ॥ एतेषांनष्टबुद्धीनां परलोकःकथंभवेत् ॥ कोई भविष्यद्वक्ता किसी महात्मा से प्रश्न करता है कि महाराजजी घोर कलि में संपूर्ण पुरुष महा दुराचारी और उनकी समस्त स्त्रियें, सास, ससुर और पति से निडर होकर उनसे निःसंदेह नाना प्रकार के वैरभाव करने लगजावेंगीं उस समय उन नष्ट बुद्धियोंकी सद्गति कैसे होगी ? उत्तर मिला राम नाम के आधार से ॥ यहां पर शोक इतनाही है कि उस ने इस लोक के बनाव की चिंता कुछ भी न की क्योंकि परलोकका बनाव वा बिगाड़ इसीलोककी कृतिकेअनुकूलकहाहै

× इस महा मंत्रका तात्पर्य यह है कि हेमनुष्यो पृथ्वी पर ऐसी कोई भी चिंता वा विपत्ति नहीं जिस का उपाय उस सृष्टि कर्त्ता ने तुम्हारे लिये न रच दिया हो किंतु केवल उस के सोचने का श्रम स्वीकार करो ॥

होना है अतः इसका नाम सुंदरी सुधारक वा सुंदरी सुधार धरने में आया इस में स्त्री पुरुषों का पूर्ण हित करने वाले नाना प्रकार के शतशः विषय हैं उन सब विषयोपविषयों का मूल प्रथम संस्कृत में लिख दिया है परन्तु उस का भाषार्थ सर्वत्र मूल के प्रत्येक पद वा विभक्ति के अनुकूल ही हो ऐसी प्रायः आवश्यकता नहीं रक्खी अर्थात् प्रकरणानुसार यथावसर उस में न्यूनाधिक्य हुआ है तथा कथानक में के श्लोकों का अर्थ वहुत ठौर जैसा आगे पीछे करने में आया है उसी प्रकार कहीं २ वह विस्तारभीत्या छोड़ भी दिया है तथा कहीं २ सुचना मात्र को कुछ श्लोक धरकर संपूर्ण कथानक यथावत् कह दिया गया है ॥

सारांश संस्कृत के पद्य वा पदादि का अर्थ यहां पर आवश्यकतानुरूप लेकर कार्य करने में आया है तदनुकूल अथवा "विषादप्यमृतं ग्राह्यं वालादपि सुभाषितं" इस न्याय के अनुसार यदि समस्त विद्वज्जन अपनी सुधा प्रपूरित कृपादृष्टि से इसकी समालोचना करेंगे तो अवश्य यह ग्रंथ बहुतही लाभकारी होगा, इतनाही नहीं किंतु इस ग्रंथके प्रचारसे होनेवाला जो जगत् सुधार उस के श्रेयोपभोक्ता वेही समस्त महाशय बनकर "बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः,, इस महा निंद्य लोकापवाद से भी वे अपने तईं मुक्तकरलेवेंगे ॥

इस व्यतिरिक्त यहां पर यह भी निवेदन कर देना परमावश्य है कि इस में जहां कहीं किसी कथा का कोई अंश सत्शास्त्र वा सृष्टिक्रम के विरुद्ध वर्णन हुआ देखने में आवे उसे समस्त सत्पुरुष ऐसा सार्थक करलें जैसा कि बहुमौल्य वस्त्र पर का तुच्छ वेठन वा सर्वोत्तम आम्रादिफलों पर का छिलका अथवा मनुष्यवत् पशु पक्षियों के बोल चाल की कोई कहानी लाभप्रद समझ लीजाती है ॥

एवमेव इस के प्रचारक व अध्यापक महाशयों से प्रार्थना है कि वे प्रथम इसे स्वबुद्धिस्थ करें पश्चात् सब को ऐसा समझा कर पढ़ावें वा सुनावें कि जिस से सब के हृदय का अंधकार अवश्य दूर हो जाय तथा विशेषतः इस की लंबी व रमणीय कथाओं को स्त्रियों के समुदायों में अधिक तर सुनाए जाने के अवसर सदैव सर्वत्र समुत्पन्न करते व कराते रहें तथा स्वयं समुपस्थित होने वाले प्रसंगों को भी कभी खाली न जाने दें और

यदि नियम पूर्वक प्रति दिन यह क्रमशः कहीं सुनाई जाय तो बहुत ही अच्छा हो उस समय जिन शब्दों वा पदों के नीचे लकीरें खिचीं देखें उन को खूब ज़ोर देकर समझाना परमावश्य समझें—रहे पढ़ने वाले लड़का लड़की अथवा स्त्री पुरुष उन को इतना ही समझाना वा सुचेत करना बहुतहै कि वे धीरे २ ख़ूब चित्त लगाकर इसे पढ़ें और इस में जो कुछ कि करने को कहा है सो अवश्य सदा करें व सुखी हों ॥

नाकेषुनिधिचन्द्रेऽब्दे चैत्रेमासेऽसितेदले ॥
द्वादश्यांभौमवारेच ग्रंथारंभःकृतोमया १ ॥

विदित हो कि इस पुस्तक के आरंभ की तिथि विक्रमी संवत १९५० के चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की १२ मंगलवार अर्थात् ३ अप्रैल सन १८६४ ई० है—जिन महाशयों के प्रोत्साह और सहायता से यह सर्वांग सुंदर सद्ग्रंथ, अति सत्वर सब को सर्वत्र नाना विध प्रमुदित करने को प्रगटा उन का बहुतसा धन्यवाद करके इस भूमिका की परिसमाप्ति करता हूं अतःपर जिन को इस के संग्रह की सदिच्छा हो वे महाशय मुझ ग्रंथकार वा मु० चिंतामणि बुकसेलर नगर फर्रुखाबाद से सदैव मगाते रहें परंतु इस की जिंस प्रति पर मेरी मुहर दुतर्फा लगी न पावें और वह नियत पुरुषों की मेर्जी भी न हो तो उसे चोरी की समझ तुरंत मेरेसमीप भेज कर नियत पारितोषिक प्राप्त करें तथा समझें कि मद्रचित समस्त पुस्तकादि के छपाने का अधिकार मैंने मेरे उत्तराधिकारियों के सिवाय आगे के लिये किसी अन्य स्त्री पुरुषों के हाथ नहीं दिया—अलमति विस्तरेण विद्वद्वर्येषु ॥

ह० गोपालरावहरिः शर्मा, मंत्री
वैदिक समाज—फ़र्रुखाबाद.

—:***:—

॥ अथ ग्रंथारंभः ॥

—:***:—

। प्रार्थना ।

ओ३म् शंनः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शंन श्चतस्त्रः प्रदिशो भवंतु ॥ शंनः पर्वता ध्रुवयो भवंतु शंनः सिंधवः शमु संत्वापः ॥ १ ॥

॥ * ओ३म् शांतिः * शांतिः * शांतिः * ॥

॥ वैवाहिको विधिः स्त्रीणां—संस्कारोवैदिकःस्मृतः ॥

विदितहो कि अपने परमपूज्य वेदों में कहे १६ संस्कारों में से केवल एक विवाहविधि नामक संस्कार, स्त्री जाति के लिये बड़ाही उपकारी है अतः आरम्भ से उसका परिज्ञान हमारी सब बहू बेटियों को होना व कराना परमावश्यकहै क्योंकि वही उनके सुधार और समस्त सुखोंकाआदिकारणहै ॥

ब्राह्मोदैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥
गांधर्वोराक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ १ ॥
ब्राह्मादिषुविवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ॥
ब्रह्मवर्चस्विनःपुत्रा जायंतेशिष्टसंमताः ॥ २ ॥

रूपसत्वगुणोपेता धनवंतोयशस्विनः ॥
पर्याप्तभोगाधर्मिष्ठा जीवंतिचशतंसमाः ॥ ३ ॥
इतरेषुतुशिष्टेषु नृशंसान्रृतवादिनः ॥
जायंतेदुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषःसुताः ॥ ४ ॥
गुरुणानुमतःस्नात्वा समावृत्तोयथाविधि ॥
उद्वहेतद्विजोभार्यां सवर्णांलक्षणान्विताम् ॥ ५ ॥
असपिंडाचयामातु रसगोत्राचयापितुः ॥
साप्रशस्ताद्विजातीनां दारकर्मणिमैथुने ॥ ६ ॥
अव्यंगांगींसौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ॥
तनुलोमकेशदशनां मृद्वंगीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥ ७ ॥
उत्कृष्टायाभिरूपाय वरायसदृशायच ॥
अप्राप्तामपितांतस्मै कन्यांदद्याद्विचक्षणः ॥ ८ ॥

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियंत्यापः ॥ स शुक्रेभिः शिक्वभिरे वदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ २ ॥

भावार्थ—सब सज्जन स्त्री पुरुषों को विदितहो कि धर्मशास्त्रज्ञ शिरोमणि मनु भगवान् ने आठ प्रकार के विवाह बताए हैं उनके नाम (१) ब्राह्म (२) दैव (३) आर्ष (४) प्राजापत्य (५) आसुर (६)

गांधर्व (७) राक्षस और (८) पैशाच, हैं-इनमें से प्रथम के ४ उत्तम बाकी में से २ मध्यम और २ महानिंद्य हैं। इन दिनों अपने यहां जो विवाह की रीति प्रचरित है वह ब्राह्म विधि है। उत्तम कहे विवाहों से सर्वोत्तम सुस्वरूप सद्गुणी और पूर्णायु और मध्यमों से मध्यम और अधमों से महा अधम पुत्रों की उत्पत्ति होती है इसलिये कभी किसीको निषिद्ध विवाह के करने में प्रवृत्त न होना चाहिये। अपने यहां सदा से वेदशास्त्रानुकूल यह रीति चली आती थी कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य जाति (वर्ण) को पूर्ण ब्रह्मचर्याश्रम करना पड़ताथा अर्थात् जब तीनों जाति के लड़के लड़कियां विद्या, वय, शील, बल, शरीर, और आत्मा आदि के समस्त सद्गुणों से खूब संपन्न होजाते थे तब वे गुरु की आज्ञा लेकर घर आके गृहस्थाश्रमी होते थे अर्थात् फिर वे अपना विवाह करते थे ॥

उस समय उन के माता पिता वा कोई संबंधी अथवा वे खुद इस कार्य के करने में इस रीति प्रवृत्त होते थे कि यदि कम से कम कन्या की उमर १६ वर्ष की हो तो वर की उमर उस से डेवढ़ी वा दूनी तक हो और वे दोनों रूप, रंगत गुण, विद्या और स्वभाव में समान हों तथा आपस में एक को दूसरे की चाह और प्रीति भी अति हो तथा उन में किसी प्रकार का रोग वा ऊपर के श्लोकों में कहे ऐब न हों और वे परस्पर माता वा पिता के छः पीढ़ी में की संतानों में न गिने जाते हों तथा गोत्र कुल और प्रवरों की भी शुद्धी उन में साफ़ २ पाई जाती हो-ऐसा स्पष्ट अभिप्राय ऊपर लिखे वैदिक व शास्त्रीय प्रमाणों का है और इसी प्रकार और भी बहुत से कन्या के लक्षण विचार योग्य उन्हों ने अपने ग्रंथ में कहे हैं ९ ॥ इस के अनुकूल इस कार्य के करने वाले सदा सुखी और विरुद्ध करनेवाले सदा अति दुखी रहेंगे सो सब प्रत्यक्ष देखतेही हैं-परंतु जो ज़बर्दस्ती अंधे वा बहरे वा गूंगे बनें उन से क्या कहा जाय-परमात्मा उन पर अपना अनुग्रह करके उन को विचारबुद्धि समर्पण करे जिस से स्वदेश का यथावत् हितहो ॥

यावत् ऐसी सद्बुद्धि माता पिता में न उपजे तावत् सब समझदार लड़के लड़कियां इस पुस्तक में लिखे समस्त सद्गुणों पर चित्त जमाकर बने उस रीति अपना हित सिद्ध करें ॥

॥ अथ वैवाहिकमंत्राः ॥

ओम्—गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदृष्टिर्यथा सः ॥ भगो अर्यमा पुरंधि र्मह्यं त्वा दुर्गार्हं पत्याय देवाः ॥ १ ॥

ओम्—भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत् ॥ पत्नी त्व मसि धर्मणा हं गृहपतिस्तव ॥ २ ॥

ओम्—आरोहे म मश्मान मश्मेव त्वं स्थिरा भव ॥ अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतना यतः ॥ ३ ॥

ओम्—मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्त मनुचित्तं ते अस्तु ॥ मम वाच मेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यं ॥ ४ ॥

ओम्—अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना ॥ बध्नामि सत्यग्रंथिना मनश्च हृदयं च ते ॥ ५ ॥

॥ तत्वार्थ निरूपणं ॥

यह तो सभी जानते हैं कि संतानोत्पत्ति के अर्थ किसी एक पुत्र का उस की सवर्णा किसी एक कन्या से बड़ी धूम धड़के के साथ संयोग कर देने का नाम विवाह है परंतु उस समय अपने धर्म के अनुसार जो कन्या के मंडप के नीचे कन्यादान भए पीछे बहुत सा होम हवन करकराकर तमाम रात दोनों ओर के पुरोहित लोग बार बार बहुत से वेद मन्त्रों को बड़े ज़ोर से बोल २ कर और क्या २ कृत्य कराते हैं इसकी किसी पक्ष के किसी स्त्री पुरुष को ख़बर ही नहीं पड़ती—यदि कहो कि इनको उन कृत्यों से तादृश संबंध ही नहीं अतः उनका न जानना एक स्वाभाविक बात है—

सो कहना ठीक नहीं ठहरता क्योंकि यह वार्ता सब से ऐसा नित्य संबंध रखती है जैसा रोटी का खाना वा वस्त्रों को पहनना अर्थात् अनेकबार देखने के सिवाय उन सब को अपने २ विवाह में वैसा करना भी पड़ा है- सो उन्हों ने क्या किया? और क्यों किया? इन दो प्रश्नों का उत्तर प्रत्येक विवाह हुए स्त्री पुरुष को विवाह की तिथि से देना सर्वथा उचित है परंतु शोक कि इस विषय में हमारे देश की चारों दिशा, गाढ़ांधकार में डूबी पड़ी हैं-ऐसी दशा तक विवाहविधि का करना ही व्यर्थ है क्योंकि उसमें का धर्मसार अर्थात् पतिव्रताचरण, उन्हों ने न जाना तो जाना ही क्या? यदि विवाह किया वा हुआ कहो तो अवश्य उसे जानो अन्यथा पागलों में गिने जाओगे इतना ही नहीं किंतु उसके न जानने से हजारों हानि के साथ हम सब स्वदेश निवासियों की गिन्ती जंगली मनुष्यों में होना अधिक बुराई है और इसके मूलकारण बालविवाहप्रचारक श्री पुरोहित जी महाराज हैं कि जो दक्षिणा तो हर ठौर की झगड़ २ कर लेवें लेकिन उन कृत्यों और उनके मंत्रों का महाप्रशंस्य जो तत्व सो किसी को कभी स्वप्न में भी न सुनावें परंतु सत्यवार्ता तो यह है कि जो बिचारा जिस बात को ख़ुद ही न जाने वह उसे दूसरों को क्या समझावे-शोक, शोक, शोक ॥

कहो कैसे इस देश का पटपड़ न हो अस्तु हमने यहां ऊपर बतौर बानगी के उस प्रकार के बहुत से मंत्रों में से ५ मंत्र लिखे हैं उनका तत्वार्थ अब नीचे लिखते हैं उसको सब लोग यदि अच्छीतरह ध्यान में रक्खें तो कभी किसी स्त्री पुरुषों के बीच किसी प्रकार के विरोध की एकाएक नीव ही न जमे और जो कदाचित् जमे तो दूसरों के समझाने से वह तुरंत दूर भी होजाय, ऐसा उनका सच्चा प्रभाव है ॥

(१) अथ विवाहविधि व्याख्यायते ॥

विदित होकि हवन, पाणिग्रहण, प्रदक्षिणा, सप्तपदी, परस्पर प्रतिज्ञा,

(१) यहां से समाप्ति तक जितना यह प्रकरण है उसका अपने सब स्त्री पुरुष सदैव अच्छी तरह स्मरण रक्खें-ऐसा प्रयत्न यहां के सब समझदार लोग अवश्य करें अन्यथा कभी सुधार न होगा ॥

ग्रंथिबंधन, ध्रुवादितारादर्शन, नामक सब मुख्य ७। ८ कृत्य हैं-सो ये सब विवाह में वधू वर के हाथों से इसलिये यथाक्रम कराए जाते हैं कि जिस से वे दोनों किसी समय में भी चल विचल न होसकें-जैसे पट्टा या ठेका आदि के लेने देने वाले मनुष्य कभी आपस में ठहरी हुई बातों में कच्चे न पड़जांय इस विचार से वे दस मनुष्यों के बीच पुख्ता कागद पर मनमानी लिखा पढ़ी व रजिष्टरी कराकर पूर्ण निश्चिंती के साथ अपना व्यवहार चलता करदेते हैं-उसी प्रकार बल्कि उस से बढ़कर निश्चिंती इन वधू वरों के जन्म की उक्त कृत्यों के द्वारा इस कार्य में करादी जातीहै-क्योंकि उक्त लेख में केवल राजा का और इन दोनों के पीछे राजा के सिवाय स्वधर्म व स्वपंच, व सर्वव्यापक श्री परमेश्वर का भी पूरा २ डर लगा रहता है परंतु महाशोक की बात ऊपर लिखे अनुसार भाई यह है कि हमारे यहां के स्त्री पुरुषों को तो खबर ही नहीं कि हमने आपस की प्रीति, बरकरार रखने के अर्थ स्वधर्म पुस्तक की रीति से अग्निदेव को बीच में देकर सब पंचों के सन्मुख वेद मंत्रों के द्वारा हरएक ठिया पर आपस में क्या २ क़ौल क़रार किये हैं और यदि अब हम आयंदा जन्म भर उन से वाक़िफ़ न रहेंगे वा उनको नहीं निभावेंगे तो वह सर्व शिक्षक परमेश्वर इस बेई-मानी का क्या, क्या प्रतिफल हमको नहीं चखावेगा (२) अस्तु अब सुनो उक्त मंत्रों का फलितार्थ जिस से मनुष्यजन्म की सार्थकता हो ॥

"सख्यं कृत्वाग्नि साक्षिकं-अपने यहां प्राचीन रीति चली आती है कि किसी विशेष कार्य में किसी से मित्रता जोड़नी होय तो अग्निदेव को उसका साक्षी बनालेते हैं तदनुसार प्रथमतः सिद्ध व हुत व प्रदीप्त अग्नि-देव को अपना साक्षी बनाकर वर, वधू का हाथ पकड़कर परस्पर मैत्री जोड़ने के लिये बहुत सी प्रतिज्ञा करता व कराता है अतः इस कृत्य का

(२) ऐसा भय परमात्मा का अपने यहां की सावित्री आदि जितनी पतिव्रता स्त्रियें आज तक होगई हैं उन्हों ने बराबर आठ प्रहर माना तब उन से ठीक २ पतिव्रत-धर्म सधा ऐसा निश्चय समझ सब सज्जन स्त्रियें वैसाही भय उस सर्वांतर्यामी परमेश्वर का मानें और ठीक अपने विवाह विधि के अनुकूल चलें तब उनका हित होगा ॥

नाम पाणिग्रहण है—ऊपर लिखे प्रथम व द्वितीय मंत्र इसी के हैं—उनका स्पष्टार्थ यह है कि हे वधू—समस्त जगत् के कर्ता धर्ता परमेश्वर और समुपस्थित पंचदेवों ने मुझे तू सौंपी है इसलिये मैं इन सब के सन्मुख तेरा हाथ पकड़कर कहता हूं कि तू यावज्जन्म मुझे अपना पति समझ और सदैव मेरे अनुकूल रहकर मेरे गार्हस्थ धर्म को चला जिससे मैं प्रसन्न रहकर तुझे यावज्जन्म सब प्रकार के सुख सौभाग्यों से सुखी रक्खूं—फिर कहता है कि हे वधू तू आज से मेरी पत्नी और मैं तेरा महाप्रेमी पति हुआ इसलिये तेरा हाथ पकड़ कर बहुत सत्य व स्पष्ट कहता हूं कि हम तुम आज से ऐसी सर्वोत्तम मित्रता के साथ बर्तें जिस से अपने गृहस्थाश्रम संबन्धी सब कार्य्य बहुत सुख व प्रशंसा के साथ निभें अर्थात् कभी कोई विवाद वा कटुभाषण वा अप्रियाचरण तेरा देखने में न आवे।

"सतां सप्तपदी मैत्री—कहते हैं कि सज्जनों की सच्ची मैत्री केवल सात पैंड धरती संग २ चलने से ही जुड़जाती है—तदनुसार विवाह में पुरुष, स्त्री का हाथ पकड़कर उसे अपने साथ ७ पांव चलाता है उस समय उस से प्रथम एक पाषाण शिला पर पांव धरने को वह कहता है—इस सप्तपदी नामक कृत्य का ऊपर लिखा तीसरा मंत्र है—उसका भाव यह है कि हे वधू इस शिला पर चढ़कर तू समझ कि यह शिला कैसी दृढ़, स्थिर और अचल है इसी प्रकार आज से तू चांचल्य धर्म को छोड़कर अचल बुद्धि और अचल चित्त के साथ मुझ से दृढ़ मैत्री करके मेरे घर के सब दुःख दरिद्रों को निकाल और मुझे सुखी करती हुई स्वयं पूर्ण सुखी हो।

इसी प्रकार आगे स्त्री को ध्रुवतारा दिखाकर तत्सम उसको चित्त स्थिर रखने के अर्थ सुचेत करते और अरुंधती नाम की तारा दिखाकर उस नाम की देवी के समान विदुषी और पतिव्रता और चन्द्र के समान प्रसन्नमुखी व शांतिप्रदा और सूर्य के समान तमोहंत्री व कुलप्रकाशिका व उपकर्त्री होने का उपदेश करते हैं।

अब रहे दो मंत्र सो प्रतिज्ञा के हैं—उनका अर्थ यह है कि हे वधू जैसा मेरा हृदय व्रत और चित्त आदि है वैसाही सब तू अपना कर लेने की प्रतिज्ञा इन सब के सन्मुख कर और जिस प्रकार मैं तुझे रक्खूं और जो

कुछ कि मैं कहूं उसी प्रकार एकाग्रमन होकर तू रह और वैसाही सब कर क्योंकि इसीलिये परमेश्वर ने तुझे मेरे आधीन किया है—इस पर स्त्री कहती है कि हे प्रियवर—मैं अपने मन, चित्त, और हृदय को आप के मन, चित्त और हृदय के साथ सत्य ग्रंथि देकर ऐसा पोढ़ा बांधती हूं कि आगे वह कभी किसी तरह खुले ही नहीं और फिर उनका ऐसा परस्पर संबंध जोड़ती हूं जैसा कि अन्न और प्राणों का अर्थात् जैसे प्राणों को अन्न की सदैव चाह रहती है—वे कभी उस के बिना ठहर ही नहीं सक्के उसी प्रकार मेरे प्राणों के आधार आप सदा रहेंगे आदि आदि ॥

बस इसी प्रकार प्रदक्षिणा और हवनादि क्रियाओं के द्वारा नाना प्रकार से अग्निदेव का माहात्म्य वधू को समझाकर अपनी संपूर्ण मनोकामना और की हुई प्रतिज्ञाओं के सिध्यर्थ सर्वनियंता श्रीजगदीश्वर की अनेक प्रकार से स्तुति व प्रार्थना की जाती है और वारंवार स्त्री को बोध किया जाता है कि हे वधू इस जगत् में अग्निदेव के समान और कोई पदार्थ हमको वा तुमको परिपूज्य नहीं है अतः सब झगड़ों को भूलकर परमेश्वर के संतोषार्थ आठो प्रहर इस संसारसंतारक अग्नि को प्रत्येक गृहस्थाश्रमी सदैव अपने घर रक्खे और दोनों काल इसमें विन चूक आहुति दिया करे—ऐसी विवाह के संबंध में वेदों की प्रत्यन्त सर्व हितकारी आज्ञाएं हैं (३) उन सब को हमारी सब स्त्रियें अच्छी तरह समझें और सुखी हों—इस विचार से जैसा कि यहां ऊपर हम ने वेदों का आशय

(३) "सा स्त्री यानु विधायिनी,, इस वाक्य का अर्थ यह है कि जो स्त्री ठीक २ इन ऊपर लिखी आज्ञाओं को सदा मानती व पालती अर्थात् अपने विवाह में की हुई अपनी प्रतिज्ञा के अनुकूल जन्मभर अपने प्रिय पति की ठीक २ इच्छानुसार हरघड़ी चलती है वही सच्ची स्त्री कहाती है और उसी को सब लोग पतिव्रता कहते हैं और जिस स्त्री को यह अनमोल पतिव्रता पन की पदवी प्राप्त होती है उस के सब जन्म जन्मांतर सदैव के लिये सुधर जाते हैं बस यही स्त्री जाति का मुख्य कर्तव्य है जो इस पद को नहीं पहुंचती वह महा पापिन अपने सर्वोत्तम स्त्री जन्म को व्यर्थ करके शुनी वा शूकरी के समान भयी व गई समझी जाती है सो

दर्साया उसी प्रकार आगे उन को इतर शास्त्रीय ग्रंथों का आशय दिखा कर परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह हमारा अभीष्ट अति सत्वर सिद्ध करें इति विवाह विधिः ॥

॥ अथ धर्मशास्त्रादि ग्रंथ विचाराः ॥

॥ १ ॥ श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यव धार्यतां ॥
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

भा०—ठीक वेद वेदांगों के जानने वाले बड़े २ महर्षिगण, मनुष्य मात्र के हित के लिये उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो आज हम तुम को संपूर्ण धर्म का मुख्य सार सुनाते हैं उसे तुम चित्त लगा कर अच्छी तरह सुनो, समझो और फिर ठीक २ उसी के अनुसार जन्मभर चलो—वह यह है कि जो चाल वा बात वा काम आदि कार रवाई दुनिया प्रतिदिन अपने साथ करती है उसमें से जो बातें अपुन को अत्यन्त बुरी अर्थात् अतिशय दुःखप्रद लगती हैं जैसे कि किसी का कहा कटुवचन और उसने किया अपना अपमान वा निंदा वा अनुपकार आदि काम किसी तरह अपुन को अच्छा नहीं लगता उसी प्रकार अपना किया वैसा ही हर एक काम किसी दूसरे को भी कभी अच्छा नहीं लगेगा ऐसा निश्चय समझ कर तुम कभी किसी के साथ वैसा बर्ताव वा कहा सुनी भूल करके भी मत करो क्योंकि उसका बुरा फल हुआ करता है—सारांशयह है कि जैसे किसान अपने खेत में जो पदार्थ बोता है वही सब उस को अधिकाधिक पैदा होकर बहुत जल्द प्राप्त होता है—उसी प्रकार सब लोग अपनी प्रति दिन की भली बुरी कार्यवाही को समझें अर्थात् वह भी एक प्रकार का भले बुरे बीज वा वृक्षों का बोना वा लगाना है यदि तुम्हारे उन वृक्षों का बीज कडुआ है तो कडुए, और मीठा है तो मीठे, फल तुम को ज़रूर ही

किसी तरह ठीक नहीं ऐसी विवाहिताओं से तो घरेलू स्त्रियें लाख दर्जा अच्छी कही जा सक्ती हैं ॥

मिलेंगे—इसलिये सदैव तुम सर्वजनप्रिय काम करना सीखो जिस से कभी किसी प्रकार का दुःख तुम को न होवे अतएव एक भाषा कवि ने कहा है ॥ वह तोको कांटे बुवे, तू बो उसको फूल—उसके कांटों में कांटे लगें, तोको फूल के फूल ॥

॥ २ ॥ प्रेक्षणीयः प्रयत्नेन स्वभावो नेतरे गुणाः ॥
अतीत्यहि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि तिष्ठति ॥

भा०—बहुधा मनुष्य दूसरे के बाहिरी गुणों को देखकर लुब्ध होजाते हैं और फिर उनको अत्यंत पस्ताना पड़ता है इस लिये उन आपत्तियों से बचने के लिये उपदेश किया जाता है कि सब से प्रथम मनुष्य के स्वभाव की परीक्षा करनी चाहिये क्योंकि वह ऐसा ज़बर्दस्त पदार्थ है कि जिस समय ज़ोर पकड़ता है उस समय वह हरएक मनुष्य के संपूर्ण अच्छे गुणों को दबाकर उन सब के ऊपर ख़ुद आप, पानी में डुबोई हुई लकड़ी के समान आ जाता है यदि वह बुरा है तो ज़रूर उस से जिनको नित्य संबंध है उन सब को घड़ी २ क्लेश होने लग जाता है और यह आपत्ति—उन मनुष्यों को बहुत ही संकष्ट में डाल देती है जिनके यहां कि कोई दुष्ट स्वभाव वाली स्त्री आजाती है। प्रथम तो आगे के श्लोक में लिखे दुर्गुण वैसे ही बहुधा सब स्त्रियों में होते हैं ऊपर से हुआ उसका महा दुष्ट स्वभाव फिर क्या पूंछना है उस समय यह मसल याद आती है कि एक तो गुर्च दोयम नीम चढ़ी—हमने ऐसी एक स्त्री की तारीफ़ ख़ास उसकी सगी बहन के मुख इस प्रकार सुनी कि क्या कहूं उसका स्वभाव ऐसा कुछ विलक्षण है कि मुझसे कहा नहीं जाता आदमी एक बार आगी को हाथ पर धर लेवेगा लेकिन उसका स्वभाव आगी से भी अधिक प्रखर और जाज्वल्यमान है—धन्य है उसका वह पति जो भला आदमी उसको इतने दिनों से सुख के साथ निभारहा है—ब्याह और उसका गौना होने के पूर्व हमारे माता पिता व हम सब भाई बहनें उसकी इसी चिंता में डूबे रहे कि हाय इसकी ससुरे में गए पीछे क्या २ दुर्गति न होगी—कहो ऐसी साक्षात् लक्ष्मी जिस घर में जाकर विराजमान हो उस घर के स्त्री पुरुषों की क्या २

ख्वारी वा दुर्गति न होती होगी—इसलिये सब शास्त्रों का अभिप्राय यह है कि जन्मपत्री के सब गुणों को छोड़कर सुंदर स्वभाव की कन्या से विवाह करना सर्वथा उचित है और उसकी मोटी दो परीक्षा हैं अर्थात् अगर वह बहुधा वा निरंतर क्रोधमुखी और क्रूर भाषिणी है तो बुरी और हँसमुखी और मधुरभाषिणी है तो निःसंदेह वह सर्वोत्तम है अतः ऐसी घर २ कन्या तैयार हों ऐसा सब को अवश्य घर २ प्रयत्न भी करना चाहिये ॥

॥ ३ ॥ अनृतं साहसं माया मात्सर्यं मति लुब्धता ॥
॥ अशौचं निर्दयत्वंच स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥

भा०—हे स्त्रियो—नीचे लिखे सात दोष बहुधा सब स्त्रियों के स्वभाव में अवश्य होते हैं ऐसा शास्त्रकारों का स्पष्ट सिद्धांत है—उन को अच्छी तरह समझो और उन के छोड़ने की खूब कोशिशें करो तभी तुम अच्छी कहाओगी ऐसा निश्चय जानो ॥

(१) झूंठ बोलना, (२) सहसा अर्थात् बिना बिचारे जो चाहे सो कहने और करने को तैयार हो जाना, (३) अपना तमाम सुख वा दुख वा प्रेम वा क्रोध, रो २ कर अथवा किसी छल वा कपट वा बहाने के साथ प्रकाशित करना, (४) पराया सुख, ऐश्वर्य और अच्छी औरत वा लड़का वा लड़कियों को देखकर कुढ़ना वा जलना, (५) हर बात में अति लोभ करना (६) अपवित्र रहना और (७) सच्ची दया का न होना—इन सब में पिछला सातवां दोष बहुत ही बुरा है इसी के कारण बहुत सी स्त्रियें सास, ससुर और पति आदि के कष्ट व क्लेशों को नहीं देखतीं कि किस रीति वे अपना घर चला रहे हैं—उन के नाना प्रकार के श्रमों को दूर करना तो दूर किंतु सदैव अपने सुखों की चाह में उलटा उन को हर तरह से सताती रहती हैं और दूसरे अनृतादि दुर्गुणों से वे प्रायः हरघड़ी दूसरों को भी सताती हैं अतः उन की निंदा होने लग जाती है जिन को इस निंदा से बचकर सच्ची प्रशंसा प्यारी लगती होय वे उक्त दुर्गुणों को ज़रूर छोड़ें—इतनाही नहीं किंतु उन के ठौर सद्गुणों का खूब संग्रह भी करती जांय तथा स्मरण रक्खें वे सब, इन वाक्यों

को "गुणाः सर्वत्र पूज्यंते—गुणै रत्तुंगतां याति—गुणै हि सर्वत्र पदं निधीयते—गुणाः कुर्वंति दूतत्वं—गुण लुब्धाः स्वय मेव संपदः,, अर्थात् संसार में सुख, संपत्ति और प्रतिष्ठा आदि सब अपेक्षित पदार्थ, गुणों से ही मिलते हैं—यदि तुम में वे नहीं तो अवश्य तुम सदा पति सुख से भी वंचित रहोगी, और वह नहीं तो कुछ भी नहीं ॥

॥ ४ ॥ शोचंति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तद् गृहं ॥
प्रहृष्यंति तु यत्रैता वर्धते तत्कुलं सदा ॥

भा॰—जिस घर की बहू बेटी सदा शोकाकुल रहतीं वा आठों याम ठांय २ मचाए रहती हैं वे घर जल्द मिट जाते (४) और जहां वे आनंदित रहती हैं वे घर और वे कुल दिनों दिन धन संतानों से अधिकाधिक उन्नत होते जाते हैं—इसलिये कभी किसी घर की बहू बेटियों को किसी दशा में भी आपस में खटापटी रखकर उदास व अनमन वा क्रोधमुखी न हो बैठना चाहिये परंतु शोक कि कोई २ कुलटा तो तनक २ सी बात पर अपनी सूरत बिगाड़ लिया करती हैं और बहुत सी बिना ही बात जब देखो तब जली भुनी सी ही देखी जाती हैं—यह उनका बड़ा भारी कुलच्छिन है मानो वे अपने हाथ अपना और अपने घरवालों का नाश मारती हैं इसलिये कभी कोई प्यारी बहू बेटी ऊपर कहा कुलच्छिन अपने शरीर में न धसने देवे—इतना ही नहीं किंतु आगे लिखे संपूर्ण सद्गुणों से संयुक्त भी वे हों ॥

॥ ५ ॥ मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्री भरणे न च ॥
दुःखितैः संप्रयोगेन पंडितो प्यवसीदति ॥

भा॰—मूर्खों के पढ़ाने से, दुष्टा स्त्री के संग्रह और दुःख व दरिद्रकर्शित मनुष्यों का समागम होजाने से बड़े २ चतुर, विद्वान् और बुद्धिवान् मनुष्यों

(४) मसल मशहूर है कि खांड़ो बजो भलो लेकिन दांती बजी भली नहीं—इसके सर्वत्र सैकड़ों ही छोटे बड़े दृष्टांत हैं जैसे नगर फर्रुखाबाद में पं॰लुट्टीलाल का घर ॥

तक की बुद्धि और ज़िंदगी कुंठित होकर खराबी में पड़ जाती है-इस लिये इन सबों से दूर रहना चाहिये कदाचित् कोई बहू बेटी वा स्त्रियें कहें कि क्या पुरुषों में दोष नहीं होते ? सो अवश्य होते हैं परंतु उनका वर्णन अनेक पुस्तकों में अनेक प्रकार से अनेक उपदेशों के साथ आचुका है इस लिये उन्हे छोड़कर यहां हमने इस पुस्तक में केवल स्त्रीसुधार पर ही अपना ध्यान जमाया है ॥

॥ ६ ॥ दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्य श्चोत्तर दायकः ॥
॥ ससर्पे च गृहे वासो मृत्यु रेव न संशयः ॥

भा०—दुष्टा स्त्री, कपटी व दगाबाज़ मित्र, हर बात में तड़ाक जवाब दे बैठनेवाला नौकर, या टहलनी वा कोई भार्या, और जिस घर में सांप रहता हो उस में का रहना, ये चारों बातें ज़रूर मौत की निशानी जानो और बने उस रीत उन सब से दूर रहने की जल्द कोशिश करो नहीं तो अवश्य किसी दिन अनर्थ हो जावेगा—ऐसी शास्त्र की स्पष्ट आज्ञा पुरुषों को है इस बात को जो हमारी प्यारी बहू बेटीं अच्छीतरह याद रख कर समय पर सावधानी दिखावेंगीं वे कभी दुखी न होंगीं ॥

॥ ७ ॥ वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभो ॥
॥ वरं वेश्या पत्नी न पुन रविनीता कुलवधूः ॥

भा०—गौओं से सूनी गोशाला अच्छी परंतु उस में किसी दुष्ट अर्थात् खूनी बैल वा सांड़ का होना जैसा अच्छा नहीं उसी प्रकार बिना पत्नी के रहना अथवा निकृष्टपक्ष उस की जगह वेश्या को रख लेना अच्छा परंतु अच्छे से अच्छे घराने तक की वह ब्याही स्त्री घर में लाकर रखनी किसी प्रकार अच्छी नहीं जिस के कि बोल चाल आदि अनेक कुटिल व्यवहारों से पति आदि सब मनुष्यों का अंतःकरण बारंबार जल उठता हो-विदित रहे कि इस प्रकृति की हर.एक स्त्री दुष्टा, कुकटा और चांडालिन कहाती है और वह निरंतर अपने तईं निर्दोष समझ कर अहोसिन

पड़ोसिन आदि आई गई स्त्रियों से अपने घरवालों की मिथ्या निंदा कर २ कर (५) अपनी सफ़ाई व प्रतिष्ठा प्रकाशित करके दुःखों से जलती रहती हैं-इतना ही नहीं किंतु वह आगे के लिये अपनी ऐसी कुटिल प्रकृति की अपनी संतान भी बनाती है-इसी कारण ऐसी स्याही स्त्री तक को घर में से निकाल देने की धर्मशास्त्र ने आज्ञा दी है—सो अभी ऊपर लिख चुके और आगे भी कई ठौर वैसा ही लिखा देखोगे, इस कारण इस महाविपत्ति से स्त्री जाति हर तरह से बच जाय इस विचार से स्पष्ट कहा जाता है कि हर एक स्त्री अपना स्वभाव मोम से भी अधिक नरम बनाकर सांसारिक सुख भोगे ॥

॥ ८ ॥ कुग्रामवासः कुलहीनसेवा कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या ॥ पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या विनाग्निना षट् प्रदहंति कायं ॥

भा०—नीचे लिखे ६ पदार्थ प्रत्येक गृहस्थाश्रमी पुरुष के हृदय को बिना ही अग्नि निरंतर जलाते रहते हैं ॥

(१) बुरे गांव का वास (२) नीच व नीचप्रकृति के स्त्री पुरुष की सेवा (नोकरी या सोहबत) (३) रूखा वा सूखा वा बुरा भोजन (४) क्रोधमुखी वा कलहा स्त्री (५) विद्यादि समस्त सद्गुणों से रहित पुत्र और (६) घर में आकर बैठी विधवा कन्या ॥

सदैव विदित रहे कि विधवा स्त्री दो प्रकार की होती है एक तो वह जिस का पति मर गया हो और दूसरी वह जिस के पति ने उसे छोड़ दिया अथवा वह आप कहीं निकलगया अथवा ख़ुद कोई स्त्री अपने पति को छोड़कर पिता आदि के घर आ बैठी हो—तथा ज्ञात हो कि इस

(५) आगे लक्ष्मी नारायण संवाद में देखो शांडिली देवी ने इस काम को कैसा बुरा बताया है सचमुच वैसा करने से पति को बहुत ज़िद बढ़ती है—बस वही तुम्हारे अनमोल पतिव्रत और समस्त सुखों का सत्यानाश करने वाली चीज़ है ॥

समय जितने संत, महंत, खाकी, वैरागी, निर्मला, उदासी, गुसाईं वा अनेक प्रकार के वैष्णव वा साधू वा भिकारी और पेटभरू सन्यासी आदि की मंडली वा अखाड़े संसार में चमक रहे हैं इन में अधिकतर पुरुष दूसरे प्रकार की विधवाओं के पति हैं सो वे बहुधा अब प्रथम प्रकार की विधवाओं को संतुष्ट कर रहे हैं जानों, और समझो कि यह महाघोर पातक, इस जगतीतल पर हमारे यहां की सब दुष्टा स्त्रियें बढ़ा रही हैं ॥

॥ ९ ॥ त्यजेत् धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् ॥
॥ त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निस्नेहान्बांधवां स्त्यजेत् ॥

भा०—संपूर्ण स्त्रियों को अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये कि बड़े २ महर्षि लोगों ने स्पष्टरीति से वेद शास्त्रों के अनुकूल मनुष्यमात्र को यह आज्ञा दे रक्खी है कि हे पुरुषो तुम दयारहित धर्म, विद्यारहित गुरू, क्रोधमुखी स्त्री और प्रेमरहित बंधु वा नातेदारों को अवश्य छोड़कर अपना बर्ताव करो अन्यथा बहुत ही दुखी होगे ॥

यहां तीसरे दर्जेपर देखो कि किस का नाम, छोड़ देने के अर्थ बताया है—इस में जो अपनी गिनती न करावे वह हम को प्राणों से भी अधिक प्यारी होवे ॥

॥ १० ॥ वरं न राज्यं न कुराजराज्यं वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रं ॥ वरं न शिष्यो न कुशिष्य शिष्यो वरं न दारा न कुदार दाराः ॥

भा०—हे मनुष्यो अराज्य अच्छा पर कुराज्य अच्छा नहीं—मित्र ही नहो सो अच्छा पर कुमित्र का होना अच्छा नहीं—शिष्य हीन हो सो अच्छा पर कुशिष्य का होना जैसा अच्छा नहीं—उसी प्रकार आदमी बिना ही ब्याह करे रह जांय सो अच्छा परन्तु ब्याह करके बुरे स्वभाववाली स्त्री का घर में ले आना किसी तरह भी भाई अच्छा नहीं क्योंकि ऐसी दुष्टा व निर्लज्ज स्त्री के समागम से गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कोई भी सुख

किसी पुरुष को प्राप्त नहीं होता बल्कि निरंतर दुःख ही दुःख भोग कर उस को बहुत जल्द मर जाना पड़ता है—सत्य समझो दुष्टशीलाका पुरुष हर घड़ी परमेश्वर से मौत मांगा करता है ॥

॥ ११ ॥ कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं कुमित्र-मित्रेण कुतो भिनिर्वृतिः ॥ कुदारदारै श्च कुतो गृहे रतिः कुशिष्य मध्यापयतः कुतो यशः ॥

भा०—ऊपर लिखे श्लोक में जो पदार्थ बुरे कहे हैं उनमें कभी किसी पुरुष को बिल्कुल भ्रम न रहे इसलिये पुनः विद्वान्लोग इस दूसरे श्लोक को सुनाते हैं कि हे पुरुषो, जैसे कुराज्य से * प्रजा को—कुमित्र से उसके सन्मित्र को और कुशिष्य से पढ़ानेवाले गुरू को सुख वा यश की प्राप्ति नहीं होती बल्कि उलटी उसे उनके बदौलत (बदले) अनेक आपत्तियां भोगने पड़ती हैं उसी प्रकार कुदारा अर्थात् कुटिला वा कुत्सिता वा कर्कशा स्त्री के संयोग से कभी किसी गृहस्थाश्रमी पुरुष को जन्म भर में एक दिन को भी विवाह का सुख प्राप्त नहीं होता इसलिये महादुःखों के मुख्य ये ४ मूलकारण यहां तुमको बताये गये हैं—उनको तुम अच्छीतरह समझकर ऐसा प्रयत्न करो कि जिस से आगे कभी कोई बहू बेटी ऐसे दुष्ट स्वभाव की न बने, यदि बाल्यावस्था में उनका उक्त दुर्गुण न छुड़ा दिया जायगा तो वे बड़ी होने पर कभी न सुधर सकेंगी तथा विदित रहे कि यह उक्त दुर्गुण लड़कियों में बहुधा उसकी माता से और लड़कों में बहुधा उनके पिता से आया करता है. ऐसा खास श्रीमान् वाल्मीकि जी महाराज के श्रीमुख का वचन है इसलिये वह यहां नीचे लिखा जाता है ॥

॥ १२ ॥ सत्यश्चात्र प्रवादोयं लौकिकः प्रतिभा-ति मां ॥ पितृ न्समनुजायंते नरा मातर मंगनाः ॥

भा०—लौकिक अर्थात् शास्त्र और व्यवहार के जाननेवालों का यह

* इसका तो प्रत्यक्ष फल समस्त स्वदेश निवासी खुद भोगरहे हैं ॥

समय जितने संत, महंत, खाकी, वैरागी, निर्मला, उदासी, गुसाईं वा अनेक प्रकार के वैष्णव वा साधू वा भिकारी और पेटभरू सन्यासी आदि की मंडली वा अखाड़े संसार में चमक रहे हैं इन में अधिकतर पुरुष दूसरे प्रकार की विधवाओं के पति हैं सो वे बहुधा अब प्रथम प्रकार की विधवाओं को संतुष्ट कर रहे हैं जानों, और समझो कि यह महाघोर पातक, इस जगतीतल पर हमारे यहां की सब दुष्टा स्त्रियें बढ़ा रही हैं ॥

॥ ९ ॥ त्यजेत् धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् ॥
॥ त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निस्नेहान्बांधवांस्त्यजेत् ॥

भा०—संपूर्ण स्त्रियों को अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये कि बड़े २ महर्षि लोगों ने स्पष्टरीति से वेद शास्त्रों के अनुकूल मनुष्यमात्र को यह आज्ञा दे रक्खी है कि हे पुरुषो तुम दयारहित धर्म, विद्यारहित गुरू, क्रोधमुखी स्त्री और प्रेमरहित बंधु वा नातेदारों को अवश्य छोड़कर अपना वर्ताव करो अन्यथा बहुत ही दुखी होंगे ॥

यहां तीसरे दर्जेपर देखो कि किस का नाम, छोड़ देने के अर्थ बताया है—इस में जो अपनी गिनती न करावे वह हम को प्राणों से भी अधिक प्यारी होवे ॥

॥ १० ॥ वरं न राज्यं न कुराजराज्यं वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रं ॥ वरं न शिष्यो न कुशिष्य शिष्यो वरं न दारा न कुदार दाराः ॥

भा०—हे मनुष्यो अराज्य अच्छा पर कुराज्य अच्छा नहीं—मित्र ही नहो सो अच्छा पर कुमित्र का होना अच्छा नहीं—शिष्य ही न हो सो अच्छा पर कुशिष्य का होना जैसा अच्छा नहीं—उसी प्रकार आदमी विना ही ब्याह करे रह जाय सो अच्छा परन्तु ब्याह करके बुरे स्वभाववाली स्त्री का घर में ले आना किसी तरह भी भाई अच्छा नहीं क्योंकि ऐसी दुष्टा व निर्लज्ज स्त्री के समागम से गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कोई भी सुख

किसी पुरुष को प्राप्त नहीं होता बल्कि निरंतर दुःख ही दुःख भोग कर उस को बहुत जल्द मर जाना पड़ता है—सत्य समझो दुष्टशीलाका पुरुष हर घड़ी परमेश्वर से मौत मांगा करता है ॥

॥ ११ ॥ कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं कुमित्र-मित्रेण कुतो भिनिर्वृतिः ॥ कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः कुशिष्य मध्यापयतः कुतो यशः ॥

भा०—ऊपर लिखे श्लोक में जो पदार्थ बुरे कहे हैं उनमें कभी किसी पुरुष को बिल्कुल भ्रम न रहे इसलिये पुनः विद्वान्‌लोग इस दूसरे श्लोक को सुनाते हैं कि हे पुरुषो, जैसे कुराज्य से * प्रजा को—कुमित्र से उसके सन्मित्र को और कुशिष्य से पढ़ानेवाले गुरू को सुख वा यश की प्राप्ति नहीं होती बल्कि उलटी उसे उनके बदौलत (बदले) अनेक आपत्तियां भोगने पड़ती हैं उसी प्रकार कुदारा अर्थात् कुटिला वा कुत्सिता वा कर्कशा स्त्री के संयोग से कभी किसी गृहस्थाश्रमी पुरुष को जन्म भर में एक दिन को भी विवाह का सुख प्राप्त नहीं होता इसलिये महादुःखों के मुख्य ये ४ मूलकारण यहां तुमको बताये गये हैं—उनको तुम अच्छीतरह समझकर ऐसा प्रयत्न करो कि जिस से आगे कभी कोई बहू बेटी ऐसे दुष्ट स्वभाव की न बने, यदि बाल्यावस्था में उनका उक्त दुर्गुण न छुड़ा दिया जायगा तो वे बड़ी होने पर कभी न सुधर सकेंगी तथा विदित रहे कि यह उक्त दुर्गुण लड़कियों में बहुधा उसकी माता से और लड़कों में बहुधा उनके पिता से आया करता है.ऐसा खास श्रीमान् वाल्मीकि जी महाराज के श्रीमुख का वचन है इसलिये वह यहां नीचे लिखा जाता है ॥

॥ १२ ॥ सत्यश्चात्र प्रवादोयं लौकिकः प्रतिभाति मां ॥ पितॄन्समनुजायंते नरा मातर मंगनाः ॥

भा०—लौकिक अर्थात् शास्त्र और व्यवहार के जाननेवालों का यह

* इसका तो प्रत्यक्ष फल समस्त स्वदेश निवासी खुद भोगरहे हैं ॥

कहना मुझे बहुत सत्य जान पड़ता है कि बहुधा पुत्र, पिता के और कन्या, माता के समान गुणवाली अवश्य होती हैं और जहां कहीं कुछ इसके विरुद्ध देखा जाता है तहां लोग अति आश्चर्य के साथ यह कहने लगजाते हैं कि न जाने यह नारायण के समान पुत्र वा साक्षात् लक्ष्मी के समान गुणवती कन्या अमुक दुष्टस्वभाव के पुरुष वा स्त्री से कैसे उत्पन्न हुए उस समय जब इसका स्पष्ट कारण सोचा जाता है तब बहुधा उनकी सुशिक्षा व सुसमागम सिद्ध होता है इसीलिये सबों ने सर्वत्र सत्संग करने को कहा है ॥ ६ ॥

॥१३॥ न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया ॥
न शस्त्रेण न शास्त्रेण सर्वथा विषमाः स्त्रियः ॥

भा०—इस श्लोक में फिर स्पष्ट यह दर्साया है कि इस जगत् में बहुत सी अच्छे कुलीन घरानों से ब्याह कर आई हुई स्त्रियें भी महा कुटिला महा दुष्टा और अति हटीली देखने में आती हैं—जब वे किसी एक अपने व्यर्थ के हट को पकड़ बैठती हैं तब वे लाखों प्रकार के उपायों से भी सीधे मार्ग पर नहीं आतीं बल्कि निर्लज्य होकर साफ़ अपने मुख आप कहने लगजातीं हैं कि हमको तो सब जगत् ऐसे समझे जैसे कुत्ते की पूंछ वा इंदोरन का फल, धिःकार है उनकी इस महा निंद्य समझ पर—ऐसी दुष्टा तो उत्पन्न होते ही मरजाना चाहिये।

अब सोचना चाहिये कि ये स्त्रियें ऐसी निर्लज्य और भ्रष्टबुद्धि क्यों हो जाती हैं कि जिससे ख़ुद इनको और इनके समागम से इनके सास ससुर और पति आदि सब सत्पुरुषों को आजन्म दुःख ही दुःख भोगनापड़ता है तो विदित होगा कि इसका मूलकारण विशेषतः उनका लाड़ प्यार और उन की दुष्टा माता व बहने आदि बुरीप्रकृति की स्त्रियों का दृढ़ समागम है—इसीलिये पूर्व काल में हमारे अबोध लड़का लड़की छोटी ही उमर से दूर निर्जन वनों में बनी हुई पाठशालाओं में सुशिक्षित होने के अर्थ भेजदीं

(६) सचमुच सत्संग के बराबर उत्तम वस्तु इस जगत् में अन्य कुछ भी नहीं है अतएव स्पष्ट कहा है "सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसां,,

जातीं थीं और वहां अच्छे २ स्त्री पुरुष, उनके ऊपर शिक्षक नियत रहते थे जब वे अच्छे सुशिक्षित हो जाया करते थे तब तरुणावस्था में उनकी इच्छा और प्रकृति के समान स्त्री पुरुषों से उनका विवाह किया जाता था उसके विरुद्ध अब वे अति बाल्यावस्था में महा वाहियात जो उनकी जन्म-पत्री उसको मिलाकर शठ नाई वा महामूर्ख ब्राह्मण की सलाह से जन्म से कई साल जेठी (७) लड़की तक से भी ब्याहे जाते तथा उनकी जैसी कि चाहिये वैसी पढ़ाई नहीं होती और न वे उक्त कुसौबत से छुटकारा पाते हैं—इसलिये जैसा इनदिनों इस बुरी चाल से घर २ क्लेश बढ़ रहा है वह सब को प्रत्यक्ष विदित है—यदिच इन दिनों लड़कों के समान लड़कियों

(७) देखो जिनका शास्त्र, वर की उमर लड़की से डेवढ़ी दूनी लेने को कहे वहां की कन्या उलटी कम उम्र लड़कों के गले बंधे अर्थात् "लड़का छोटो बहू बड़ी,, की मसल जहां तहां देखने में आवे तो इसका परिणाम इस देश के लिये क्यों महा भयंकर और अति अनिष्ट न हो बस इन्हीं महादुःखों के कारण यहां की स्त्रियों ने अपने उन बालपतियों का नाम बालम बलमा और नादान धरकर उनकी प्रशंसा में भांत २ के गीत बना छोड़े हैं और वे सदा सर्वत्र बड़ी नोंक झोंक के साथ नीचे लिखे अनुसार अपने सब पुरुखों को सुनाए भी जाते हैं—इतने पर भी यदि यहां के मरदों की मिर्ची आखें और कान न खुलें तो नीचों के साथ उड़जाने के सिवाय बेचारी स्त्रीजाति, और अन्य क्या उपाय करसक्ती है और किस रीति उनके चित्त पर ऐसे तमाम भोंदू पतियों का रोब दोब वा प्रेम वा माहात्म्य जम सक्ता है और जहां यह नहीं तहां पतिव्रत कहां और वह नहीं तो सुख भी नहीं, इसलिये सुधरकर सुधारो तो अवश्य अनुपम सुख लहो, अस्तु अब सुनों उनके उक्त गीतों की लटक, जैसे—सेज परे पिया ऐसे लगें मानों सास निगोड़ी ने अबहीं जाए—जो मैं ऐसी जानती तो बलमा को देतीं अफीम—बालम नादान कली को मज़ा क्या जानें—बलमा हमें चुनरिया लेदो—बारे बलम हमें नहि भावें—ऐसे शतशः वरंच सहस्रशः सार्थक भजन बनचुके और बराबर बनते चलेजाते हैं—कहो शोक कहूं कि महाशोक ॥

के पढ़ाने की भी कुछ रीति प्रचरित होगई है और उससे बहुतसी लड़कियां पढ़ भी जाती हैं तथापि उनकी प्रकृति अर्थात् स्वभाव का सुधार जैसा कि चाहिये वैसा किसी तरह अब भी नहीं होता इसका ख़ास कारण एक तो वही उनकी बुरी माता बहन और चाची भौजी आदि की सोहबत, दोयम उनके पढ़ने में उत्तमोत्तम सोहबत और पुस्तकों का न होना है (८) यदि यह सब सामान उनकी छोटी ही अवस्था से तैयार होजाय तो अब भी बहुत कुछ लड़का लड़कियों का सुधार होने लगजाय, इस लिये सब चतुर विद्वान् व उनके माता पिता और सास ससुर व विशेषतः पति को बहुत जल्द ऐसी पुस्तकें, जिनसे कि उनके स्वभाव बदले, तैयारकराके पढ़ाना चाहिये—और इस की चिंता उन के लाड़ प्यार की अवस्था से ही बराबर होती रहे अन्यथा बड़ी उमर हो जाने पर किसी तरह किसी का भी स्वभाव बदल नहीं सक्ता ऐसा विद्वानों का सच्चा सिद्धांत नीचे लिखे श्लोकार्द्ध द्वय के अर्थ पर, ध्यान देने से स्पष्ट प्रकाशित होगा ॥

॥ १४ ॥ यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत् ॥
॥ शुष्ककाष्ठाश्च मूर्खाश्च भंजंति न नमंति च ॥

भा॰—जैसे मिट्टी के कच्चे बरतन पर, एक बार कोई लकीर वा टेढ़ापन आगया और उस का सुधार उसी समय यदि न हुआ तो फिर वह दोष कभी किसीतरह आगे उस की परिपक्व दशा में नहीं मिटता, इसी प्रकार सब लोग अपने लड़का लड़कियों के बिगाड़ व बनाव के विषय में

(८) इस दोष के निवृत्यर्थ हर नगर में एक २ कमेटी नियत होकर वह वहां के मनुष्यों से हरख़ुशी, हरपर्वी व हर तेहवार पर कुछ २ धन जमा करे और बड़े २ विज्ञापनों के द्वारा लड़का लड़कियों के स्वभाव सुधारक छोटे बड़े पुस्तक बनवाकर इनाम देवे और फिर उन्हें छपवावे और उनका अच्छीतरह प्रचार करे तथा अपने लड़का लड़कियों बल्कि अपने घरों तक को कभी किसी ईसाई स्त्री . पुरुष की हवा तक न लगने देवे सचमुच वह बड़ा ही अपायकारक जाल है ॥

समझो और दूसरा शास्त्रीय दृष्टांत, इस पर लकड़ी का ऐसा लेवें कि जैसा उस का लचना उस की कोमल दशा में संभव है वैसा ही वह उस की परिपक्व दशा में महा असंभव भी है अर्थात् बड़ी होने पर लकड़ी टूट जायगी लेकिन कभी लचेगी नहीं—सो प्रत्यक्ष देखलो कि अपने इस देश में भले घराने तक की कितनी स्त्रियें हित समझाने के अवसर में अपने अमोल्य प्राणों को नाना प्रकार से गवांकर हत्यारी बनतीं हैं, और मूड़ फोड़ लेना वा गोदी के तनक २ से निरपराध बालकों को बे रहम पीट डालना वा उठाकर धरती पर दचोक देना आदि अनेक दुष्ठ क्रियाओं को उस समय कर बैठना तो मानों उन राक्षसीयों के सन्मुख कोई बड़ी बात ही नहीं है ॥

सारांश बड़ी होने पर किसी बहू बेटी को कभी यह जान ही नहीं पड़ता कि हमारा स्वभाव, कहें से ऐसा बुरा है जैसा कि समुरे में पति आदि बता रहे हैं—हां हज़ारों में कोई एखाद बहू बेटी दूसरों के कहे सुने शायद अपना स्वभाव बदल दे तो भलेई बदल दे—उस दशा में उस का प्रारब्धोदय अर्थात् बड़ी ख़ुशनसीबी कही जाती है परन्तु यह सुघड़ी तभी उन के हाथ चढ़ती है जब वे प्रथम मान लेतीं हैं कि ज़रूर मेरा स्वभाव, बुरा है—बस ऐसी ही सज्जन और गुणवती बहू बेटियों का सुधार हो—इस विचार से अनेक शास्त्रकारों के रचे बहुत से अनमोल श्लोक हम यहां और नीचे लिखते हैं ॥

॥१५॥ गुरु रग्नि र्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥
॥ पति रेको गुरुः स्त्रीणां सर्वत्राभ्यागतो गुरुः ॥

भा०—विदित रहे कि द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के लिये अग्नि, और ब्राह्मणादि चारो वर्णों के लिये ब्राह्मण, और सब मनुष्य मात्र के लिये द्वारे पर आया हुआ सदाचारी अभ्यागत, जैसा गुरु अर्थात् मान्य व पूज्य कहा है उसी प्रकार हर एक स्त्री को उस का केवल एक पति, गुरु बताया है—इस लिये हे स्त्रियो तुम्हारा परमधर्म यही है

कि तुम उसे अग्निदेव के समान सदा समझ, पूजो और मानो तथा गुरु के समान उस की सब शिक्षाओं को बहुत प्रसन्न चित्त से सुनो और वैसा ही अपना सब काम करो और हमेशा यह भी सोचती रहो कि हम को शास्त्रकारों ने हमारा पति, अग्निदेव और गुरु के समान समझने और मानने के लिये जो वारंवार ताकीद की है इस का ठीक २ मतलब क्या है तब तुम को उन दोनों अग्नि व गुरु के आँगे वर्णन होनेवाले गुण और कामों की खबर पड़ेगी, उस दशा में तुम्हारा अंतःकरण बहुत ही विमल हो जावेगा और इतनी हुल्ल फूल और प्रेम परतीत के साथ तुम पति की टहल व सेवा आदि अपना सब काम काज, करने लगजाओगी कि जिस का हम यहां वर्णन नहीं करसक्ते तुरंत अर्थात् उसी समय तुम को अपना जन्म धन्य, समझने लग जावेगा और लाखों ही स्त्री पुरुष तुम्हारी नाना विध तारीफ़ और वाहवा करते हुए अपनी बहू बेटियों को तुम्हारे सुचरित्र दिखा सुनाकर उनका सुधार करेंगे अर्थात् स्पष्ट कहेंगे कि देखो बिटिया तुम इन फलानी ऐसी सुचालिन बनो और अपनी सब कुचालें एक साथ ढीलो जिससे तुम्हारा पति और ससुरे वाले तुम्हारी बलैयां लेवें और तुम्हारी संतति व संपत्ति बढ़े तथा तुम को इस जगत् के सब सुख, प्राप्त होकर आँगे होनहार तुम्हारे सब जन्मों में भी तुम सदा आनंद मंगल भोगती रहो ॥

॥ १६ ॥ पिता पुत्रं गुरुः शिष्यं माता पुत्रीं वधूं पतिः ॥
श्वश्रूःस्नुषां नृपो मात्यं ताड़येद् गुणहेतवे ॥

भा०—गुणों के सिखाने के अर्थ, पिता पुत्र को, गुरु शिष्य को, माता लड़की को, सास बहू को, राजा कामदार को, जैसे कि समझाते वा दंड देते हैं—उसी प्रकार पति, अपनी स्त्री को चाहे जैसा दंड देने का पूर्ण अधिकारी है परंतु वह उपमय, अच्छे स्वभाव की बहू बेटियों में अच्छीतरह काम आवेगा बुरी के नहीं-बुरी अर्थात् दुष्टा स्त्रियों के लिये तो वही सिद्धांत सत्य है जो ऊपरलिख आए हैं कि (सर्वथा विषमाः स्त्रियः) अर्थात् तमाम धरती क्यों न लौटजाय

के किसी तरह नहीं मानेंगी—इसलिये उनका सर्वथा परित्याग करदेना ही उचित है—प्रथम जबतक यहां अपना राज्य था तब ऐसी हटीली और कटुवचनी स्त्रियें, नाक काटकर निकाल दीं जातीं थीं जिससे कि लोग, दूर से ही देखकर समझ जांय कि यह बुरे स्वभाववाली स्त्री है—यह शिक्षा बहुत ही उत्तम है क्योंकि इसके डर से बहुतसी बहू बेटी अपने आप अपना स्वभाव, चुपचाप त्यजदेतीं थीं—यदिच अब नाक नहीं काटीजाती तथापि दुष्ट स्त्री को उसके घरवाले सदा नकटी कहकर ही पुकारा करते हैं अतः धिःकार है ऐसी औरत की ज़िंदगी पर।

॥ १७ ॥ इक्षुर्दंडा स्तिला: शूद्रा: कांता हेम च मेदिनी ॥ चंदनं दधि तांबूलं मर्दनं गुणवर्धनं ॥

भा०—याद रक्खो कि शास्त्र ने नीचे लिखे ६ नो पदार्थों में से किसी को कोल्हू में डालकर पेरने. किसी को मारने. पीटने. छेदने. तपाने और जलाने की और किसी को रगड़ने—घिसने. मथने और पीसने की मर्दों को गुण बढ़ाने के विचार से आज्ञा, दी है—उन पदार्थों में देखो ४ नंबर पर हे स्त्रियो तुम्हारा भी नाम है—इसलिये पति की सब प्रकार की ताड़ना सहकर सब स्त्रियों को इतर पदार्थों की भांति अवश्य गुणवती और गुणप्रसू होना सर्वथा उचित है—१ गन्ना २ तिल ३ शूद्र ४ स्त्री ५ सोना ६ धरती ७ चंदन ८ दही और ९ पान ॥

॥ १८ ॥ पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ॥ पुत्रश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति ॥

भा०—किसी स्त्री को किसी अवस्था में भी स्वतंत्र रहने का अधिकार अपने देश में नहीं, इस कारण वे बाल्यावस्था में पिता के तरुणावस्था में पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के आधीन रहकर जन्मभर निर्वाह करती हैं परंतु नीच स्वभाव और दुष्ट बुद्धिवाली स्त्रियों की रीति ही भाई निराली है वे सदैव अपने क्रूर व कठोर मति का ही निमूना संसार में स्थापित

॥२२॥ सुहृदां हितकामानां न शृणोति हितं वचः ॥
॥ विपत् संनिहिता तस्य स नरः शत्रु नंदनः ॥

भा०—बिलकुल शुद्ध, हृदय से भलाई चाहनेवाले मनुष्यों की कहीं बात को जो शत्रुनंदन (स्त्री पुरुष) किसी तरह नहीं मानता उसके सिर बहुत जल्द महा भयंकर विपत् आ जाती है—ऐसा ज्ञानी पुरुषों का निश्चय है—जिन को विपत् और अपने बैरियों की हँसी से बचना हो, वे सब स्त्री पुरुष इसे अच्छी तरह समझें और सुखी हों ॥

॥२३॥ ह्रीयते हि मति र्नित्यं हीनैः सह समागमात् ॥
॥ समैश्च समता मेति विशिष्टैश्च विशेषतां ॥

भा०—सत्य समझो कि अपने से नीची बुद्धि और जाति के स्त्री पुरुष की सुहबत में बैठने से अपनी अक़ल व इज्ज़त घटती, और बराबर वालों का साथ रहने से ज्यों की त्यों रहती है परंतु अपने से बढ़कर विद्वान् ज्ञानी व समझदारों का संयोग होने से वही बुद्धि व प्रतिष्ठा बहुत कुछ बढ़ जाती है इसीलिये नीच जाति में बैठक रखना कभी किसी स्त्री वा पुरुष को उचित नहीं है जब बैठो तब उच्च जाति और उच्च बुद्धि और उच्च विद्या वाली स्त्रियों में बैठो और उन की बातें सुनो—कदाचित् ऐसी स्त्रियें न मिलें तो मनुजी महाराज ने जैसा कुछ नीचे लिखे श्लोक में उपदेश किया है वैसा सदैव करतीं रहो परंतु किसी तरह कुसौबत में बैठ कर अपना जन्म बिगाड़ लेनी अच्छा नहीं—यदि तुम ख़ुद पढ़ीं न हो तो अपने ज़रूरी सब कामों से जब २ तुम को छुटकारा मिले तब २ तुम लिखना पढ़ना सीखो और जब कभी कोई अच्छी लिखी पढ़ीं स्त्रियें मिल जांय तब तुम उन को बहुत सत्कार पूर्वक बिठालो और उन से पढ़ा कर अच्छी पुस्तकों की वे कथा वार्ता सुनो जिन से कि तुम्हारा चित्त, निरंतर प्रमुदित रहे तथा वे काम करने व सीखने में आवें कि जिन से तुम्हारी विद्या, समझ, चतुराई और बुद्धि की चारो तरफ़ प्रशंसा फैले ॥

२४ ॥ बुद्धिवृद्धि कराण्याशु धन्यानि च हितानि च ॥
॥ नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत नियमांश्चैव वैदिकान् ॥

भा०—फिर कहा जाता है कि जब २ फुरसत मिले तब २ हित और बुद्धि की बढ़ाने वाली सुन्दर छँटी हुई उत्तमोत्तम ऐसी पुस्तकें तुम देखो जैसी कि यह एक छोटी सी पुस्तक है और उनको ऐसा समझो कि जिस से तुम सब ललना गणों को वेदों और शास्त्रों के आनन्दप्रद सिद्धान्त और नियम अच्छी तरह मालूम हो जावें तभी तुम हज़ारों बरन लाखों स्त्रियों में गुणवती और भाग्यवती कहाकर धन्य २ कहाओगी और तभी तुम अपने जन्म की सफलता मानोगी, बीच नहीं ॥

॥ २५ ॥ शांतितुल्यं तपो नास्ति न संतोषात्परं सुखं ॥ न तृष्णायाः परो व्याधिर्नच धर्मो दयापरः ॥

भा०—विदित रहे कि बहुत से स्त्री पुरुष, लोभ में फंसकर अत्यंत दुखी रहते हैं ऐसों को सुखी करने के अर्थ यह बहुत ठीक उपदेश है कि शांति के तुल्य तप, संतोष के समान सुख, तृष्णा के समान रोग और दया के समान इतर कोई धर्म, नहीं है—ऐसी अमृत समान परमोत्तम ये चारो बातें हैं कि जिनके संग्रह से किसी स्त्री वा पुरुष को इस अपार संसार सागर का तरना कुछ कठिन नहीं जान पड़ता और जो कुछ सुख ये भोगते हैं वह बड़े २ राजा महाराजाओं को भी मिलना परम दुर्लभ है और विशेष चमत्कार यह कि ऐसे सर्वोत्तम व अनमोल होकर भी ये चारो पदार्थ, सब को सर्वत्र कहो तब बिना ही दाम और बिना ही परिश्रम मिलसक्ते हैं. फिर भी जो इसका स्वीकार वा संग्रह और तदनुकूल बर्ताव न करे वह महादुर्भाग्य है ।

॥ २६ ॥ अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते ॥
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः ॥

भा०—हे स्त्रियो यदि तुम्हारे घर पर तुम्हारा कोई परम बैरी मनुष्य

भी कभी आजाय, तो भी तुम उसका आतिथ्य सत्कार बहुत आनन्द के साथ जरूर किया करो अन्यथा तुम्हारी महा नीच स्त्रियों में गिनती होगी, देखो इस विषय में विद्वान् लोग, वृक्ष का कैसा दृष्टांत देते हैं—वे कहते हैं कि वृक्ष, जैसा और सब मनुष्यों को अपनी छाया में रखकर सुखी करता है—उसी प्रकार बर्त्ताव वह अपने उस महा बैरी बढ़ई आदि मनुष्य के साथ भी करता है जोकि प्रत्यक्ष अपने सब हथियारों को लेकर उस वृक्ष को काटने को आता है—इसी प्रकार तुम भी कभी किसी अतिथि के साथ अपनी भेदबुद्धि, मत दर्साओ जैसी कि इन दिनो की बहुतसी नीच प्रकृतिवाली स्त्रियों में बहुत करके देखी जाती है।

कि उनके यहां जब कभी कोई उनका भाई, बहन, बहनोई वा भतीजा आदि आजाता है तब वे फूली अंग नहीं समातीं बल्कि गरी जी उठती हैं परंतु पतिसंबंधी स्त्री पुरुष को आया देख, उनकी उसी दम अम्मा मरजाती है—इस पर तो उन्हों ने स्पष्ट हज़ारों गीत बना रक्खें हैं, उनको वे महाआनंद के साथ ढोलक बजा २ कर गाती हैं—जैसे "सास ननद मेरी बारेकीबैरिन आदि" हा! हज़ारों धिकार हैं उनके इन ऐसे महा आनंदप्रद गीतों पर, इन्हीं कुविचार और दुष्कर्मों से हमारे इस समस्त देश का सत्यानाश होगया ऐसा सच्चा निश्चय जानकर, कभी कोई भले घर की बहू बेटी, ऐसे सत्यानाशी दादरा आदि गीतों के पास न फटकें और इनसे अधिक और अधिकतर बुरे उन गीतों को जानें, जो विवाहादि में गाली वा सिठनी के नाम से पुकारे जाते हैं—इन महाभ्रष्ट गीतों का रिवाज बहुत जल्द मिटाकर बुद्धि और ज्ञान के बढ़ाने वाले गीतों का सर्वत्र प्रचार कराया जावे॥

२७ ॥ तृणानि भूमि रुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
॥ एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यंते कदाचन ॥

भा०—परमकृपालु मनु महाराज कहते हैं कि हरएक गृहस्थ का परमधर्म यह है कि उसके यहां आये हुए स्त्री पुरुषादि का सत्कार अपनी शक्ति के अनुसार वह अवश्य करे—महागरीब व दरिद्र गृहस्थ के यहां

भी ऊपर लिखे सत्कार के चार पदार्थ सदा मौजूद रहते हैं अर्थात् इनसे ख़ाली किसी का भी घर कभी नहीं रहता, बस अधिक नहीं तो उन्हीं से वह आये गये का स्वागत सदा करके सुरधाम को जाता है, जैसे (१) चटाई आदि आसन (२) बैठने लेटने योग्य धरती (३) लोटा भर जल (४) अति सुंदर व सुखप्रद मधुर संभाषण, अब सोचना चाहिये कि जिस किसी स्त्री पुरुष का कृत्य इसके विरुद्ध हो, अर्थात् वह अपने यहां आये हुए का सत्कार छोड़ उलटा उसका हृदय, अपने कुटिल वाक्य बाणों से यदि छिन्न भिन्न करे, वा दूसरों के मुख करावे, तो मनुजी महाराज के कथनानुमार उस दुष्ट वा दुष्टा पर, आकाश से वज्रपात हो वा नहो ? इसीलिये कहा गया है कि बैरी तक का आदर करने से कल्याण, और उस का जी जलाने से, हर एक गृहस्थ की नानाविध हानि, अनेक अज्ञात प्रकार से होनें लगजाती है, परंतु जिन को ऐसे महाआवश्यक अपने धर्म की ख़ुद ख़बर नहीं, और समझाने वालों की जिस घर में उलटी दुर्दशा होने लग जाय, वहां परमेश्वर स्मरण के सिवाय और क्या उपाय है ? अर्थात् उस समय महा दुःख के साथ स्पष्ट यही कहना पड़ता है कि "जाय विधाता दारुण दुख देई - वाकी मति पहिले हरलेई ॥ जहां सुमति वहां संपति नाना - जहां कुमति तहां विपति निधाना,, अर्थात् विनाश काले विपरीतबुद्धिः इत्यादि ॥

॥२८॥ अतिथि र्यत्र भग्नाशो गृहात् यस्य निवर्तते ॥
॥ स तस्य दुष्कृतं दत्वा पुण्य मादाय गच्छति ॥

भा०—सारांश यह है कि अतिथि (अपने यहां आया हुआ कोई पाहुना स्त्री पुरुष) किसी गृहस्थ के घर से यदि दुखी जाता है तो वह जरूर उस गृहस्थ का सब सुख छीनकर, उसके पलटे में उसके यहां दुःखों का पोटरा * छोड़जाता है, इसलिये कोई भी अतिथि, अपने से नाराज़ होकर न जाने पावे, अर्थात् अपने सामर्थ्य भर उस को सब लोग प्रसन्न करके

* इस पोटरे का ब्यौरा आगे नोट नंबर १७ में लिखा देखोगे ॥

जाने देवें, ऐसा गार्हस्थ धर्म है (१) क्योंकि अपने वेदों में स्पष्ट आज्ञा यह लिखी है कि मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव, तथाच पति देवो भव, अर्थात् माता, पिता, गुरु, अतिथि, और पति को, सदैव देवता समझकर सब तरह से उन्हे आनंदित रक्खो, और इस कृत्य का विशेषप्रभाव, आँगे वृद्धा विनय नामक प्रकरण में देखाजाय ॥

॥२९॥ येन केना प्युपायेन यस्य कस्यापि देहिनः ॥
॥संतोषं जनयेत् प्राज्ञ स्तदेवेश्वर पूजनं ॥

भा०—सब मनुष्यों को ऊपर विशेपधर्म बताकर, अब यह सामान्य धर्म, बताया जाता है कि भाई बने उस रीति तुम, देहधारी मात्र को सदैव अपने बर्ताव से संतुष्ट रक्खो और उसी को सच्चा ईश्वर पूजन (ईश्वरीय आज्ञा का पालन) जानते रहो ॥

॥ ३० ॥ छिन्नोपि चंदनतरु र्न जहाति गंधं बद्धोपि वारणपति र्न जहाति लीलां ॥ यंत्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः क्षीणोपि न त्यजति शीलगुणान् कुलीनः ॥

भा०—जैसे चंदन की लकड़ी, काटने और जलादेने पर भी वह अपनी मनोहर सुगन्धि को, नहीं छोड़ती और जकड़ कर बाँध देने पर भी कोई गजराज, अपनी आनंदलीला, नहीं छोड़ता और खुतरा कर २ के कोल्हू में रखकर पेरने से भी ईख, अपनी मधुरता, नहीं त्यागती-उसी प्रकार कोई कुलीना स्त्री, वा पुरुष, कभी किसी विपत्ति काल में भी यदि अपने शी-

(१) हरएक गृहस्थ को प्रतिदिन पंच महायज्ञ करने को कहे हैं उनमें यह अतिथि पूजन भी शामिल है और निःसंदेह उसका बड़ा ही पुण्य और बड़े ही अपूर्व लाभ हैं ॥

लादि सद्गुणों को न छोड़े तो वह जगत् उसको अच्छा कह सकता है नीच नहीं ॥

सारांश इस श्लोक का चंदन, हाथी, ईख और कुलीन के दृष्टान्तों से वही है जो आँगे (परुषाण्यपि या भोक्ता) इस श्लोक में स्पष्ट कहा है कि हे स्त्रियो तुम्हारा पति, तुमको चाहे जैसा क्यों न सतावे तथापि तुम सदा अपने शुद्ध व हित चित्त से हँसमुखी व मृदु और मधुर वचनी बनकर उसकी सदा देवता के समान सेवा करने में सनद्ध रहा करो–ऐसा तुम्हारा धर्म है और जिनसे ऐसा न होसके वे पति की नाराज़गी के समय चुप तो भी हो रहा करें, क्योंकि शास्त्र में झगड़ा बंद करने की यही एक सर्वोत्तम दवा लिखी है "मौनेन कलहो नास्ति मौनं सर्वार्थ साधक मित्यादि ॥ (१०)

॥३१॥ त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ॥
॥ ग्रामं जनपदस्यार्थे स्वात्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥

भा०–राजा अथवा समाज का धर्म यह है कि वे कुल वा किसी घराने वालों को सुखी वा पवित्र रहने के अर्थ उनके यहां से दुराचारी स्त्री पुरुष को निकाल दें तथा गांव की भलाई के लिये वहां के सब बुरे घराने वालों को दूर करदें और उसी प्रकार देशभलाई की दृष्टि से बुरे ग्राम को खोद कर बहादें और जिसे खास अपने आत्मा का कल्याण करलेना

(१०) इस पर सब देशों के बहुत से बुद्धिमानों ने ऐसी कथा पुस्तकों में बनाकर लिखदी हैं कि एक स्त्री ने किसी स्त्री से और दूसरी ने किसी पंडित से कहा कि पति की लड़ाई और मार पीट से मैं अति आरी आगई हूं कृपा करके इसकी औषधि आप बतावें–इसपर स्त्री ने दूसरे दिन एक बोतल में नमक मिला पानी और पंडित ने अभिमंत्रित चांवल देकर अपने २ रोगियों से कहा कि पति के नाराज़ होते ही तुम अपना मुह इससे खूब भरलिया करो, उन्हों ने सदा वैसाही किया और वे जन्मभर को सुखी होगई ॥

इष्ट हो वह पृथ्वी भर के सब मनुष्यों को छोड़कर कहीं एकांत में जाकर तपस्या करे, और जब स्वयं सिद्ध होजाय तब मनुष्य मात्र के हितार्थ बने सो काम और उपदेश करने को जरूर सन्नद्ध हो जाय जैसे कि अन्य महात्मा पुरुष कर गये हैं ॥

और इन महात्माओं के समस्त कर्तव्या कर्तव्यों का विचार, संस्कार विधि नाम की पुस्तक में पृष्ठ २१३ से २१७ तक लिखा है और उक्त पुस्तक वैदिक यंत्रालय अजमेर में छपी है और वहीं वह मिल सक्ती है ॥

॥ ३२ ॥ परस्तुतगुणो यस्तु निर्गुणोपि गुणी भवेत् ॥ इंद्रोपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापयन्गुणान् ॥

भा०—इस श्लोक का खुलासा अर्थ यह है कि दुनिया की रीति यह चली आती है कि बाहिर के दस आदमी जिस की तारीफ़ करें वह फिर कैसा ही बुरा वा निर्गुणी क्यों न हो परंतु लोग उस को अच्छा और गुणवान् ही समझने लगजाते हैं, लेकिन अपने मुख अपनी तारीफ़ करने वाला तो भाई साक्षात् इंद्र भी क्यों न हो वह बे क़ीमत होजाता है, यह बात जैसे मुसलमान नहीं समझते उसी प्रकार हमारे यहां की स्त्री जाति भी नहीं समझती अर्थात् अधिकतर स्त्रियें ऐसी देखी जाती हैं कि वे हमेशा अपने मुख अपनी तारीफ़ कर २ के ख़ुद आप धनाबाई, बना करती हैं यह बड़ा भारी दोष है—इस को सब प्यारी बहू बेटी अच्छी तरह समझें और जल्द उसे छोड़ दें तभी वे भली कहावेगीं नहीं तो कदापि नहीं, क्योंकि जिस ने प्रथम ही से अपने तईं अच्छा समझ लिया वह लंबोदर, वा उदरम्भर, वा शिश्नोदरपरायण मनुष्य, कैसे सुधर सक्ता है—ऐसे दुरात्मा स्त्री पुरुष सदा सच्चे विद्वानों के शत्रु, और निंदक, बन जैसी २ अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं वैसे ही वैसे वे अधोमुख होते हैं ॥

॥ ३३ ॥ समाने शोभते प्रीतिं राज्ञि सेवा च शो-

भते॥ वाणिज्यं व्यवहारेषु स्त्री दिव्या शोभते गृहे ॥

भा०—बराबर के मनुष्यों से मित्रता, राजाकी नौकरी वा खुशामद, और रोज़गारों में व्यापार, जैसे सुख और सौभाग्य के बढ़ाने वाले हैं उसी प्रकार सद्गुणों से संयुक्त स्त्री घर में होने से सब प्रकार का सुख व शांति सब मनुष्यों को प्राप्त होती है, जहां ऐसा नहीं वहां सुख वा शोभा कहां—इसलिये कोई प्यारी बहू बेटी, इस पुस्तक में लिखे गुणों से कोरी कभी न दिखाई पड़े, ऐसी हमारी सदिच्छा है उस की पूर्ति के अर्थ, हम यहां से आँगे और अनेक उत्तमोत्तम ग्रंथों का बहुत सा वह अभिप्राय, प्रमाण सहित लिखते हैं जिन के विचार से अवश्य हमारे देश की सब बहू बेटियों का ज्ञान बढ़े क्योंकि जगत् में सब सुखों का मूल एक अकेला ज्ञान-ही है ॥

॥ ३४ ॥ सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्य मप्रियं ॥ प्रियं च नानृतं ब्रूया देष धर्मः सनातनः ॥

भा०—श्री मनुजी महाराज सब स्त्री पुरुषों से कहते हैं कि सची बात बहुत ही कड़वी लगती है इसलिये हे भाई मनुष्यो, ठीक सनातन धर्म सब का यह है कि सदैव सब से सत्य तो ज़रूर ही बोलो परंतु वह कभी मृदु और मीठे शब्दों से खाली न हो और फिर वह तुम्हारा मृदु और मिष्ट वचन कभी कहीं अनृत (मिथ्या) से भी न सन जाय—परंतु बड़ा शोक की बात है कि हमारे यहां की कर्कशा स्त्री का तो कभी इधर ध्यान ही नहीं देखा जाता तभी एक भाषा कवि ने कहा है कि "मरे कर्कसानार—मरे खसम निखट्टू,, तथा दूसरा कहता है "अगर औरत के नाक न होती—तो खाती वो विष्ठा और जनम में थुकौती,, शरम शरम शरम ॥

॥ ३५ ॥ प्रिय वाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यंति जंतवः ॥
॥ तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥

भा०—हे स्त्रियों मनुष्यों की तो क्या चलाई अतिप्यारे और अति मधुर

वचनों से बड़े २ क्रोधी और खूंखार व्याघ्रादि पशु पक्षी तक अति संतुष्ट होकर मनुष्यों के वशीभूत हो जाते हैं—सो ऐसे सर्वोत्तम सर्व प्रिय मिष्ट वचनों का क्या तुम्हारे पास दरिद्र वा अभाव हो ? क्या हीरा मोती की भांत वह भी बहुत सी दौलत खर्च करने से तुम्हारे हाथ आसक्ता है या उसका मिलना ही इस संसार में दुर्लभ है ? यदि कहो कि नहीं, तो फिर क्यों सदैव के लिये मिष्ठ बोलना न सीखा जाय, जिस्से चहुंओर तुम्हारी तारीफ़ ही तारीफ़ हो ॥

॥ ३६ ॥ तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलै श्चैव वासराः ॥ ॥ यावत् सर्वजनानंददायिनी वाक् प्रवर्तते ॥

भा०—देखो कोकिल नाम का तनक सा पक्षी (जिसको कि कोइल वा कुइलिया कहते हैं) कैसी बुद्धिवानी के साथ चलता है अर्थात् उसकी रीति है कि वह उतनें दिनों तक बोलता ही नहीं जौलों कि उसकी बोली सब जगत् को प्यारी लगने के लायक़ तैयार नहीं होजाती तो क्या हमारी परम प्यारी बहू बेटी इस महा तुच्छ पक्षी के बराबर भी ज्ञान वा बुद्धि-वानी के साथ अपना काम न करजानें ?

जो स्त्रियें इस पक्षी के समान मधुर भाषण करतीं उनको संस्कृत व भाषा के कवीश्वर कोकिलस्वरा वा पिकवैनी आदि नामों से पुकारते हैं—इस प्रकार की समस्त बहू बेटियों का सर्वत्र बड़ा ही आदर व सत्कार हुआ करता है. और पति की बात तो पूछो ही मती उस्को तो ऐसी प्रियभा-षिणी भार्या अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी होजाती है और इस दशा में उस भार्या का नाम सुन्दरी, रमणी, रामा, ललना, प्रिया, प्रियतमा, प्राणप्रिया, कांता, प्राणवल्लभा और प्रेयसी आदि प्रसिद्ध होता है बहुत सी स्त्रियें अपने पति को अपने वश वा क़ाबू में करने के अर्थ दिन रात जलतीं भटकतीं और व्यर्थ नाना प्रकार से इधर उधर प्रतिदिन ठगी भी जाती हैं परन्तु फिर भी जब कभी किसी प्रकार से भी उनका मनोरथ सिद्ध

नहीं होता तब वे महा शोक सागर में गोता खाने लगजाती हैं-ऐसी महा मूढ़ स्त्रियों को भी सुख होय और वे उस महा विपत्ति से अपना छुटकारा पावें और फिर आयंदा कभी कोई स्त्री ऐसे संकष्टों में न फँसे इस विचार से हमने जैसा ऊपर श्लोक लिखा है वैसा ही हम यहां नीचे एक और भाषा का पद्य लिखते हैं—इन्हीं को सब स्त्रियें सच्चे मोहन मंत्र समझें, एक अकेले बेचारे पति की क्या चलाई तमाम दुनिया को वे बिना ही दाम अपने वश करलेने सक्ती हैं परंतु जबतक इसमें लिखे अनुसार वे कुछ कर न जानें तौलों पति को नाराज़ देखकर चुप रहने में ही उनकी बड़ी भलाई है ॥ कागा काको हरलियो, कोइल काको दीन । मीठे बचन सुं-नाय के, सब जग बस करलीन ॥

॥ ३७ ॥ शरीरस्य गुणानांच दूर मत्यंत मंतरं ॥
॥ शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पांतस्थायिनो गुणाः ॥

भा०—देखो शरीर और समस्त उत्तमोत्तम गुणों को कि उन दोनों के बीच कैसा भारी फरक है अर्थात् यह हमारा तुम्हारा मानुषी शरीर जिसे मूर्ख लोग मनुष्य कहते और बताते हैं वह कितना जल्द पानी के बुलबुले की भांति देखते २ नाहिं सा होजाता है और फिर किरोड़ों उपायों से भी उस नष्ट हुए शरीर का पता नहीं चलता अर्थात् गया सो गया अब वह कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता—परंतु मनुष्य के गुणों की वह बात नहीं अर्थात् वे इस समय से लेकर उस समय तक इस लोक में पाये जाते हैं जब तक कि चंद्र सूर्य और पृथिवी देखने में आवेगी, प्रत्यक्ष देखो हरिश्चंद्र, दुष्यंत, नल, विक्रम और भोज आदि राजा, व्यास वसिष्ठादि ऋषि, जगन्नाथ व कालिदासादि कवि, कौशल्या. सुमित्रा. सीता. शकुंतला. द्रोपदी. इंदुमती. दमयन्ती. अहिल्या आदि रानी महारानी, गार्गी. मैत्रेयी. अरुंधती. अनुसूया आदि विदुषी वा ऋषिपत्नी और साविश्री. लीलावती. कलावती. रत्नकला आदि निर्धन घराने तक की पतिव्रता स्त्रियों के शरीर आज मुद्दत से यहां नहीं हैं परंतु उन सब के सुन्दर

गुणों का वर्णन सर्वत्र अपने देश में किरोड़ों ही वर्ष से सुनते हैं और इससे बहुत अधिक काल तक सब सुनते रहेंगे—कहने को त्रिजटा व मंदोदरी राक्षसी होगई हैं परंतु उन दोनों ने लंका में श्री सीता जी महारानी पर अपनी सदा छत्र छाया रक्खी इसलिये इतनी दूर इस देश में सब लोग उनकी भी तारीफ़ कर रहे हैं ॥

सारांश शरीर कोई चीज़ नहीं किन्तु सर्वोत्तम पदार्थ गुण ही है उन का संग्रह छोड़कर महा तुच्छ जो शरीर उसके संयोग से जो अभिमानी स्त्री पुरुष, दूसरों के गुणों को न लेकर उलटा उनको कलंकित करने में व्यर्थ अपनी बुद्धि खर्च करते वा अन्यान्य रीति से किसी का चित्त दुखाते हैं वे इसी योनि में चांडाल कहाने लगजाते हैं, और सज्जन वे कहाते हैं जो दूसरों के दोषों को ढँककर उनका हमेशा गुण प्रकाशित करते हैं—देखो शूकर और हंस के दृष्टान्तों को कि उन में से एक संसार के सब उत्तमोत्तम पदार्थों को ढीलकर सदा मल मूत्र में अपना मुह अड़ाता है और दूसरा दूध मिले पानी में से पानीको छोड़कर केवल उसमें का दूध अपने मुखमें भरकर चैन करता है—उसी प्रकार गुण दोषोंसे संयुक्त यह समस्त जगत् सर्वत्र भरा पड़ा है उसमें का केवल सार मात्र, सब को लेलेना उचित है न यह कि पराये दुर्गुणों का वर्णन करके अपना नाम शूकरों में गिनावे वा आँगे शूकरी योनि में जा पड़ने की तैय्यारी करे ॥

॥ ३८ ॥ धर्मार्थ काम मोक्षाणां प्राणाः संस्थिति हेतवः ॥
॥ तन्निघ्नता किं नहतं रक्षिता किं न रक्षितं ॥

भा०—शास्त्रकारों ने लिखा है कि संसार में अब तक जितने मनुष्य हुए और होंगे, उन सब की मुख्य चार ही कामना देखी गई और देखी भी जावेंगी—उनमें से प्रथम धर्म, द्वितीय अर्थ, तृतीय काम, और चतुर्थ मोक्ष है—इन सबों का साधन, मनुष्य के शरीर व प्राणों से होता है—उन शरीरों व प्राणों का नाश करने वालों ने क्या नष्ट नहीं किया और उनकी रक्षा करने वालों ने क्या सुरक्षित नहीं रक्खा ? अर्थात् जो कोप वा कु-

माई, न कुछ बात पर अपने प्राण देने को, वा दूसरों के लेने को, तैयार हो जाते हैं. उनके बराबर अपराधी जगत् में कोई भी नहीं है (११) और उसी प्रकार जो निरन्तर अपने व पराए प्राणों की रक्षा करने को उद्यत रहते हैं उनके बराबर कोई पुण्यात्मा भी नहीं गिना जासक्ता—ऐसी स्पष्ट आज्ञा शास्त्रों की है—परंतु महा शोक का विषय यह है कि इस बात को हमारे देश की स्त्रियें, बिलकुल नहीं समझतीं अर्थात् अधिकतर चुड़ैलें, ऐसी देखी जाती हैं कि वे प्रथम लिखे अनुसार न कुछ बात पर क्रोध करके तुरंत अपने प्राणों को नष्ट कर देतीं हैं और बहुतसी कुलटा तो ऐसी देखी जाती हैं कि वे पति के प्राणों की भी ग्राहक बनजातीं हैं, और ऐसा करने वालियों में से बहुतसी ऐसी, होशियार होती हैं कि वे इतना भारी अनर्थ करके भी अपना नाम, ऊपर नहीं आने देतीं—इसी कारण कविलोगों ने कहा है कि "स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः—तिरिया चरित्र जाने नहिं कोई, खसम मार सत्ती वह होई—इत्यादि,,

देखो कैसा भारी और ज़बर्दस्त, यह कलंक स्त्री जाति को लग रहा है—

(११)दौड़ धूप होने से इन प्राण देने वाली औरतों की बहुधा जान बच-जाती है—उस समय सरकार से इनको उनके इस दोष के बदले बहु-काल के लिये जेलखाने की महादारुण सज़ा होती है, और यदि मरगई तो उससे भी अधिक इनकी यह दुर्दशा होती है कि उनको कुत्ते की तरह चमार वा भंगी ३। ४ दिन तक घसीट कर ठौर २ लेजाते हैं—तहां सैंकड़ों मनुष्य, इनको नग्न करके देखते हैं—और अंत में उनकी ख़ूब चीर फाड़ होकर वह सड़ी गली उनकी लाश, फेंकी जाती है—तब तक इनकी इस महादुष्ट करतूत के बदौलत इनके महाहितू बेचारे पति पुत्रादिकों की हा !!! जो २ हानि और कुगति, होती है उसका वर्णन यहां हम से हो नहीं सक्ता—कहो ये काम किस भली स्त्री के कहे जासक्ते हैं, और इस प्रकार की स्त्रियें, व्यर्थ अपने दोनों लोक नसाती हैं वा नहीं? यदि पुरुष की जाति, ग़मख़ोर न हो, तो ऐसी वारदातें, सर्वत्र प्रतिदिन सैंकड़ों ही देखी जांय—शोक ३ ॥

इसका जड़ से नाश हो इस दृष्टि से यहां पर यह दर्साया गया है—उसको हमारी सब प्यारी बहू बेटी देखकर ऐसा अपना चरित्र सुधारें, कि जिस से श्री जगदीश्वर की इच्छानुसार समस्त जगत् का उनके द्वारा पूर्ण उपकार हो ॥

देखो संसार में धरती से आकाश तक जितने जड़ वा चेतनरूप छोटे बड़े पदार्थ वा जीव जंतु, तुम देख सुन रहीं हो, उनमें से कोई एक भी परमात्मा ने ऐसा नहीं बनाया जिस से जगत् का उपकार न होता हो, तो क्या तुम्हीं एक ऐसी व्यर्थ उत्पन्न होकर मरजाना चाहती हों कि जिनसे कुछ भी उपकार इस जगत् का न बना हो, इतने ही दोष से जब कि मनुष्य को नरक में जाना पड़ता है फिर संसार की हानि करके जानेवाले की क्या २ दुर्गति न होती होगी? इसलिये कभी कोई स्त्री वा पुरुष, अपने वा पराए प्राणों का नाश करने के अर्थ साहस, स्वप्न में भी न करे ॥

॥ ३९ ॥ संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रांतिहेतवः ॥
॥ अपत्यं, च कलत्रं, च सतां संगति, रेव च ॥

भा०—विदित रहे कि इस संसार में वर्त्तनेवाले पुरुषों को बाहर के अनेक प्रकार के खेद और संताप सदैव जलाते रहते हैं—ऐसे मनुष्यों के तमाम शरीर और हृदय में लगी आगी को प्रतिदिन बुझाकर उन्हें हरा और शीतल करने वाले केवल नीचे लिखे तीन पदार्थ सदा उनको अपने घर में दर्कार होते हैं अन्यथा, उन बेचारों की बिना ही मीच मौत है ॥

१ सुशिक्षित पुत्र (२) प्रियालापिनी भार्या और (३) साधु वा सज्जन पुरुषों का समागम, परंतु देखते हो कि इन दिनों धरती पर कैसी उलटी हवा बह रही है अर्थात् बहुत कम ऐसे घर, तुमको इन दिनो खोजने से मिलेंगे कि जिन में चंद्र वा चंदन के समान नेत्र और हृदय को जुड़ाने वाले पुत्र, मौजूद हों अथवा चांदनी के समान सब अंगों को शीतल करने वाली सुंदरी, रमणी, रामा, वा ललना नाम की कोई भार्या सुंदर आनंदप्रद पानी व पंखा आदि सब सामग्री, लिये अपने परम प्रिय पति

की मार्ग प्रतीक्षा करती बैठी हो—किंतु घर २ ऐसी दुष्टा व महाकृत्या स्त्रियें बैठी बहुत मिलेंगीं, कि जो राक्षसी, दिन भर के थके माँदे महाश्रमित पति को घर आते २ आपत्ति में डाल देती हैं—ये महा कुलटा प्रथम से ही तकी रहती हैं कि कब पति घर आवे और कब उसे अपने तीखे पैने और महाज़हरीले शब्दरूप बाणों से मारकर लोट पोट करदेवें ॥

ऐसा ये चांडालिनें हज़ारों बार करके भी संतुष्ट नहीं होतीं किन्तु आठ पहर ये खाट वा खटोला आदि की आड़ें लगाएं ताका करती हैं कि कहीं हमारा पति, किसी स्त्री वा पुरुषादि के संयोग से अपने लिये कोई सुख की सामग्री तो इकट्ठी नहीं करता, अभी चलकर यदि उसके रस में बिस न घोल दिया तो मेरा धरती पर पैदा होना ही वृथा है—सारांश दिन चूका तो रात नहीं चूकने देवेगी और रात चूकी तो दिन का चूकना महा कठिन है और कोई समय न मिला तो रोटी खाने का समय तो ज़रूर ही यह सर्पिणी, अपने हाथ से नहीं जाने देवेगी-शास्त्रकारों ने (भोजने जननी समा) लिखा है कि स्त्रीजाति का धर्म है कि वह, जिस समय किसी को भोजन कराने को बैठे उस समय उसको ऐसे हित चित्त से वह रोटी खिलावे जैसी कि उसकी माता, परम संतोष से सदा उसे, रोटी खिलाती रही है—सो सब अपना धर्म, भूल कर यह राक्षसी, पति के खाने के समय स्पष्ट कहती है कि अरे मूर्ख तेरी कही उस फलानी बात का उत्तर देने के अर्थ कल की सब रात, मुझे घंटा गिनते कोरी आंखों निकर गई अब सुनले कान खोलकर उसका उत्तर तूं अच्छी तरह मुझ से ।

कहां तक कहें यह महा कृतघ्नी स्त्री, बड़े २ विद्वान सभ्य और जगत् मान्य पुरुषों तक के दोषों को मशालें लगा २ कर ढूढ़ने नहीं लजाती—जन्मभर जिस पतिने उत्तमोत्तम सुग्रास भोजन, व वस्त्रादि सब यथेच्छ पदार्थ, देकर बड़े लाड़ प्यार से जिसे इतना बड़ा किया और जिसकी कृपा से जन्म के पार लगानेवाले सुंदर पुत्र, पाए उस पति के गुरू और बाप दादे तक की खबर यह साँपिन बिना लिये नहीं छोड़ती और उस समय यदि बेचारा पति, हलके बोलने के लिये इससे कहे तो यह लातन की देवता, साफ़ कहती है कि मैं तो चौड़े सड़क पर खड़ी होकर इस्से भी

अधिक ज़ोर से चिल्लाकर तेरी कमाई हुई तमाम इज्ज़त, अभी धूर में मिलाऊंगी बल्कि नगरांनगरों में पत्र भेज २ कर तुझे इतना सब जगत् में फज़ीहत कर छोडूंगी कि जिससे फिर कभी आगे तुझ डाढ़ीजार को मांगे भीख तक न मिले।

लोग कहेंगे कि बिना पढ़ी स्त्रियें, ऐसी दुष्टा होती होंगीं क्योंकि वे बेचारी जानती ही नहीं कि शास्त्र में पति का माहात्म्य और सन्मान करना कैसा क्या लिखा है? परंतु हम कहते हैं कि बिन पढ़ीं फिर भी भाई अच्छी होती हैं—वे केवल भला बुरा मुख से कहकर तोभी चुप हो जाती हैं परंतु पढ़ी लिखीं कृत्यां तो बड़े २ खर्रा, पति की निंदा में लिखती हुई हम देखीं, और यदि किसी भले आदमी ने इस महा विपत्ति से बचने के विचार से इस से बोलना छोड़ दिया तो फिर यह कुलटा, दिन रात नौकर चाकर लड़का लड़की अथवा अड़ोसिन पड़ोसिन और आये गये स्त्री पुरुषों के कान भर २ कर पति को रंज पोंहचाती हैं—कहां तक कहें यह महा छूत घूरे की पत्तल, अपने प्राण देने और दूसरे के लेने तक को तो सदा तैयार रहती है परंतु नेक चाल चलना उसको मंज़ूर नहीं होता, बल्कि वह अपनी इसी चाल को अति पवित्र जानती है—धिक धिक धिक ॥

॥ ४० ॥ यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो गुणोपेतः ॥ तनयात्तनयोत्पत्तिः सुरपुरनगरे किमाधिक्यं ॥

भा०—अनेक महा पंडितों ने कहा है कि जो स्त्री सदा सन्मार्ग गामिनी होती है अर्थात् जिसके संयोग से उसके पति आदि सब मनुष्यों को सदैव सर्व सुखों की प्राप्ति होती है—उसको शास्त्रकार, रामा कहते हैं-जिस पुरुष के घर वह रामा, और रमा (दौलत) और सच्चा व पूर्णगुणवान् उसका सुशील लड़का, और वैसाही कहीं नाती भी उस घर में उत्पन्न होजाय तो ऐसे मनुष्य के सन्मुख, इंद्रलोक में क्या अधिक सुख है? क्या ऐसे वचनों को सुनकर भी हमारे घरों की कलहा स्त्रियें, नहीं लजावेंगीं? शोक! शोक! शोक ॥

॥ ४१ ॥ अर्थागमो नित्य मरोगता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ॥ वश्यस्तु पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षट् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥

भा०—समस्त शीलवती बहू बेटियों को मालूम हो कि इस जीवलोक के सब सुखों के मुख्य मूलकारण, नीचे लिखे ६ पदार्थ हैं, बिना इनके कभी तुम्हारे पति व तुमको आनंद प्राप्त नहीं होसक्ता ॥

जैसे (१) रोज़गार का होना (२) बीमारी का न होना (३) परम प्यारी और (४) प्रिय बोलनेवाली पतिव्रता स्त्री का घर में होना (५) आज्ञाकारी पुत्र और (६ ठा) पदार्थ पति पुत्रों में धन पैदा करनेवाली विद्या का होना ॥

अब सब स्त्रियों को सोचना चाहिये कि यहां इन ६ गुणों में प्रिया और प्रियवादिनी भार्या जो कही है वह किन २ घरों में तो है और किन २ में नहीं, और जहां वैसी भार्या नहीं वहां वैसे पुत्रादि पदार्थ कहां से आवेंगे ? क्योंकि उन सबों की ख़ास जड़ तो स्त्री की ही ज़ात है यदि वह प्रिया, और प्रियभाषिणी, ठीक ठीक है तो उसके पति को और उसके पीछे उस स्त्री को घर में ही नहीं किंतु जंगल में ही सदा मंगल, अर्थात् सातो सुख हैं—और जहां ऐसा नहीं तो इंद्रासन के समान मिलेहुए तमाम सुख समुदायों की भी, वहां सदा धूल है ॥

॥४२॥ सानंदं सदनं सुतास्तु सुधियः कांता प्रियालापिनी ॥ साधोः संग मुपासते च सततं धन्योगृहस्थाश्रमः ॥

भा०—फिर कहते हैं कि हे स्त्रियो, जिसके घर चहुंओर आनंद बढ़ाने वाले अनेक प्रकार के पदार्थ, सुशील व बुद्धिवान् लड़का लड़की और

हँसमुखी कांता अर्थात् अपने समस्त सद्गुणों से पति के मन को रिझाने और लुभाने वाली परम प्यारी ऐसी स्त्री हो जो हर घड़ी व हर समय हँसमुखी रहकर सदा मधुर व रसीली वार्तालाप करती हो, और हमेशा जहां सब सज्जन स्त्री पुरुषों का ही आना जाना हो, उस पुरुष का गृहस्थाश्रम धन्य, और जहां इस के विपरीत सब चरित्र हो उसका गृहस्थाश्रम धिक् २ कहाता है-अब सोचना चाहिये कि यहां इस श्लोक में कांता, प्रिया, और प्रियालापिनी स्त्री, हर एक घर में होने के लिये जो कही है सो कहीं स्वप्न में भी जब न देखी जाय, तब उन घरों के स्त्री पुरुषों को कैसे उस भट्टी के समान उनकी गिरस्ती में सुख वा शांति प्राप्त हो? और कैसे उनसे उनकी वह गिरस्ती चलाई जासके ॥

॥ ४३ ॥ मातेव रक्षति पितेव हिते नियुंक्ते कांतेव चा भिरमयत्यपनीय दुःखं ॥ कीर्त्तिं च दिक्षु वितनोति तनोति लक्ष्मीं किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥

भा०—देखो विद्या की तारीफ़ करते हुए बड़े २ महर्षियों ने स्त्रियों का क्या गुण, वर्णन किया है-यदि वह गुण, हमारी स्त्रियों में न हो तो व्यर्थ है उन सब दुष्टाओं का वह तमाम जन्म-वे साफ़ कहते हैं कि विद्या, माता के समान पालन, पिता के समान सर्व हित, और कांता स्त्री के समान पुरुष के समस्त संतापों को, हटाकर उसे सार्वकाल आनंदमग्न, रखती है-इतना ही नहीं किन्तु वह (विद्या) मनुष्य की कीर्त्ति को सब दिशाओं में बढ़ाती हुई कल्पलता के समान, कहो किस पदार्थ को प्राप्त कर देने सक्ती है, कहिये इन दिनों कौन से बाप की लली (बेटी) ऊपर लिखे अनुसार पति के संपूर्ण संतापों को हटा कर उसको सब तरह सुखी और सुप्रसन्न, रखने की सदा चिंता रखती है,-ऐसी चिंता करना तो दूर किन्तु उलटी उसको अनेक दुःखों को देने के लिये बहुत सी दुष्टा

स्त्रियें पूर्व लिखितानुसार सदा घर में तकी रहती हैं-कहो कैसा महाशोक हमको यहां पर यह ? ॥

॥४४॥ विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च ॥
॥ व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥

भा०—परदेश में विद्या, घर में स्त्री, रोगग्रसित को औषध और मरे मनुष्य के लिये उसका किया हुआ धर्म, मित्र के समान हितकारी कहे जाते हैं-इस कारण स्त्रियों को प्रतिदिन घर में स्थित अपने पतिदेव के साथ कभी कोई काम, मित्रता के विरुद्ध, नहीं करना चाहिये, अर्थात् जैसे हर एक पुरुष का सच्चा मित्र, सदा अपने मित्र को आनंदित रखने के सब काम, करता है-उसी प्रकार हर एक स्त्री, अपने पति की प्रसन्नता के अनुकूल, अपनी प्रकृति और आकृति बना लेवे, न यह कि पुरुष कहे आम तो उसकी स्त्री कहे इमली, बस यही विरुद्ध और विपरीत काररवाई पति पत्नी का जन्म, बिगाड़ देती है-सो बहुत सी फूहरें नहीं समझतीं-और कोई २ स्त्री तो, इनमें अपने मिथ्या पतिव्रत पन के घमंड और उसके नशे में ऐसी चूर, वा मस्त, वा बेहोश, रहती हैं कि जिसका इस छोटी सी पुस्तक में वर्णन करना ही महाकठिन है-परमात्मा न करे कि ऐसी छूत स्त्री, कभी किसी भले आदिमी के पल्ले पड़े, सच पूछो तो वे जानती ही नहीं कि असल में पतिव्रत किसको कहते हैं-केवल परपुरुष का मुख, न देखने ही मात्र को, अपना बड़ा पतिव्रतापन, समझ बैठना, सरासर स्त्री जाति की भूल, और व्यर्थ का अहंकार है-उनका यह थोथा पतिव्रतापन ऐसा है जैसा रूखा. सूखा. महा कठोर. नीरस भोजन-इस प्रकार की पतिव्रता से तो वेश्या, हज़ार दर्जा अच्छी होती है-ऐसा ऊपर बहुत से लोगों का मत दिखा चुके हैं-और इसी बुराई के कारण, बहुत से पुरुष, वेश्याविलासी होजाते हैं-अब ठीक २ पतिव्रत, वा पतिव्रतापन, किसको कहते हैं-यह जिनको समझ लेना बाकी हो-वे आँगे, राजा दशरथ व सीता जी आदि पतिव्रता स्त्रियों के लिखे वाक्यों को अच्छी तरह, देखें

वा सुनें, अर्थात् उनसे ख़ूब जानकार होकर सुशीला स्त्रियों के समान, सच्ची पतिव्रता बनना, सीखें–अन्यथा कभी किसी भी स्त्री का सुधार व उद्धार इस जगत् में नहीं हो सक्ता ॥

अस्तु अब मित्र के लक्षण सुनो जिसके कि अनुसार स्त्रीजाति को, अपने प्रिय पतिदेव के साथ, बर्त्ताव करने को सर्वत्र, कहा है ॥

॥ ४५ ॥ दुःखा न्निवारयति योजयते हिताय गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटी करोति ॥ आपद्गतं च न जहाति ददाति काले सन्मित्रलक्षण मिदं प्रवदंति संतः ॥

भा०—हमेशा जो दुःखों से छुड़ावे, और हित में लगावे, और उसके सब गुप्त कामों को छुपावे, और सर्वत्र उसके गुणों को प्रकाशित करे, और कभी किसी विपत्ति काल में साथ न छोड़े, और जो कुछ कि उसके पास है वह सब, आनंद से देने को सदा प्रसन्न रहे, उसे सत्पुरुष, सन्मित्र कहते हैं–ऐसी मित्रसम, जो सदा बर्त्ते, सो स्त्री. कुलवधू और पतिव्रता और इसके विपरीत हो वह स्त्री, कुलटा कहाती है ॥

॥ ४६ ॥ आयु र्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्र मैथुन भेषजं ।
॥ तपो दानापमानं च नव गोप्यानि यत्नतः ॥

भा०—(१) अपनों का आयुष्य (२) अपना धन (३) अपने घर के मनुष्यों की बुराई (४) उनकी गुप्त सलाह (५) अपनी वा अन्य स्त्री पुरुषों की एकांतिक (५) वार्ता (६) औषधि (७) तपस्या (८) दान और (९) हानि वा अपमान, ऐसे ये नौ पदार्थ, निरंतर सब स्त्री पुरुषों को बहुत यत्न पूर्वक गुप्त, रखने के लिये कहे हैं अर्थात् इनका भेद कभी किसी बाहिरवाले से न कहना चाहिये, जो ऐसा

नहीं करते वे स्त्री वा पुरुष संसार में महाभ्रष्ट वा नीच वा नासमझ कहाते हैं, और उनकी जगत् में हँसी कुदर और अप्रतिष्ठा भी बहुत होती है—इतना ही नहीं किन्तु दोष नम्बर ४ व ५ की चूकों से बहुत कुछ हानि. और दुःख. उठाने पड़ते हैं (१२) और इस प्रकार की स्त्री के लड़का लड़कियों के विवाह भी सहसा नहीं होते।

ऐसी हज़ारों हानें, नादान वा कुलटा औरतें चुपकां घर बैठीं कराया करती हैं, इस की उन दुष्टाओं को कभी स्वप्न में भी खबर नहीं पड़ती—जब दूसरी स्त्रियों के पुत्रों का ब्याह होता वे देखतीं, तब ठंढी सांसे ले ले कर कहती हैं कि हाय हमारे ललुआ मंनुआ को ब्याह ऐसो अपने घर आओ हम अभागिन कब देखेंगी—इस प्रकार रात दिन चिंता में डूबीं जब ये देखी जाती हैं तब बीसियों ठग ठगिनी इन की अति हितू बनकर इन को घेर लेतीं हैं—कोई इन को जप तप व्रत करने कहते, और कोई

(१२) "द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्" जैसे ऊपर एकांतिक वार्ता कहदेने का दोष कहा है, उससे लाखगुना अधिक अपराध, दूसरों के एकांत में घुस जाने का समझो अर्थात् जिस ठौर कोई दो स्त्रियें वा दो पुरुष अथवा एक स्त्री और एक पुरुष बैठे वा लेटे हों, उस ठौर जाने का कभी कोई साहस, मत करो प्राणांत ज़रूरत आ पड़े तो बहुत दूर से उन दोनों में से किसी एक को बुला लिया जाय परंतु ख़ुद वहां तक उस दशा में भी कभी न जाय, क्योंकि मनुष्य के अनेक दोषों की क्षमा कही है परंतु इस दोष की क्षमा किसी मनुष्य से नहीं होसक्ती प्रत्यक्ष देखलोकि इस महापाप का घोर दंड राजा रामचंद्र ने अपने महाप्राणप्रिय भाई लक्ष्मण जी, और राजा युधिष्ठिर ने अर्जुन तक को, दे छोड़ा है. हालांकि उस समय उन बेचारों को बदर्जे लाचारी अपने बड़े भाइयों के एकांत में जाना पड़ाथा, अतः किसी स्त्री पुरुष को कभी भूलकर भी इस महा अनर्थ कारी दोष में, न फँसना चाहिये—कदाचित् कभी कोई तुम को किसी प्रकार का दंड नहीं देसकेगा तो भी उसे तुम, सदैव खटकोगे, और इसके प्रतिफल में अनेक प्रकार के अनर्थ और विपत्तियां आमरणांत तुमको भोगनी पड़ेंगीं, और बेवकूफ कहाना तो भाई कोई बातही नहीं है ॥

मंत्र.तंत्र. यंत्र व पाठ पूजा आदि के जालसे, और कोई लांच घूंसके बहाने, भीतर ही भीतर ख़ूब, ठग ले जाते हैं—उस की इन बेहोश सिड़िनों को उमर भर थाह ही नहीं लगती कि दर असल वे विवाह के उपाय न थे, किंतु निरी ठगई थी—फिर ये बेअक़्लें, सब से झींक २ कर कहती हैं कि बेहना, हम ने सब २ उपाय, कर छोड़े लेकिन उन में से कोई एकहू हमें न फलो, परिणाम में बात नसीब पर लातीं हैं, परंतु यह नहीं जांनतीं कि यह सब, हमारे दुष्ट स्वभाव. दुष्ट बुद्धि. और दुष्ट मुख का ही पूर्ण प्रतिफल है, अर्थात् हम. सदा घर में ठांय २ जो करती रहती हैं उस की देखने वा सुनने वाली उन सब स्त्रियों ने, बिरादरी की सब स्त्रियों का मन, उटका दिया है जिन से कि हमेशः हम, अपने वा पराए घर बैठ कर सेहल सुभाव बात चला चला कर घर का छिद्र, अर्थात् पति पुत्रादिकों के ऐब दोष व्यर्थ कहती रही हैं—बस वे ही सब बातें, धीरे २ एक दूसरे के मुख, जगत् में फैल कर आज तुम्हारे पुत्र पुत्री के ब्याहों में विघ्नकारक हो रहीं हैं, अब तुम हज़ार जप तप और व्रतादिक करके मर जाओ उनसे क्या होना है—उसे पूछता ही कौन है—उस समय तो कुछ और ही पूछाजाता है—क्या तुम अपनी कन्या के विवाह करने की चिंता में किसी स्त्री पुरुष से कभी यह पूंछती हो वा पूछोगी कि कौन सी स्त्री. अपने लड़के के विवाह के लिये जप. वा तप. आदि उपाय करके ठग ठगा रही है जिसके कि यहां हम अपनी लड़की देवें, अथवा यह पूछोगी कि फलां लड़का और उसके मा बाप का स्वभाव और गुण कैसे हैं और उनको दूसरों के मुख यदि बुरा सुनोगी तो उस घर में अपनी लड़की के देने को तुम्हारा मन कभी होगा? कभी नहीं ३ तो बस ख़ूब समझलो कि इन्हीं कारणों से दूसरी स्त्रियों का भी मन, तुम्हारे घर कन्या देने को न होगा, चाहे फिर तुम्हारा घर कैसाही भरा पूरा क्यों न हो ॥

ऐसे अनेक नुक़सान, तुम्हारे ही हाथों, तुम्हारे घरों में होते हैं, उनको महामूर्खा जो स्त्री की जाति, वह नहीं समझती—इसी कारण शास्त्रकारों ने ऊपर के दोनों श्लोकों में "गुह्यं च गूहति, और गृहच्छिद्रं न प्रकाशयेत्" इत्यादि बहुत से वचन, केवल तुम्हारा पूर्ण हित सोच कर लिखे हैं—उन

महा दयालु महर्षियों के उपदेशों को मानकर उनके मर्मों को हमारी प्यारी बहू बेटी सफल करें—अर्थात् कभी भूलकर भी अपने पति पुत्रादिकों का दुखड़ा, बाहिर वालों के सामने न गाया करें क्योंकि दूसरों के बुरा कहने से ऐसी हानि नहीं होती जैसी कि माता पितादि के कहने से होती है—संसार के सामान्य पुरुष तक कहते हैं कि भाई बँधी मुट्ठी में बड़े लाभ हैं, इसलिये हमेशः लड़कों को गुणवान् करके अपने सब मनुष्यों को सदैव अपने यहां आने जाने वालों के सन्मुख, प्रसन्न मुख से "भद्रंभद्र मिति ब्रूयात्,, अर्थात् अच्छा ही अच्छा कहना चाहिये" हलक से निकली खलक में भई,, की कहावत, जगत् में प्रसिद्ध है—उसका तुम अर्थ समझ कर पूर्ण विश्वास करो और जिन दुष्टा अपनी नंद. भावज. आदि नातेदारिन वा किसी मुंडो मिस्रायिन. वा पंड़ियांइन. वा ठकुराइन आदि अपनी भायलिन. वा गुइनी. वा टेहलनी. आदि का तुम विश्वास अबतक करतीं रहीं हो उनके मूड़ में छार मेलो, और समझो कि जैसी हम उनकी सब बातें अपने पति से तुरंत कह देती हैं उसी प्रकार वे सब दुष्टा व विश्वासघातिनें, हमारा भी दुखड़ा घर जात २ अपने पति आदिको सुनाती हैं परिणाम में वह बात धरती भर में हो जाती है ॥

सैंकड़ों गुप्त बातें जैपुर जोधपुर उदैपुर और गवालियर आदि रजवाड़ों के रनवासों की आज हमसे कोई आकर सुनजाय, कहो कहां वे और कहां हम, फिर तुम्हारी कही कैसे छिप सक्ती है—स्त्री जाति तो वैसे ही पेट की महा हलकी और अति क्षुद्रा कहाती है औरों की क्या चलाई ये दुष्टा, पति की कहीं महा गुप्त बातें तक प्रकाशित करने में नहीं चूकतीं, अतः अनेक सत्पुरुषों की केवल प्रतिष्ठा ही नहीं गई किंतु प्राण भी गए हैं—अतएव राजा विक्रम, भोज और भर्तृहरि ने इनको व अपुन को धिक् २ कहा है और ऐसे ही इनके अनेक दुर्लक्षणों से कवि लोगों ने "प्रमदाजन विश्वासो मृत्योर्द्वारं,, तथा "नारी प्रत्यक्ष राक्षसी,,"नार्या पिशाच्या नहि वंचितः कः,, "नारी गृहविनाशिनी,, "कं स्त्रीकृता न विषया परितापयंति,, "स्त्रीभिः कस्य नखंडितं भुवि मनः,, स्त्रीबुद्धिः प्रलयंकरी,, आदि बड़े २ दारुण वाक्य, प्रसिद्ध कर छोड़े हैं—सो हम से किसी तरह

देखे वा सुने नहीं जाते-देखें इसकी लज्जा, कौनसी स्त्रियें वा बहू बेटी यहां अब करती हैं ॥ (१३)

(१३) "सर्वदा भूषणं पुंसां क्षमा, लज्जैव योषितां-सलज्या गणिका नष्टा निर्लज्या च कुलांगना,, स्मरण रहे कि पुरुषों के लिये सर्वोत्तम अलंकार जैसी क्षमा कही है उसी प्रकार स्त्रियों के लिये अनमोल ज़ेवर लज्या है जो उसकी क़दर नहीं करतीं उनकी जगत् में बहुत जल्द, अपकीर्ति और अप्रतिष्ठा हो जाती है अतः हमारी परमप्यारी बहू बेटियां, कभी क्षणभर के लिये भी अपने इस अमोल्य अलंकार का परित्याग न करें-तभी उनको सर्वोपरि सुख और अमिट प्रशंसा उपलब्ध होगी, इतनाही नहीं किंतु इसके द्वारा उनके और भी अनेक मनोरथ सदा सिद्धहोते रहेंगे।

विदित होकि नाचना, गाना, बजाना, हाथ वा नेत्रादि का मटकाना, सेन करना, भींत वा धरती पर व्यर्थ लकीरें खींचना, वा नख से उनको कुरेदना वा किसी के बीच में मुँह डाल बैठना, वा हर बात का पट्ट जवाब दे बैठना, ज़ोर से बोलना, वा हँसना, वा मसकरी करना, वा फड़ाफड़ छींके वा जम्हाई वा डकारों का लेना, वा ऐंड़ाना, वा व्यर्थ बैठे ठालें पादादि अवयवों को हिलाना, वा फड़काना, वा कँपाना, महीन चूड़ी वा वस्त्रादि का पहिनना, वा अंगों का खुला रखना, बिना सत्संग वा बिना पूछे वा बिना बुलाएँ घर से निकल जाना, झांकी तमाशों का देखना, वा मेला ठेला में फिरना, वा मर्दाने घाटों पर नहाना, वा वेश्याओं के समान ठठना, वा पुरुषों से पदार्थों को ख़रीदना वा ठिल ठिलाना, सवेरे ४। ५ बजे से पूर्व, सोकर न उठना, निष्कारण चाहे जिस स्त्री को बे खौफ़ अपने घर आने देना, आकाश मार्ग से गृहांतरों की दौड़ें लगाना, बिना पूछे अपने वा अपने घर के पदार्थ वा गेहेना वा कपड़ा वा रुपया आदि का बाहिर की स्त्रियों को वैसेही वा मँगनई में दे बैठना, वा छुपाकर स्वेच्छानुसार गेहना व वस्त्रादि का ख़ुद बनवाना, पान तमाखू आदि मादक पदार्थों का खाना वा पीना, सत्य धर्म को छोड़ असत्य धर्म पर चलना, वा किसी बगला भगत को गुरू बनाना, घरवालों का कहा न मानना वा सदा दास दासियों से अरियाय वा गरियायकर बोलना

परंतु यह सब तुमसे तभी बन पड़ेगा, जब प्रथम तुम अपने स्वभाव का बदल देना मंज़ूर कर लोगी, और स्वभाव भी तब बदलेगा, जब ऊपर लिखे अनुसार अपने हृदय में तुम यह निश्चय करलोगी कि जैसा हमारे परम हितू घरवाले, हमारा स्वभाव बहुत बुरा बता रहे हैं वैसा वह अवश्य ही बुरा है—बस उसी घड़ी से उसका सुधार होने लग जावेगा और उस का प्रत्यक्ष फल यह होगा कि जैसे रोग गए पीछे, रोगी मनुष्य की सब हाय २ मिट कर वह सुख से खा पीकर सोता है, उसी प्रकार सुधरे स्वभाववाली का चित्त, सदा शांत और प्रमुदित रहने लग जावेगा और घर के सब हितू मनुष्य, इससे पूर्व जो उसे कालसम दीख पड़ते थे वे सब अब उसे ऐसे प्यारे लगने लग जावेंगे जैसे कि रोगी को रोग निवृत्त भए पीछे उसका सद्वैद्य, जिसको कि धन्यवाद देते अब वह नहीं अघाता, कहो रोगी रहा तब यह पुरुष अपने उक्त वैद्य को कैसा बुरा समझतारहा? वही दशा आज तुम अपनी समझो अर्थात् जब तक तुम्हारे जीवात्मा को पूर्ण सुख न हो और जब तक तुमको सास वा ससुर वा पति सुखदायी न जान पड़ें, तब तक तुम ज़रूर यह समझतीं रहो कि निःसंदेह हमारा दुष्ट स्वभाव हम में अबतक वैसाही दुखदायी बनाहै जैसा कि रोगीमें उसका रोग।

परंतु हमारी स्त्रियों में परमेश्वर की कृपा के बिना ऐसी पवित्र बुद्धि का समुत्पन्न होना, बहुत ही कठिन है जिस से कि वे किसी तरह ऐसा समझ सकें कि अवश्य हमारा, स्वभाव बुरा है—इस पर हम एक आंखों देखा लघु दृष्टांत लिखते हैं—थोड़े ही दिनों की बात है कि एक भले घर की स्त्री, अपने लड़के को दिखा कर हम से उस की शिकायत इस

आदि सब कर्म, निर्लज्जता में दाखिल हैं—सो वे वेश्याओं को छजते, कुलवधू वा कुलांगनाओं को कदापि नहीं—तथा ज्ञात रहे कि जो अपनी सब प्रकार की सुचाल और स्यानपन व चतुराई व शीलादि सद्गुणों व हर एक काम काज से सबको प्रसन्न रखकर घड़ी २ अपने माता पिता और सास ससुर आदि की वारंवार प्रशंसा कराती हैं, वे कुलवधू व कुलांगना कहातीं और इसके विरुद्ध अर्थात् मनमानी चाल चलनेवाली स्त्रियें दुष्टा, कुल्टा, वा कुलटा आदि बोली जाती हैं ॥

प्रकार करने लगी कि देखो यह इतना स्याना समाना लड़का अपना ब्याह नहीं करता, साफ़ कहता है कि तेरा स्वभाव महा बुरा है इस लिये मैं पराई लड़की को आपत्ति में नहीं डालना चाहता, कहो यह कौन है जो मोसौं ऐसी कहे ! और इस के पीछे अपना ब्याह न करे ! इस मामले में मेरे मा बाप और सास ससुर हड़कर मर गए तिन के कहे तो मैंने अपना सुभाव बदला ही नहीं और न कभी मैंने जाके बाप तक की ऐसी कोई बात अबलों मानी, सो अब इस तनक से कीड़ा की कही आज मैं कैसे मान लेने सक्ती हूं ? यह सुन मैं ख़ूब ही हँसा और तब से आर्ज तक ऐसा कुछ विचित्र मुझे हर्ष और विषाद हो रहा है कि जिस का वर्णन नहीं होसक्ता, कहो ऐसी हटीली जाति का कैसे सुधार हो ? और कैसे वे और उन के पति पुत्रादिक सुख पावें ? सच पूछो तो मौका यह था कि जिस हित की बात को उक्त स्त्री ने अपनी बालावस्था में अज्ञानवश, और तरुणावस्था में जवानी के घमंड, वा नशे से स्वीकार नहीं किया, उसे वह अब अपनी इस लची अवस्था में सर्वथा मान लेती, अर्थात् पुत्र के कहते ही उसे जान लेना चाहिये था कि अरे जब यह भी वैसी ही कहता है तो मेरा स्वभाव, बेशक बड़ा ही पाजी है—उसे अब मैं ज़रूर छोड़ूं और आगे के लिये इस वृद्धावस्था में अपने बहू बेटों की तो भी भली बनूं—सो न समझ कर जो दुष्टा, अपनी उसी अंधी अवस्था में यहां पर मर जाना चाहे उस महा भ्रष्टबुद्धिवाली स्त्री से यदि कोई भला आदमी कुछ कहे तो क्या कहे ? तभी तो कहा है "सवर्था विषमाः स्त्रियः" हमारी समझ में उस के उस पुत्र का कथन उस अंधी के नेत्रोंके लिये बड़ा ही सर्वोत्तम अंजन था, उसे वह अपना अहो भाग्य समझकर यदि स्वीकार कर लेती तो बड़ा ही उसे लाभ होता, परंतु "जाहि बिधाता दारुण दुख देई—ताकी मति पहिले हर लेई" की कथा कैसे असत्य होय, अस्तु परमेश्वर से हाथ जोड़ कर अति विनय के साथ प्रार्थना की जाती है कि हे भगवन् हे करुणावरुणालय हे पतितपावन तूं ऐसी कृपा कर जिस से आगे इस भरत खंड में ऐसी नासमझ और हटीली स्त्रियें अब उत्पन्न ही न हों ॥ * * * * * ॥

॥ अथ धर्म विचारः ॥

॥४७॥ एक एव सुहृद्धर्मो, निधने प्यनुयाति यः। शरीरेण समं नाशं, सर्व मन्यद्धि गच्छति ॥

भा०—अच्छीतरह ज्ञात रहे कि इस जगत् में जो कुछ तुमको अपना कह कह कर प्रिय लगता है वह सर्व तभी तक तुम्हारा है जब तक कि तुम्हारा शरीर यहां मौजूद है अर्थात् शरीर के छूटते ही वे सर्व हरामी तुम को छोड़ बैठते हैं परंतु अकेला एक धर्म ही ऐसा तुम्हारा सच्चा मित्र है (१४) कि जो मरे पर भी तुम्हारा संग नहीं ढीलता—इसलिये कभी

(१४) इस धर्म के १० लक्षण नीचे लिखे अनुसार हैं वे जिन में ठीक २ हों वे ही स्त्री पुरुष सच्चे धर्मात्मा कहाते हैं—ऐसी मनुजी महाराज की आज्ञा है अतः सब को वैसा ही बनना चाहिये तथा बनावटी धर्मात्माओं से सब लोग सदा दूर रहें अर्थात् कभी उन ठगों का वा किसी स्याने भोपे आदि का विश्वास, वा सत्कार, किसी स्त्री को न करना चाहिये ॥

(१) धृतिः=धीरज, अर्थात् किसी भले वा बुरे प्रसंग पर घबड़ा न जावे किंतु सदा चित्त को सावधान रक्खे (२) क्षमा=माफी, अर्थात् दूसरे के अपराधों को देख उन्हें माफ करने की प्रकृति रखना (३) दमः=मन को बस में रखना, अर्थात् कभी उस को चलायमान न होने देना किंतु सदा मन व चित्त, स्थिर रखकर अपने सब कामों को चलाना (४) अस्तेयं=चोरी न करना, अर्थात् जैसे पराए पदार्थ को उठालेने में डर रहता है उसीप्रकार अपने घर में भी सदा डरना, न यह कि पति वा सास से चुराकर बिल्ली की तरह जी चाहे सो खा लेना वा चील की भांति चाहे जो उड़ा लेना वा नाना भांति की चालाकी वा जालसाज़ी से अपना जुदा कुरचा जोड़ना वा कोई भूल वा बात कहने के योग्य होते भी अपने किसी खास अभिप्राय के कारण पति आदि से वह

कोई समझदार स्त्री पुरुष इसको न भूले अर्थात् जब तक जिये तब तक अपना धर्म बराबर करता रहे ॥

॥४८॥ यथा धेनुसहस्त्रेषु, वत्सो गच्छति मातरम्।
तथा यच्च कृतं कर्म, कर्तार मनु गच्छति ॥

भा०—और सब लोग सदा इस बात पर भी पूरा विश्वास रक्खें कि

न कहना (५) शौचं=पवित्रता, अर्थात् सदा मन से, शरीर से, वाणी से, वस्त्रादि पदार्थ और स्थान से व इतर देन लेन आदि सब कामों से ख़ूब साफ़ पाक रहना (६) इंद्रियनिग्रहः=सब इन्द्रियों को वश में रखना, अर्थात् कभी किसी के वाहियात वा पराये भले बुरे कामों की चुगली वा निंदा वा हानि में वा उनके देखने वा सुनने में अपना मन, चित्त, जिव्हा, नेत्र, कान, व हाथ पांवों को न जाने देना (७) धीः=बुद्धि का बल बढ़ाना, अर्थात् सत्कर्म व सन्मार्ग व सत्समागम में सदा चित्त रखना (८) विद्या=सब उत्तम विद्याओं का सीखना, अर्थात् किसी सर्वोत्तम व महा विश्वस्त, वृद्ध स्त्री पुरुष का ख़ूब सत्कार करके उस से सर्वोत्तम पुस्तकों का पढ़ना, जिस से कि धन, ज्ञान, बुद्धि और चतुराईआदि गुण बढ़ें (९) सत्यं=सदा सत्य बोलना, अर्थात् जैसा अपने हृदय में है ठीक वैसाही सदा सब से बाहिर इस रीति से शांत होकर मृदु व मधुर वचनों से कहे सुने, जिस से कि सुनने वाले का चित्त कभी दुखी न हो और उसमें कोई तुम्हारा कपट, वा द्वेष वा ख़ुद ग़रज़ी भी न लगी हो (१०) अक्रोधः=कभी क्रोध न करना, अर्थात् दूसरों के कहने वा सुनने वा अपने मन की सी बात न होने से वा हानि के कारण जो मन बिगड़ कर शरीर में एक दम से आग लग जाती है सो कभी न होने देना, किन्तु उस हालत में भी सब से शांतभाव के साथ बोल चाल कर काम निकारे अर्थात् कभी मुख तक न बिगाड़े, किंतु हास्य मुख से उस प्रकार की भी बात कही जावे—ऐसे ये दश, धर्म के लक्षण हैं इन से सब को संयुक्त रहना चाहिये, तब दोनो लोक बनते हैं जितनी सावित्री आदि पतिव्रता, आज तक भई उन सबों में ये दसो लक्षण सदैव रहे हैं ॥

अपना किया भला बुरा कर्म, मरे पीछे अपने समीप दौड़ कर ऐसा आ जाता है जैसा कि हज़ारों गौओं के झुंड में मिली खड़ी अपनी माता को उस का काला वा सफेद आदि रंग का बछड़ा आ चिपटता है–इस लिये हर एक स्त्री पुरुष को बहुत सावधानी के साथ अपने २ धर्म पर चलना उचित है न यह कि किसी हट वा दुराग्रह में फंसकर व्यर्थ दुःखों को भोगें क्योंकि धर्म के समान अधर्म भी तुम्हारा साथ ढील देनेवाला पदार्थ नहीं है–उन दोनों में फ़रक है तो केवल इतना ही है कि एक सुख देने को साथ जाता है तो दूसरा दुःखों के देने के लिये मुस्तैदी दिखाता है अतएव ऊपर साफ़ कहा गया है कि मरे पीछे एक अकेला तुम्हारा धर्म ही काम आवेगा–इसलिये जौलों जियो तौलों हे स्त्रियो कभी तुम अपने परममित्र, धर्म को मत भूलो–हां बेशक भूल जाने की चीज़ अधर्म ज़रूर है इस वास्ते हम आरंभ से अब तक अनेक उत्तमोत्तम उपदेशों के साथ तुमको अधर्म का रूप दिखाकर अब आँगे तुमको तुम्हारा धर्म अच्छी तरह दिखाते हैं–उसे तुम अच्छी तरह, अर्थात् बहुत सावधानी के साथ सुनो और उसी के अनुकूल चल हो ॥

॥४६॥ कोकिलानां स्वरो रूपं, स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम्। विद्या रूपं कुरूपाणां, क्षमा रूपं तपस्विनां ॥

भा०—देखो कोकिला, कौआ के समान महा बुरी होने पर भी अपने मधुर शब्दरूप गुण से सब को कितनी प्यारी लगती है–उसी प्रकार एक सत्य पतिव्रतरूप गुण से सब स्त्रियें और विद्यारूपी गुण से सब पुरुष और क्षमारूपी गुण से सब साधुजन सब जगत् में प्रशंसा योग्य ठहरते हैं–अन्यथा इन सबों की सर्वत्र अप्रतिष्ठा होती है अर्थात् वे बुरे कहाते हैं–इसकी सब बहू बेटी निश्चय रूप से जानकार होकर सच्चा पतिव्रतरूप जो उनका धर्म उसे वे धारण करें और सुखी हों ॥

॥५०॥ सत्यं माता, पिता ज्ञानं, धर्मो भ्राता, दया सखी। शांतिः कन्या, क्षमा पुत्रः, पति र्देवो ममस्मृतः॥

भा०–हे स्त्रियो गार्गी आदि महा पढ़ी लिखीं स्त्रियों का उपदेश है कि सब स्त्रियों को उचित है कि वे सत्य को माता, ज्ञान को पिता, धर्म को भैया, दया को बहिन या अपनी सखी, शांति को कन्या, क्षमा को पुत्र और पति को परम पूज्य देव, समझ कर संसार के सच्चे सुखों को भोगें–न यह कि अपने सुसरेवालों की सेवा को भूलकर सदा अपने मयकेवालोंकी यादमें व्यर्थ हाय २ करती हुई अपने दीदा खोवें और हमेशा व हर घड़ी अपने सुसरे वालों की बुरी बनें–इस प्रकार की बहू बेटीं कभी सुख नहीं पातीं, इसलिये ऊपर कही सुचाल पर चलना ही सब को सर्वथा योग्य है ॥

॥५१॥ यस्य पुत्रो वशीभूतो, भार्या छंदानुगामिनी। विभवे यस्य संतोष, स्तस्य स्वर्ग इहै वहि ॥

भा०–जिस भाग्यवान् पुरुष का पुत्र आज्ञाकारी और उसकी स्त्री बिलकुल पति की इच्छानुसार ठीक २ अपना सब बर्ताव छायावत् रखती है अर्थात् जिस में वह अपने पति का शौक और प्रसन्नता जैसी २ देखती है वैसा ही वैसा वह अपना सब काम काज अति प्रसन्नता के साथ करने को सदा तयार रहती है और घर में जो कुछ परमात्मा ने दिया है उसी में जिसे संतोष है–उस पुरुष को इसी लोक में स्वर्ग के सब सुख मौजूद हैं समझो–परंतु जिस घर में स्त्री पुत्रादिकों की चाल, वा बुद्धि, तनक भी विपरीत हो जाती है वहां का स्वर्ग उसी क्षण नरक हो जाता है–इसलिये कभी कोई प्यारी बहू बेटी अपने पति की मर्ज़ी के विरुद्ध कोई काम, वा बात, करने की प्रकृति न डाले।

और जहां कहीं किसी स्त्री की चाल, इसके विरुद्ध देखी जाय वहां तुरंत उस स्त्री को अच्छी तरह समझा दिया जाय कि बहनी स्त्री जाति

को संसार के सब सुख अकेले एक उसके पुरुष की राज़ी से ही प्राप्त हो सकते हैं वह बुरे से भी बुरा हो तो भी तुम उसके कामों को बहुत अच्छा कह २ कर उसे ख़ूब राज़ी बनाए रहो क्योंकि हर एक स्त्री अपने मर्द की परछाई बन के रहे—ऐसा स्त्री के लिये धर्म कहा है, उसे छोड़ कर जो कोई कृत्या, उलटी उस महा ज़बर्दस्त अपने पतिदेव की गुरू, बनने चलेगी वह नक्टी कैसे खे न खावेगी—देखो कभी कोई भी ज़बर्दस्त, किसी निबल से आज तक दबा बहनी तुमने सुना है ? कभी नहीं ३ फिर तुम अबला कहा कर किस बल से उसके पीछे पड़कर सुख लूटना चाहतीं हो।

इस तुम्हारी ऐसी, महा निकम्मी चाल से हज़ारों अभागिनें हज़ारों ही तरह से बनी ठनी अपनी घर गिरस्ती ऊजड़ कर बैठीं, बहुतेरी कलहा निकल गई वा निकाली गई और बहुतेरी अपनी अनमोल जान दे बैठीं अथवा अपने पति के हाथ से अपने नेक २ से कच्चा बच्चा सहित क़तल भई अथवा इनकी रात दिन की ठांय २ के मारे, अपने प्यारे बाल बच्चों को छोड़ २ कर उनके पति ख़ुद अपनी जान दे बैठे अथवा तंग होकर ऐसे बहनी वे निकर गये कि फिर लौटकर उन्होंने काहू मरे जिये की खबर तक न लई और न अपनी दई, इस से बहनी हम तुमको बारंबार समझातीं हैं कि देखो तुम दबीं दबाई चलीं जाओ, इसी में सब तुम्हारी शोभा और भलाई है—बहनी हम तुम किनमें हैं—पति के सामने तो बड़े २ राजा महाराजाओंकी महा प्यारी और इकलौती काहू बहू बेटी तक की भी हेंकड़ी चली हम न देखी और न सुनी, जिन चलाई उन देश भर की नाश मारी और जगत् में ख़ुद आप सत्यानासिन कहांई सो जुदी—न मानो तो रानी केकई व पूना की रानी अनंदीबाई व बुंदेलखंड की रानी सखोबाई और गवालियर की रानी बेजाबाई की कहानी पढ़लो—इनमें एक बहुत पुरानी और तीन अभी हाल में अर्थात् सवा सौ बरस के भीतर होगई समझो ॥

॥ ५२ ॥ भर्ताहि परमं नार्या, भूषणं भूषणेषु च
एषा विरहिता तेन, शोभनापि न शोभना

भा०—स्त्रियोंके सब नानाविध बड़ी २ क़ीमत के गहने होते हैं—उन

सबों को शोभा देनेवाला सर्वोत्तम तुम्हारा गहना, हे स्त्रियो अकेला एक पति है-बिना उसके तुम, रूपवती होकर भी महा कुरूपा हो ॥ १५ ॥ इसलिये तुम सब, अपने २ पति को हर हालत में अच्छा समझ उसकी दावों और सब बुराइयोंको आनंद के साथ जन्मभर झेलतीं रहो तब तुमसे परमात्मा प्रसन्न होगा-कदाचित् तुमको इस सर्वोत्तम चाल से मन चीते सुखभोग, दैववश वा पति अच्छा न मिलने के कारण, इस लोक में न

'(१५) पतिव्रता स्त्रियों के समीप तो यह ५२ नंबरी श्लोक बड़ाही अनमोल है-परंतु जिन सुहागिन दुष्टा स्त्रियों को पति क्या वस्तु है यह नहीं मालूम, वे इस श्लोक की बिलकुल कदर नहीं करेंगी-ऐसी स्त्रियों से कहाजाता है कि वे अपनी ऐसी, महादुष्टप्रकृति की दस पांच अमीर से लेकर गरीब तक की विधवा स्त्रियों के हृदय में घुसकर उन से तनक पूछें कि तुम्हारा पति, जबतक मौजूद था तबतक तो तुमने कभी एक घड़ी उसे कल नहीं लेने दी, बरंच आठो पहर उसकी अनेक प्रकार से निंदा कर २ उसे अति बुरा भी बतातीं रहीं, सो अब तुम उसी महा बुरे पति के लिये इतनी महा दुखी व अनमन सदा क्यौं देखीं जातीं हो, क्या वह तुम्हारा सैंकड़ों वा हज़ारों वा लाखों रुपया का गहना. कपड़ा. वा. धन. वा धरती आदि भी, अपने संग लेगया ? अगर नहीं लेगया तो तुम, ख़ुश होने की जगह इस प्रकार उस बुरे वा महा बुरे पति के लिये अब आठो पहर व्यर्थ ऐसी क्यौं रोतीं हो ?

बस इस प्रश्न का उत्तर उन सब विधवाओं के मुख सुनते ही सब बुरी से भी बुरी स्त्रियें, उक्त श्लोक अर्थात् पति के उत्तमता की प्रशंसा करने लग जावेंगी, इतना ही नहीं किंतु यदि उनमें कुछ भी मनुष्यता होगी तो वे उस घड़ी से अवश्य, महा पतिव्रता स्त्री के समान "पतिर्देवो-पतिर्गुरुः," इस महामंत्र का आठो पहर जाप भी करेंगी, अर्थात् उस दिन से वे सदैव अपने पतिदेव का अति सन्मान करेंगी और जैसा वह कहेगा वैसा ही सदा अपना सब कृत्य करना वे सब उचित समझेंगी—ऐसी हमको महाबलवती आशा है ॥

भी मिलें तोभी तुम्हारी इस जगत् में सदा तारीफ़ होगी और दूसरे अनेक जन्मों में तुमको सातो सुख मिलेंगे सो जुदे—ऐसा निश्चय सदा सब रक्खो ॥

॥५३॥ निमन्त्रणोत्सवा विप्रा, गावो नवतृणोत्सवाः।
पत्युत्साहयुता भार्या, अहं कृष्ण रणोत्सवः ॥

भा०—अर्जुन कहते हैं कि जैसे नित्य नया निमंत्रण पाने से ब्राह्मण, और नई घासों के पाने से गाएं, और अपने सब कामों से अपने पति को सदा प्रमुदित देख सब सज्जन स्त्रियें, अत्यंत हर्षित होती हैं—उसी प्रकार हे श्रीकृष्ण, मुझे युद्ध के प्रसंग सन्मुख उपस्थित हुए देख महा आनंद, होता है—अब सब सज्जनों की परम प्यारी बहू बेटियों को विचार करना चाहिये कि पति की प्रसन्नता रखने की वेदों में और शास्त्रों में कैसी बारंवार की ताक़ीद के साथ आज्ञा, स्त्रियों को लिखी है और ठीक वैसाही करने की ताक़ीद कैसी सब स्त्रियों पर बड़े २ परमधर्मज्ञ ऋषि मुनि और विद्वज्जन तथा पुराने राजा महाराजा आदि सत्पुरुष, अपने २ ग्रंथों के द्वारा सर्वत्र तुमको कर रहे हैं * उसको भूलकर जो कोई स्त्री, किसी के बहकाने से वा क्रोध से वा द्वेष से वा घमंड से अथवा अँगले जन्म की खोटी करतूतों से प्राप्त हुआ जो दुष्ट स्वभाव, उससे विपरीत चाल चलेगी, वह राजा तक की रानी और बेटी भी क्यों न हो ज़रूर नरक को जावेगी अर्थात् किसी तरह इसमें फ़रक नहीं पड़ेगा— ऐसा वेद शास्त्रों के सिवाय रामायण व भागवतादि सब छोटी बड़ी पुस्तकों में भी ठौर २ लिखा है—सो सब आँगे देख मिलेगा उसे तुम चित्त लगाकर सुनो समझो और सुशीला बनो-इसी में सर्व सुख और प्रशंसा है ॥

---

* इनके नाम आँगे लिखी टीपों में देख मिलेंगे ॥

॥५४॥ वित्तेन रक्ष्यते धर्मो, विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृदुना रक्ष्यते भूपः, सत्स्त्रिया रक्ष्यते गृहम् ॥

भा०—सत्य समझो कि जैसे धर्मादि कामनात्रय, धन से और योगाभ्यास से आत्मविद्या, तथा खुशामद व अति नम्रता के बर्ताव से राजगणों को मर्ज़ी, सुरक्षित रहती है-उसी प्रकार सुचालवाली स्त्री से घर की रक्षा अच्छीतरह होसक्ती है-अन्यथा सुंदर बने ठने घरों का बहुत जल्द सत्यानाश,होजाताहै इस कारण जिन चतुर स्त्रियों को अपनी प्रशंसा व इज्ज़त, इस जगत् में अच्छी लगती हो, वे अपना धन, विद्या, और सुशीलादि सब उत्तम गुणों को अच्छी तरह बढ़ा कर अपने २ घरों की सब को शोभा,व प्रतिष्ठा,दिखावें और इस संसार का सच्चा सुख लूटें तथा यहां पर स्मरण रक्खें कि "दरिद्रः किंवराटकः" जो मनुष्य कौड़ी वा किसी अन्न के दाने को तुच्छ समझता है वह साक्षात् दरिद्रका रूप है, ऐसा शास्त्रीय सिद्धान्त है—उसे अति सत्य समझो बल्कि प्रत्यक्ष देख लो कि सैकड़ों भिखमंगे, सहस्राधीश, और बड़े २ दौलतमंद,भिखारी, हो गये हैं कहो भिखारी को कितने दाने तुम डालतीं हो ? *

---

* इस असल तत्व को ध्यान में न लाकर जो लुच्ची स्त्रियें बेजां बिखरे हुए झोंक भर दानों पर नाराज़ हुए पति को ज़ालिम वा बेअक़्ल वा सिड़ी ठहराती हैं वे सुने नीचे लिखे वाक्यों को ॥

क्षणशः कणशश्चैव विद्या मर्थं च चिंतयेत् ॥ धन धान्य क्षयकरीं स्त्रियं सद्यः परित्यजेदिति ॥ नारदः ॥ अर्थात् स्त्रीमात्र को उचित है कि वह हर घड़ी विद्यादिगुणों को बढ़ावे तथा अपने हाथ पड़े धन धान्यादि की रक्षा वह अपने बालक व चोर चूहा गिलहरी और सब प्रकार के पशु पक्षियों से बख़ूबी हर घड़ी करती व कराती रहे—अर्थात् उस के एक २ दाने को, और घर की एक २ कौड़ी को बहुत बेश क़ीमती पदार्थ के स-

॥ ५५ ॥ परुषाण्यपि या प्रोक्ता, दृष्टा या क्रोधचक्षुषा।
सुप्रसन्नमुखी भर्तुः, सा भार्या धर्मभागिनी ॥

भावार्थ—अच्छी और उत्तमोत्तम स्त्री के लक्षण ये हैं कि उस का पति, अपराध वा बिना ही अपराध, सत्य वा असत्य ही रीति से प्रति दिन वा प्रति घड़ी, खास उस स्त्री को वा उस के माता पिता आदि संबंधी मनुष्यों को, हज़ारों बरन लाखों अति कठोर और अति कडुएं शब्द (गालियां) सुनावे, वा और अनेक प्रकार के मारपीट आदि के त्रास देवे, अथवा आठो याम नाराज़ रहकर उसे लाल अंगारसम नेत्रों से सदा देखे तथापि वह स्त्री, कभी अपने उस पति को उलटा सीधा उत्तर, न देवे और न कभी अपना मन बिगाड़े, अर्थात् उस दशा में भी वह सब तरह सुप्रसन्नमुखी रहती देखी जावे, तब वह स्त्री अपने उस पुरुष की धर्मपत्नी, वा भार्या कहाती और थोड़े ही दिनों के पीछे वह समस्त सुखों को भोग सक्ती है—इतना ही नहीं किंतु इसप्रकारकी स्त्री सच्ची पतिव्रता कहाकर आँगे होनहार अनेक जन्मों में भी सदा सब प्रकार के अनुपम सुखों को प्राप्त होती है और इसी प्रकार की स्त्रियें अति स्वरूपवती होकर दूसरे जन्म में, बड़े २ राजा महाराजाओं तक की

मान जानती रहे—तथा समझे, कि जैसा फुई २ ताल भरता वा उजड़ता है उसी प्रकार उक्त चाल से घर बनता और वैसी नज़रें न रखने से वह साफ़ बरबाद होजाता है, अतएव नारदजी कहते हैं कि हे पुरुषो, तुम उस कुलच्छिनी स्त्री को तुरंत अपने घर से निकाल बाहिर करो, जिस मुंडों की कि चाल, मेरे इस उपदेश के विरुद्ध हो—कहो ऐसी दुष्टाका भी पालन पोषण, यदि कोई पति उत्तम स्त्री के सदृश करे, तो उस पति का कितना भारी उपकार इस प्रकार की स्त्री को समझना चाहिये—सो भी गुण, जिस में न हो तो कैसे वह घोरनरकों से बचे ?

अति प्यारी पटरानी हुआ करती हैं—इस लिये सब स्त्रियें आँगे पीछे लिखे सब सद्गुणों से संयुक्त होकर अपने २ पति की सच्ची भार्या बनें और अपने जन्म जन्मांतरों को सुधारें ॥

५६॥ सा भार्या या गृहे दक्षा, सा भार्या या पतिव्रता। सा भार्या या पतिप्राणा, सा भार्या सत्यवादिनी॥

भा०—सुशिक्षित स्त्री वे,कहाती हैं जिनमें अधिक नहीं तो इस श्लोक में लिखे मुख्य चार गुण तो अवश्य ही हों—प्रथम वे गृहस्थाश्रम संबंधी सब अपने काम और व्यवहारों के करने व चलाने में परम चतुर हों–द्वितीय आँगे पीछे लिखे लक्षणों का पतिव्रत धर्म, उन में अवश्य पाया जाता हो–तृतीय यह कि उन्हें अपना पति, अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय हो और चतुर्थ यह कि वो सदैव हँसमुखी रहकर सत्य व प्रियभाषण करनेवाली हों, तभी वे अपने पति की सच्ची भार्या कहासक्ती हैं नहीं तो कदापि नहीं ॥

॥ ५७ ॥ न सा भार्येति वक्तव्या, यस्या भर्ता, न तुष्यति। तुष्टे भर्तरि नारीणां, संतुष्टाः सर्व देवताः॥

भा०—जिस स्त्री के चाल चलन और समस्त काम काज, तथा बोल चाल और उठा बैठी से सदैव उसका पति, संतुष्ट नहीं रहता उस नरक गामिनी स्त्री को कभी उस पुरुष की भार्या (स्त्री) नहीं कहना चाहिये–किंतु वह राक्षसी, डाँयिन, वा सांपिन आदि बुरे नाम धारण करने की पात्र है—इस कारण, हे प्यारी बहू बेटियो, तुम परम प्रशंस्य जो भार्या नामक पदवी, उसे धारण करने की सब चालें ज़रूर चलो, और अंतःकरण से पूर्ण निश्चय रक्खो कि केवल एक अपने पति के संतुष्ट व सुप्रसन्न रहने से ही सदैव सब देवतागण, तुम से अतिसंतुष्ट रह सकते हैं,

अन्यथा उन सब का तुम पर महाक्रोध होगा और उन के इस क्रोध से तुम्हारी महा दुर्गति होगी इस लिये अपना हित चाहने वाली कोई स्त्री कभी इस श्लोक को न भुलादे ॥

॥ ५८ ॥ नगरस्थो वनस्थो वा, पापो वा यदि वा शुचिः
यासां स्त्रीणां प्रियोभर्ता, तासां लोका महोदयाः ॥

भा०—जिन स्त्रियों को सच मुच हर हालत में अपना पति अंतःकरण से अति प्रिय है अर्थात् वह देश में है तो परदेश है तो—महापापी वा महादुराचारी है तो अथवा महा पवित्र और महा धर्मात्मा है तो, अर्थात् इत्यादि सब दशाओं में जिन का चित्त, सदैव पति से संतुष्ट वा प्रमुदित रहता है वे स्त्रियें. समस्त जन्म जन्मांतरों में अनन्त, और अनुपम, ऐश्वर्यों को भोगतीं हैं और इन पतिव्रता और पतिप्राणा स्त्रियों की परिणाम में समस्त देवी देवता. पूजा करते हैं बल्कि वे खुद सच्ची देवी कहाने लगजाती हैं -फिर ऐसीं की पूजा अर्थात् सत्कार, कौन न करेगा ?

॥ ५९ ॥ दुःशीलः कामवृत्तो वा, धनैर्वा परिवर्जितः ।
स्त्रीणा मार्यस्वभावानां, परमं दैवतं पतिः ॥

॥ ६० ॥ भर्तातु खलु नारीणां, गुणवा न्निर्गुणोपि वा ।
धर्मं विमृशमाणानां, प्रत्यक्षं देवि दैवतम् ॥

॥ ६१ ॥ नैषाहि सा स्त्री भवति, श्लाघनीयेन धीमता ।
उभयो र्लोकयो र्लोके, पत्या या ऽसंप्रसाद्यते ॥

भा०—एक बार राजा दशरथ ने अपनी पटरानी श्री कौशल्याजी से कहा कि हे प्यारी, स्त्री का पति, चाहे कैसाही दुराचारी वा का-

मलंपट वा धनहीन क्यों न हो, परंतु उस दशा में भी वह, स्त्रियों को परम दैवत, अर्थात् परमपूज्य और परम मान्यवर ही समझकर मानना व पूजना चाहिये ॥

फिर कहा कि हे देवी, जगत् में धर्म का खोज लगानेवाली तमाम उत्तमोत्तम स्त्रीजाति को, निः संदेह और निश्चय रख कर जानना और मानना चाहिये कि उन का पति, चाहे गुणी हो चाहे मूर्ख वा महामूर्ख, परन्तु स्त्री को वही अकेला इस धरती पर परमपूज्य दैवत है ॥

फिर कहा कि हे महारानी, ऐसा जो सर्वोत्तम पदार्थ पति, उसे जो स्त्रियें, अपना परम पूज्य वा महा दैवत, नहीं समझतीं और इसीलिये जी में आया वैसा उस से चढ़ उतर कर महा दुष्टा और कर्कशा के समान, क्रोध में आकर जब तब खोंकियाय के बोलने लगजाती हैं और फिर कभी आगे पीछे इस में वे अपना दोष वा अपराध भी नहीं गिनतीं, वे मूर्खा, अपने उन कुदोषों से उस, अपमानित पति के चित्त से गिर जाती हैं—बस उस की इतनीही नाराज़ी से उस स्त्री के तुरंत दोनों लोक, बिगड़ जाते हैं अर्थात् वह दुनिया में महा चांडालिन के समान, अनेक दुःखों और अपमानों को भोगती हुई मरे पर अवश्य नरकगामिनी होती है ॥ *

* उक्ता प्रत्युत्तरं दद्या, द्या नारी क्रोधतत्परा ॥ सा शुनी जायते ग्रामे श्रृगाली निर्जने वने ॥ ग्रामे सा शूकरी वा स्यात् गर्दभी वा श्वविड्भुजेति ॥ वसिष्ठः ॥ अर्थात् जो स्त्री, पति की बातों का उत्तर वा प्रत्युत्तर तुरंत क्रुद्ध हो २ कर जी में आया वैसा अट्ट सट्ट देती और सदैव अप्रिय चालें चल कर कटुभाषिणी होती है वह अवश्य, व निःसंदेह अपनी बस्ती में कुतिया वा गधैया अथवा सुँअरिया अथवा महाबिकट जंगल में स्यारिन वा श्वविड्भुजा की योनि अनंतकाल के लिये वारंवार पाती है ॥ ऐसा स्पष्ट वासिष्ठ जी महाराज का वचन है—यहां ५ लंबरवाली योनि का अर्थ और नाम किसी पंडित से पूछ लिया जाय ॥

इतना सुनते ही महारानी कौशल्या, गिड़गिड़ा कर राजा के चरणों में गिर पड़ीं—ऐसी कथा, रामायण में है, सो कुछ तुम को आँगे देख मिलेगी, तब जानोगी कि इस पुस्तक में सच मुच हमारा सत्य ही सत्य हित, लिखा है ॥

॥ ६२ ॥ यद्य प्येष भवेद्भर्ता, अनार्यो वृत्तिवर्जितः
अद्वैध मत्र कर्तव्यं, तथा प्येष मया भवेत् ॥

॥ ६३ ॥ पतिशुश्रूषणा न्नार्यां, स्तपो नान्य द्विधीयते।
सावित्री पतिशुश्रूषां, कृत्वा स्वर्गे महीयते ॥

६४ ॥ न पिता ना त्मजो वात्मा, न माता न सखीजनः
इह प्रेत्यच नारीणां, पति रेको गुरुः सदा ॥ १६ ॥

भा०—श्री सीताजी के वचन हैं कि हे अनुसूयाजी महारानी, आर्य अर्थात् सद्गुण सद्विद्या और सत्कृति से समलंकृत महाकुलीन पति की बात तो ठीकही है परंतु यदि दैववश स्त्रीका पति, अनार्य अर्थात् महागमार, महानीच. महादरिद्र महापापी. महाचांडाल. वा जन्मरोगी तक हो, तो भी वह स्त्री, कभी किसी प्रकार का विरोध वा द्वेष वा घृणा वा छल

---

१६ देखो प्रथम जैसा श्लोक नंबर १५ में लिखा आशय, तुम देखचुकीहो उसीप्रकार यहां इस ६४ नंबर में भी सीताजी स्पष्ट कहती हैं कि सिवाय एक अकेले पति के और कोई स्त्रीजाति का गुरू नहीं हो सक्ता—इसी प्रकार के और आँगे अनेक वचन लिखे हैं—परन्तु न मालूम कि इन दिनों हमारी स्त्रियें, दूसरे पुरुष को अपना गुरू कैसे बनाती हैं ? यह केवल बुराई ही नहीं, किंतु अपने-तईं घोर नरक में जा डालने की पूरी सामग्री समझो तथा घिन करो और हटो इस महा दुष्ट कृत्य से ॥

वा कपट, उससे न करे—अर्थात् आर्यपुरुष की भांति, अनार्यपति भी स्त्रीजाति को परमपूज्य, परमसेव्य और परमवंद्य, है ।

फिर अपनी ऊपर कही बात को दृढ़ करती हुई श्री सीताजी कहती हैं कि कारण इसका यही है कि स्त्रीजाति को पति की सेवा, अर्थात् अपने जन्मभर में पति को सदैव अपने सब कामों से सुप्रसन्न रखने के सिवाय और कोई जप वा तप, परमात्मा ने नहीं कहा है-देखो प्राचीन और आधुनिक लोगों के रचे बड़े २ महाभारतादि ग्रंथों में लिखी श्री सावित्री जी महारानी की कथा को कि वे केवल इसी एक पतिसेवा के कारण अबतक स्वर्गवास कररहीं हैं और तभी से सर्वत्र अपने इस देश में वरसातें, वरमावस और वरपूनो मानी जारहीं हैं-परंतु महादुःख की वार्ता अब यह है कि उस दिन घर में बैठे अपने वरदेव की कुछ अधिक उत्साह के साथ पूजा करना ज़रूर था और है-उसे छोड़कर आज कल की हमारी महामूर्खा स्त्रियें, जंगल का महाजड़ जो बड़ का पेड़, उसे जाकर अथवा उसकी डाली घर में लाकर पूजतीं हैं-इसका मूल कारण सब स्त्रियों का अज्ञान और मूर्खता है अर्थात् एक अक्षर व का ठीक २ उच्चारण न होने से सब लोग उसे ब बोलने लगे, अतः वर जो पति, उसके ठौर बर नामक पेड़, पुज उठा क्योंकि वर शब्द के संस्कृतार्थ से जैसा पति का ग्रहण होता है उसी प्रकार बर शब्द से अर्थबोध, भाषा में उक्त पेड़ का हो जाता है ।

जब से यह जड़ पदार्थ की पूजा चली, तभी से इस देश के स्त्रियों की मति महाजड़ होगई-फिर क्यों भला उनसे वैसी ही जड़ करतूतें न बनें ? अर्थात् चेतन्नमूर्तियों को छोड़ जिनकी पूज्यदेवता, जब जड़ पेड़ वा पाषाणादि की हो, तो उसके पूजक क्यों महाजड़ न हो जांय और इसके प्रतिफल में क्यों सोने के फूलों से फूलनेवाली भारतभूमि के सब घरों में रोग शोक न फैलें, खैर जब इस सावित्री की कुछ विशेष कथा तुमको आगे देख मिलेगी तब तुम खुद अपने मुह कहोगी कि धिःकार है हमको जिन्हों ने सदा अपनी सास और पति की व्यर्थ आत्मा कल्पांई ॥

अस्तु फिर परमदयावती श्री सीताजी महारानी कहती हैं कि कभी कोई बहू बेटी, पति की पूजा और सेवा को न भूले क्योंकि दोनों लोकों में स्त्रीजाति का संतारक व परमपूज्य देव व परमगुरु केवल वही एक उनका पुरुष है—उसके समान उनकी भलाई करनेवाला इस जगत् में माता वा पिता वा पुत्र वा भाई वा बहन वा सखीजन आदि कोई भी नहीं है—इसलिये उन सब को भूलकर सब स्त्रियों को केवल पति सेवा में ही मग्न रहना सर्वथा उचित है—इसी से उनके सब अँगले जन्मों का भी सुधार होगा—ऐसा सब स्त्रियें निश्चय जानें—सारांश सीताजी के कथन का भी यही है कि जिन स्त्रियों को दारुण नरकयातना से बचना हो, वे बने उस रीति अपने पति को सदा सुप्रसन्न रखने की ही सब चेष्टाएं करें ॥

॥६५॥ संतुष्टो भार्यया भर्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं, कल्याणं तत्र वैध्रुवं ॥

॥६६॥ यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः, प्रजनं न प्रवर्तते ॥

॥ ६७ ॥ पितृभि र्भ्रातृभि श्चैताः, पतिभि र्देवरै स्तथा । पूज्या भूषयितव्या श्च, बहुकल्याण मीप्सुभिः ॥

भा०—ठीक वेदों के अनुकूल सब जगत् को धर्म जतानेवाले श्री मनु-भगवान, पुकार २ कर कह रहे हैं कि जिस कुल में दोनों स्त्री पुरुष, परस्पर चकई चकवा के समान निरंतर अतिप्रेम के साथ बर्तते हैं—उस कुल की ज़रूर सब प्रकार से बढ़ती ही बढ़ती होती है ॥

और जहां इसके विपरीत कृत्य होता है अर्थात् जिस घराने की स्त्री, स्वयं सदा अप्रसन्न रहकर हर घड़ी वा हर समय, अपने पति को परम

आनंदित रखने की चालें नहीं चलती, वहां किसी प्रकार की बढ़ती नहीं होती अर्थात् उन दोनों में खटपट रहने से परमेश्वर की अप्रसन्नता होती है और उसकी अप्रसन्नता से सैंकड़ो तरह से सैंकड़ों ही प्रकार की हानें उनके घरों में होने लग जातीं हैं ॥ १७ ॥

फिर कहते हैं कि मंगल कार्यों के समय कल्याण की इच्छा रखने वाले उन के बाप, भाई, सास, ससुर, पति, वा देवर वा जेठ आदि उस कार्य के अधिकारी पुरुष ज़रूर इन बहू बेटियों को बुला कर इन का अच्छी तरह वस्त्रालंकारादि से सन्मान किया करें, अन्यथा ये उदास होजावेंगी और उस का असर बहुत ही बुरा उन लोगों को होगा जिन से कि अपमानित ये बहू बेटियां होंगी ॥

॥ १७ ॥ जैसे रोगों का और चोरियों का होना—आग वा ठग वा डांकुओं का लगना—मिथ्या वा सत्य दोषों में जेल और जुर्मानों का होना–पशु वा सेवक वा मित्रादि का न रहना–उत्तम रीति से धरी वा गड़ी दौलत का बेमालूम उठ जाना वा गिरजाना वा दिये धन का न मिलना–पति वा पत्नी वा पुत्रादिकों की बुद्धि बिगड़ कर उन का भ्रष्ट, वा पागल, वा बैरी, वा बेदीन, वा कुचाली, हो जाना वा भागजाना वा मरजाना वा परस्पर में विरोधों का बढ़ना–लोभ वा क्रोध वा द्वेष के बस परस्परों में कलह और अदालतों का होना–वा आपस में प्राणों का देन लेन, वा पदार्थों का उड़ा लेना, वा छुपाना, वा जाल में फंसना, वा फांसना, वा फंसाना, वा हवा पानी और वज्रपातादि उपद्रवों में आ जाना–अथवा अकस्मात् किसी प्रकार की भारी चोटों का खा जाना–अथवा लगे रोज़गार से निरपराध छुट जाना–वा कलंकित होना, अथवा अपने सच्चे हितू मनुष्यों के साथ विश्वासघातादि कामों से अपनी हानि करा बैठना आदि विपत्तियां, ईश्वर और अतिथि के कोप से मनुष्यों पर आपड़ती हैं अतः सदा स्त्रियों को प्रथम से ही सावधान रहना परमावश्य है ॥

सारांश इन सब अँगले पिछले उपदेशों का स्पष्ट यही है कि जिस प्रकार एक पहिया से कोई गाड़ी नहीं चल सक्ती उसी प्रकार यह तुम्हारी गिरस्ती का गाड़ा, अकेली स्त्री वा अकेले पुरुषरूपी पहिये से कभी नहीं चलेगा—जब दोनों एक तार सुमति से सन्मार्गपर चलेंगे तब उस का बोझ उठाना वा चलना बिलकुल कठिन न होगा—परन्तु इस में तत्व की बात यह है कि परमेश्वर ने पुरुष की अपेक्षा स्त्री को तनक अज्ञ और निर्बल बनाया है इस लिये स्त्री को, बिलकुल पुरुष की इच्छानुसार चलने की आज्ञा सर्वत्र दे रक्खी है और उसी का नाम स्त्री धर्म, वा पतिव्रत कहा है उस धर्म पर जो स्त्रियें चुप चाप चल होती हैं उन पर सदैव उन के पुरुष, अवश्य प्रसन्न रहते हैं और पति की प्रसन्नता सोई परमेश्वर की प्रसन्नता समझनी, चाहिये ऐसी वेदशास्त्रोंकी साफ २ आज्ञा है सो समस्त धर्मशास्त्रप्रवर्तक ऋषि मुनि डंका, बजा २ कर सब स्त्रियों को सर्वत्र सुना रहे हैं—जिन्हों ने मानी उन्हों ने सुरधाम, और जिन्हों ने नहीं मानी उन्हों ने घोर नरक जरूर ही पाया और पावेंगी—इस में कभी कोई स्त्री तनक भी संदेह न करे ॥

॥६८॥ पत्यु राज्ञां विना नारी, उपोष्य व्रतचारिणी। आयु राहरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

भा०—कोई २ कलहा स्त्रियें, परमपूज्य व सर्वदेवतारूप जो उन का पति, उस की खुशामद व प्रसन्नता आदि की परवाह न करके उसकी आज्ञा के बिना ही उपास वा व्रत वा जप वा तप आदि काम अपना कुछ गुप्त हित सोचकर करने लगजातीं हैं—उनकी इस विपरीत चाल से वे बहुत जल्द इस लोक में विधवा होतीं और मरे पीछे सीधी नरक को जातीं हैं—शोक ! शोक !! शोक !!!

॥६९॥ न दानैः शुध्यते नारी, उपवासशतै रपि। न तीर्थसेवया तद्व, द्भर्तुः पादोदकै र्यथा ॥

भा०—जैसी स्त्रीजाति की शुद्धि, अपने पति की सेवा, खुशामद,

प्रसन्नता और उसके चरणोदक के धारण करने से होती कही है–वैसी कभी सैंकड़ों दान, हज़ारों उपवास और लाखों प्रकार के तीर्थ, तथा जप वा तप वा वृतादिकों के आचरणों से नहीं होती ॥ *

॥७०॥ तीर्थार्थिनी सदा नारी पतिपादोदकं पिबेत्।
तेन कर्मविपाकेन सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥

भा०—जब २ स्त्री की इच्छा तीर्थ में आकर स्नानादिक कार्य करने की हो—तब २ वह, अपने पति के चरणामृत को पान करके उसे अपने सब अंगों में लगावे–बस इस क्रिया से ही उसे सब तीर्थों का फल प्राप्त होजाता है–कहो इन सत्य उपदेशों से उन कुलटा स्त्रियों का कैसे संतोष होसक्ता है जिन्होंने कि तीर्थ और मंदिर और पुराणश्रवणादि कार्य्यों से अपने इतर उपभोगों की मनमानी शांति पा रक्खी है–जो स्त्री पुरुष, इस प्रकार धर्म की ओट में अधर्म को बढ़ा रहे हैं–वे अपना यही एक जन्म नष्ट नहीं करते किन्तु उनके लाखों ही जन्मों का सत्यानाश होता है ॥

॥७१॥ ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः, स पिता यस्तु पोषकः।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः, साभार्या यत्र निर्वृतिः ॥

भा०—जो पिता के पूरे भक्त हैं वे ही पुत्र, और जो सब तरह उनके पालन पोषण की खटका रक्खे वही पिता, तथा ठीक मित्र वह है जि-

---

* नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो, न वृतं ना प्युपोषणं ॥ पतिं संसेवते या-तु, तेन स्वर्गे महीयतेति ॥ हारीतः ॥ अर्थात् स्त्रियों को कोई यज्ञ, याग, वा जप तप, वा तीर्थस्नान, दान, वा व्रत वा उपोषणादि कोई कर्म, पति की जीवित दशा में पृथक् न करना चाहिये किंतु वह केवल सतोवृत्ति से पति की सेवा करे–इतने ही से उस को समस्त स्वर्गीय सुख अवश्य प्राप्त होते हैं ॥ ऐसा हारीत ऋषि का वचन है ॥

सकी सब कृति,सदैव प्रीति और विश्वास के ही योग्य पाई जाय, तथा भार्या नाम उसी स्त्री का है, जिसे देखते ही पति को सर्वथा और सार्वकाल समस्त सुख और आनंद ही आनंद प्राप्त होता रहे—परंतु हज़ारों में कोई एकाध ही घर ऐसी सुलक्षणा स्त्री से इन दिनों अलंकृत होगा, बाक़ी सब घरों में "कलौ कृत्या गृहे गृहे,, की कहावत देखी जाती है— कहो सुख कैसे हो और किसतरह से वह उनके घरों में प्रवेश करे? हाल की कृत्या और कर्कशा स्त्रियों को तो सिवाय कलह के और कुछ करना आता ही नहीं "हास्येन यद्वदति तत् कलहेन वाच्यं,, अर्थात् जो काम चतुर स्त्री पुरुष, हँसी खुशी से निकाल लिया करते हैं—उसे दुष्टा स्त्रियें, लड़ाई से निकाला चाहती हैं ॥

॥ ७२ ॥ प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रो ।
यद्भर्तुरेव हित मिच्छति तत्कलत्रम् ॥

भा०—जो, अपने संपूर्ण पवित्राचरणों से निरंतर अपने पिता जी को संतुष्ट करता है वही पुत्र कहाता है और उसी प्रकार जो, आठ प्रहर चौसठ घड़ी अर्थात् हर घड़ी और हर समय अपने पतिदेव की प्रसन्नता और हित के काम करती है—वही कलत्र, अर्थात् भार्या कहाती है और जो इसके विपरीत चलते हैं वे पुत्र, पुत्र ही नहीं और न कोई स्त्री, स्त्री कहा सक्ती है—सारांश जिसका जो धर्म कहा है उसी पर उसके चलने से दोनों लोकों का सुख, स्त्री व पुत्र और उनके पिता वा पति आदि सब मनुष्यों को प्राप्त होसक्ता है—अन्यथा उनके गृहस्थाश्रम का अत्यंत थुक्का फज़ीता है। ऐसा श्रीभर्तृहरिजी महाराज के कथन का स्पष्ट अभिप्राय है—देखो बाज़ार से मगाई हुई हींग. मिर्च. आदि दमड़ी तक की चीज़ पर तुम,कैसी उसकी लौटा पलटी के लिये नौकरों से हाय २ करते हो, क्योंकि उस नाम मात्र की चीज़ में उसका अपेक्षित स्वाद अर्थात् गुण, न होने के कारण, वैसी झुंझलाट तुमको आती है—इसी न्याय के अनुसार

ऊपर के श्लोक में लिखे गुणों के न होने के कारण, सब स्त्री पुत्रादि पदार्थ भी सर्वथा परित्याज्य ठहरते हैं, अतः खूब डरो और गुण संयुक्त होने के प्रयत्न करो तब तुम से पति आदि को सुख होगा ॥

॥७३॥ स्त्रीसु दुष्टासु वार्ष्णेय, जायते वर्णसंकरः ।
संकरो नरकायैव, कुलघ्नानां कुलस्य च ॥

भा०—भगवद्गीता में श्रीकृष्ण जी महाराज ने भी इसी प्रकार कहा है कि हे अर्जुन, घर में गुणवती स्त्रियों के समागम से जैसी सर्वोत्तम संतान और नित्य नए अनेक अनुपम सुखों की प्राप्ती होती है—उसीप्रकार दुष्टा स्त्रियों के होने से संसार में वर्णसंकर प्रजा उत्पन्न होती है और उस दुष्ट संतान के संयोग से सब के सब उत्तमोत्तम कुल, नष्ट भ्रष्ट होकर परिणाम में वे सब नरक को जाते हैं—सारांश सब के कथन का देखो तो बराबर भाई यही एक चला आता है कि संसार की संपूर्ण भलाई वा बुराई का मूल कारण, केवल एक स्त्री जाति ही है—उस के अच्छे होने से दोनों लोक, जैसे सुधरते—उसी प्रकार वह बुरी होने से अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होकर सर्वस्व नाश भी होने लग जाता है—इस लिये अपने देश की संपूर्ण बहू बेटियों का सुधार होना इन दिनों बहुत ही आवश्य है ॥

॥ अथ भीष्मोपदेशः ॥

॥७४॥ अस्ति पुत्रो वशे यस्य, भार्या भृत्यस्तथैव च।
अभावे सति संतोषो, भूमिस्थोपि महीयते ॥ १ ॥
॥ ७५ ॥ मांता यस्य गृहे नास्ति, भार्या चा प्रियवा-
दिनी। अरण्ये तेन गंतव्यं, नारण्यसदृशं गृहं ॥ २ ॥

॥७६॥ दुर्लभं प्राकृतं वाक्यं, दुर्लभः क्षेमकृत्सुतः ॥
दुर्लभा सदृशी भार्या, दुर्लभः स्वजनः प्रियः ॥ ३ ॥
भार्या. भर्तुः प्रिया यस्य, तस्य नित्योत्सवं गृहं ॥
॥ ७७ ॥ कुदेश मासाद्य कुतो र्थसंचयः—कुपुत्र
मासाद्य कुतो जलांजलिः। कुगेहिनीं प्राप्य गृहे
कुतः सुखं—कुशिष्य मध्यापयतः कुतो यशः ॥ ४ ॥

भा०—महाभारत में श्रीमान् भीष्मपितामह, राजा युधिष्ठिर से कहते हैं कि जिस गृहस्थ का पुत्र, स्त्री, और नौकर, उसके मर्ज़ी के अनुकूल चलने वाले हों और उसको सब तरह का संतोष भी हो तो उसे इस पृथिवी पर ही स्वर्ग है ॥ १ ॥ और जिसकी माता रही न हो और स्त्री दुष्टा

अर्थात् सदा अप्रिय बोलने वाली घर में बैठी हो तो वह पुरुष, घर छोड़ कर अरण्य को चला जाय—अन्यथा उसे सुख न होगा ॥ २ ॥ हे युधिष्ठिर—इस संसार में छोटे बच्चों की भोली २ बातें, मन मिलाऊ पुत्र, स्त्री और भाई बिरादरों का मिलना बहुत कठिन बल्कि महादुर्लभ है— जिसे ऐसों का संयोग हो वह महा सुखी, और न हो तो उस मनुष्य के जन्म की महा ख्वारी है—यदि और कुछ न हो तो पुरुष की स्त्री तो भी मनभावती होनी चाहिये तभी नित्यश्रीर्नित्यमंगलं, और नहीं, तो धिक् २ गृहस्थाश्रम है ॥ ३ ॥ जैसे—कुदेश में फंसे पुरुष को धन नहीं मिलता—उसी प्रकार कुपुत्र से पितृक्रिया और दुष्टा स्त्री के संयोग से घरके सुखों का और कुशिष्य से किसी पुरुष को यश का लाभ कदापि नहीं होता ऐसा, सब संसारी मनुष्य, निश्चय समझें और बुरे स्त्री पुत्रों का परित्याग कर देना ही श्रेष्ठ जानें—इस प्रकार सब शास्त्रों का पक्का सिद्धांत समझ हे युधिष्ठिर—मैंने अपना प्रथम से ही विवाह नहीं किया—हालांकि कोई २ कन्या मेरे साथ विवाह करने का बड़ा ही हट करतीं रहीं और वे महाविदुषी भी रहीं, फिर भी मैंने विश्वास नहीं किया ॥

॥ श्रीकृष्णोपदेशः ॥

—✻:०:✻—

॥७८॥ भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां, परोधर्मो ह्यमायया।
तदवध्र्यं च कल्याण्यः, प्रजानां चानुपालनं ॥१॥
॥७९॥ दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो, जड़ो रोग्यधनोपिवा।
पतिः स्त्रीभि र्न हातव्यो, लोकेप्सुभि रपातकी ॥२॥
अस्वर्ग्य मयशस्यं च, फल्गुकृच्छ्रं भयावहं।
जुगुप्सितं च सर्वत्र, कटुवाक्यं कुलस्त्रियः ॥ ३ ॥
॥ ८० ॥ श्रवणा द्दर्शनात् ध्यानात्, मम भावानु-
कीर्तनात्। न तंथा सन्निकर्षेण, यथा पतिनिषेव-
नात् ॥ ४ ॥

भा०—भागवत में श्रीकृष्णजी महाराज कहते हैं कि स्त्रियों का परमधर्म, पतिसेवामात्र है परंतु वह सेवा, निष्कपट और जैसी कि चाहिये वैसी ही ठीक २ बिन चूक हो, परचात् उसके पति के मातापिता आदि की सेवा और पुत्रोंका पालन पोषण करना है॥ १ ॥ जिन स्त्रियों को इस लोकमें अपना सतीत्व में नाम लिखाना और परलोक में मोक्षांत सुख प्राप्त कर लेना अभीष्ट हो, वे कदापि पति की सेवा में न चूकें, फिर वह चाहे कैसा ही दुःशील. वा दुश्चरित्री. वा वृद्ध. वा मूर्ख. वा रोगी. वा निर्द्धन क्यों न हो, स्त्री जाति को वही सर्वथा पूज्य है ॥ २ ॥ कुलवधू स्त्रियों को कदापि कि-

सी से स्वप्न में भी कटुवाक्य कहना उचित नहीं, यदि कहीं भूल करभी अपने पति और किसी सास ससुर आदि वरिष्ठ स्त्री पुरुषों से वे कटुवाक्य द्वारा कोई असत् व्यवहार कर बैठेंगी तो उन को बड़े २ भयंकर फल, सदैव के लिये प्राप्त होंगे—सत्य समझो कि यह क्रूर और कटु भाषण, बड़ा ही दुष्ट पदार्थ है वह अच्छी अच्छी कुलस्त्रियों तक की कीर्ति मिठा कर उन की सर्वत्र निंदा और दुर्दशा कराकर ही तृप्त नहीं होता, किंतु उन को महाघोर नरकों की भी ख़ूब सैर कराता है—इस कारण किसी को कभी, कटु वचन वा लड़ाई वा झगड़ाआदि कोई कुत्सित कर्म कर बैठना कदापि उचित नहीं, अन्यथा उन के दोनों लोकों का बिगाड़ है॥३॥

फिर वे कहते हैं कि हे कुलवधू—तुम को जैसा सर्वोत्तम फल, पति की सेवा व उपासना से प्राप्त हो सक्ता है वैसा कभी मेरी किसी प्रकार की उपासना, ध्यान और दर्शनादि करने से नहीं होगा अतः सुचेत हो और तुम्हारे लिये मुख्य जो पतिव्रत धर्म कहा गया है उसी पर तुम स्वच्छांतः करण से चलो अर्थात् ख़ूब स्मरण रक्खो कि कोई जप, तप, व्रत, तीर्थ, दान और नामस्मरण वा कथा वार्ता आदि कर्म, उन स्त्रियों को तारने का सामर्थ्य नहीं रखते, जिन का कि आचरण पति की प्रसन्नता के बाहिर परमात्मा देखता है—क्योंकि उस ने उन को पति की विद्यमान दशा में सिवाय पतिसेवा और उस की प्रसन्नता रखने के और कोई अन्य कर्तव्य, कहाही नहीं है ॥ ४ ॥

ऐसा यह साक्षात् श्रीकृष्णजी महाराज का भी उपदेश है अतः इस देश में अपना हित चाहने वाली अनेक रानी महारानी से लेकर महागरीबों तक की स्त्रियें सच्ची पतिव्रता होती चली आई हैं—इस के लाखोंहि दृष्टांत हैं उन में से थोड़े से हम चुन कर यहां आँगे लिखते हैं—उन को सब स्त्रियें चित्त देकर देखें वा सुनें और फिर ठीक उन के अनुकूल अपना चरित्र सुधारकर सच्चा सुख लूटें, ऐसी हमारी सदिच्छा है ॥

॥ चित्रांगदालापः ॥

॥८१॥ ननु त्व मार्यधर्मज्ञा, त्रैलोक्यविदिता शुभे ।
यद् घातयित्वा पुत्रेण, भर्तारं नानुशोचसि ॥१॥
॥८२॥ नाहं शोचामि तनयं, हतं पन्नगनंदिनि ॥
पतिमेवा नुशोचामि, यस्या तिथ्य मिदं कृतं ॥२॥
॥८३॥ नाऽपराधोस्ति सुभगे, नराणां बहुभार्यता ॥
प्रमदानां भवत्येष, माभू त्ते बुद्धिरीदृशी ॥ ३ ॥
॥८४॥ सख्यं चैतत् कृतं धात्रा, शश्व दव्यय मेवतु ॥
सख्यं समभिजानीहि, सत्यं संगत मस्तु ते ॥४॥

भा०—यह एक कथा इस प्रकार की है कि अर्जुन, दिग्विजय करते हुए मणिपुर पहुंचे वहां एक इनका पुत्र बभ्रुवाहन, अपने नाना का राज्य चला रहा था एक दिन वह अपनी माता चित्रांगदा की आज्ञानुसार बहुत-सा उपायन (नज़राना) लेकर अपने पिता अर्जुन से मिलने को अपनी भारी सवारी सहित आरहा था—मार्ग में अकस्मात् उसकी सौतेली माता उलूपी, उसे पाताललोक से आती हुई मिलगई अतः तुरंत उसने सवारी से उतरकर उसके चरण छुए और कुशल पूछा तथा अपने इधर आने का सब हाल कहा—सो सब सुन, इस रानी उलूपी ने बहुतसा प्यार करके कहा कि बेटा, तुमतो अभी लड़के ही हो लेकिन मुझे तुमारी माता की बुद्धि पर इस समय बड़ाही शोक हुआ जो उसने तुमको इस

प्रकार मिलने को भेजा–क्या इस समय अर्जुन कोई ससुराल की रिस्म वा रीति निभाने आया है ? वा वह राजाओं की रजपूती देखने को निकला है सत्य समझ वह तुझे इस हालत में देखकर सुखी तो नहीं किंतु महा दुखी होगा, तथा तेरे मुखपर थूंककर कहेगा कि धिःकार है तुझ पुत्र पर—अरे तू पैदा होते ही क्यों न मरगया–तब तेरी क्या दशा होगी ? कहीं मुख दिखाने के लायक भी तो बेटा फिर न रहेगा–सोच मैं क्या कहती हूं–फेंक इस महा वाहियात नज़राने को, और यदि अर्जुन से पैदा है तो उसका घोड़ा पकड़कर भेज अपनी राजधानी को, तथा अच्छी तरह ख़बर ले बाप की अपने हथियारों से, जिससे वह जुड़ाय और कहे कि वाह बेटा होय तो ऐसा होय ॥

इतना सुनते ही वह बभ्रुवाहन, जरत्काल होकर बोला धन्य, माता धन्य, सचमुच तूने बहुत ही ठीक कहा–इत्यादि बहुतसी प्रशंसा करके उसने फिर उलूपी के चरण छुए और कहा कि माता मेरे साथ में सब सामग्री है जी चाहे सो अच्छीतरह खापीकर तह दिल हो और तनक यहीं थमकर देख तूं अब अपने नेत्रों से अपने इस पुत्र की रजपूती को ।

आख़रकार ऐसे ये दोनों पिता पुत्र जी खोल कर उस समय आपस में भिड़े कि दोनों तरफ़ हाहाकार पड़गया और परिणाम में ये दोनों इस समरांगण में मृतप्राय होकर गिर पड़े—यह सब कच्ची ख़बर तुरंत राजधानी में पहुँची, उसी क्षण बभ्रुवाहन की माता चित्रांगदा, हाय २ करती हुई वहां आई जहां कि ये दोनों वीर गाढ़निद्रा ले रहे थे–तहां उस ने उलूपी को बैठा देखा उस से वह, ऊपर लिखे श्लोकों के अनुसार कहने लगी कि बहन तेरी समझ और बुद्धि जैसी त्रिलोकी में प्रसिद्ध है उसी प्रकार आर्यों की स्त्रियों का संपूर्ण धर्म भी तुझे अच्छी तरह विदित है तथापि न जाने तुझे इस समय यह क्या सूझी जो तूं इस नादान लड़के से ऐसा अनर्थ करा बैठी जिस का कि अब तुझे शोक तक नहीं–मुझे इस समय पुत्र का शोक, सच समझ तनक भी नहीं, परंतु हाय !!! पति का शोक केवल मुझे सता रहा है ॥

क्या द्वार पर आये हुए जगत् प्रसिद्ध महारण धुरंधर मेरे परमप्यारे

प्रतिनिधि का ऐसा सत्कार मेरे यहां होना ठीक था ! सोच तो सही कि दुनिया तुझे वा मुझे अब क्या कहेगी ! और कैसे यह मुखलगा कलंक अब छुटेगा ! बुरामान चाहे भला, साफ़ २ बात तो बहनी यह है कि तेरे हृदय में न जाने कब से यह सौतिया डाह छा रहा था कि यह अर्जुन, जो पर स्त्री, जो कर रहा है, सो ठीक नहीं—इसी लिये तूने आज अपने उस दारुण दुःसह शोक की जड़ अच्छी तरह कटवा डाली, अर्थात् "न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी,, वाली मसल तूने सत्य कर छोड़ी, अरी तेरी बुद्धि पर कैसे ये पत्थर पड़े ? जिस से कि तूने अपने उस महारोग की शांति, इस महा नीच विचार से हाय आज ऐसी कर छोड़ी—बड़ी पंडिता है तो बता कि मर्दों को अपने चित्त के बहलाने के लिये बहुत सी औरतों के करने में अपराध कहां लिखा है ? यह तो दोष, सर्वत्र स्त्रियों ही के लिये है कि वे अन्य पुरुष का मुंह तक न देखें, सो न सोच कर व्यर्थ तूने अर्जुन को अपराधी समझ उस की आज यह दशा करा छोड़ी ॥

बहनी स्यानी और पतिव्रता स्त्रियों की तो यह रीति, प्रख्यात है कि वे पति की प्रसन्नता के अर्थ उस की बिठालीं हुई वेश्याओं तक का सदा सच्चे मन से सन्मान करती हैं ॥ १८ ॥ परंतु

॥ १८ ॥ एक दो नहीं किंतु अब भी सैंकड़ों छोटे बड़े घरानों की स्त्रियें बल्कि रानी महांरानी तक ऐसी देखी जाती हैं कि वे अपने पुरुषों की वेश्या वा उन समवृत्ति आ बैठीं स्त्रियों का सन्मान बड़ी चाह व प्रेम प्रतीत के साथ सदा करतीं हुई अपना संपूर्ण जगत् में सुख व सुयश बढ़ा रही हैं—सो यह कार रवाई इन की पति के सन्मुख ही नहीं किंतु पति के मरे पीछे भी उसी प्रेम परतीत के साथ देख लो, सारांश इस प्रकार की बड़ाई प्राप्त करना जैसा सच्चे पतिव्रतापन में गिना जाता है उसी प्रकार सौतिया डाह बढ़ाने वाली स्त्री, महा नीच और महा दुष्टा सब जगत् में कही जाती है—कहो इन दोनों में कौन भली आदमिन है ? और वास्तव्य में किस का जीवन ठीक और किस का गैर ठीक है ? (यह नोट स्त्री सौजन्य का पोषक है न वैसे पुरुष कृत्यों का)

तूं अपने चित्त में मुझ से सदा द्वेष ही मानती रही जान पड़ती है—तभी तूने आज मुझे यह महा दारुण दिन दिखा छोड़ा—मेरे चित्त में जो कभी इन कपटों का तेरे मद्धे लवलेश तक न था हाय मैं तो सदा यही जानती रही कि ब्रह्मा ने इस एक पति के समागम से हमारी तुमारी जन्म भर के लिये अमिट प्रीति जोड़ दी है उसे हम, सच्चे सद्भाव से ऐसी निभावें जैसी कि सगी बहनों की निभती है—बस ऐसा ही सद्भाव तेरे हृदय में बर्तना चाहिये था तब तेरी इस जगत् में सच्ची शोभा, प्रतिष्ठा और प्रशंसा थी—इस का परिचय अब भी दिखा, देख निरी नाग कन्या ही बहनी मत बन बैठ— समय खोय पुन का पस्ताएं ॥

ऐसी अनेक करुणा प्रपूरित बातें कह कर चित्रांगदा, अपने पति पर अत्यंत विलाप करने लगी—परन्तु जैसी शोकसागर में डूबी हुई यह रानी चित्रांगदा बातें कर रही थी वैसी कपटिन रानी उलूपी, बिलकुल न थी—उस ने तुरंत उसे (चित्रांगदा को) गले लगाकर अच्छी तरह समझाया और खुद दौड़कर उसी क्षण जंगल से वह कुछ औषधि ढूंढ़ लाई—जिस के कि सुप्रयोग से उस ने तुरंत अपने पति पुत्रों को संजीवित कर दिया—फिर क्या पूछना था उसी क्षण सर्वत्र बड़ी बधाई और मंगलाचार होने लग गए ॥

ऐसी यह एक बहुत बड़ी कथा है—सो यहां थोड़ी सी इस लिये लिख दिखाई कि हमारी परम प्यारी स्त्रियें और सब स्यानी व समझदार बहू बेटीं, इस में लिखीं दोनों रानियों का सच्चा स्वरूप और उन की परस्पर में हुई बातों को अच्छी तरह विचारें और समझें कि रानी चित्रांगदा ने मुख्य स्त्री धर्म, क्या बताया ? और उस ने क्यों कहा कि मुझे पुत्रशोक बिलकुल नहीं ? और न सौतिया डाह करना किसी स्त्री के लिये कभी अच्छा है ? तो जान पड़ेगा कि उस की ये दोनो बातें ठीक २ वैसी ही थीं जैसी कि सच्ची पतिव्रता स्त्री के वास्ते करने को, वेदशास्त्रों में कहीं हैं अर्थात् जिस बात में वह अपने पति को राजी देखे सोई सब वैसा ही करना सदा ठीक समझे और उसी में आपभी सदा सब तरह सोरहू आना प्रसन्न रहे ।

प्रत्यक्ष देख लो कि उसके यही एक अकेला बभ्रुवाहन पुत्र था सो भी कैसा कि ऐन तरुण व सुस्वरूप व सर्वविद्या विशारद और परम प्रशंस्य व सुशीलादि सर्वगुण संपन्न, महाशूर, महाविचक्षण, मातृभक्त, पितृभक्त, राज्यभारधुरंधर, आगे उसके न कोई पुत्र, न बन्धु, ऐसे पुत्र के मृत्यु का भी जिसे शोक न हुआ वह कैसी स्त्री, और कैसी उसकी माता ? ऐसी को तो स्पष्ट राक्षसी कहना चाहिये—परंतु नहीं, वह तो पूर्ण पतिव्रता कहाती थी—उसको ऐसे पुत्र का शोक, उस समय न होने का महाज़बर्दस्त कारण, केवल वही पति की प्रसन्नता के अनुकूल अपनी प्रसन्नता का रखना है—क्योंकि उसे खास उसके पति ने ही तो मारा था—इससे स्पष्ट है कि इस पुत्र के मारने में पति की सर्वथा प्रसन्नता थी—इसी लिये यह रानी चित्रांगदा, दुखी न हुई—यदि इसके विरुद्ध उसकी बुद्धि होय, तो उसका पतिव्रत कहां रहे अर्थात् वह साफ़ नष्ट होजाय, सो कैसे वह करती ॥

बस यही उत्तर उसकी दूसरी बात का समझ लिया जाय कि सौतों के जमा करने में सर्वथा पति प्रसन्न है तो यह भी अति ख़ुश है—इसी से उन सब अपनी सौतों को यह रानी, अपनी सगी बहनों के समान समझ उनसे कपट छोड़कर अतिप्यार करती थी—और ऐसी ही पवित्र समझ रानी उलूपी की भी थी—तभी उसने अपने सौतेले पुत्र बभ्रुवाहन को उसका और उसकी माता का सच्चा हित सोचकर ऐसा वह, सर्वोत्तम उपदेश किया जिससे कि वह अपने पिता अर्जुन को प्राणों से भी अधिक प्रिय हुआ और उसी से वह उस समय के सब राजाओं में शिरोमणि गिनागया भी, जानो ॥

तथा सोचो कि इस पुस्तक के आरंभ से श्रीकृष्ण जी महाराज के उपदेश तक जितना लेख हम अभी लिख आए हैं वह कितना सत्य और सर्वथा माननीय (अवश्य मानने योग्य) है अन्यथा रानी चित्रांगदा के मुख ऐसे चित्ताकर्षक वाक्य, कभी सुनने में न आते—अब विचारो कि यह उक्त रानी चित्रांगदा, किस प्रकार की स्त्री थी, तो जान पड़ेगा कि वह एक राजा की कन्या दूसरे राजा की स्त्री और तीसरे राजा की माता

थी, और ये तीनों ऐसे गुणी, पराक्रमी और ऐश्वर्यसंपन्न थे कि उनकी प्रशंसा लिखने को सैंकड़ो मन कागद लेकर बैठें तो भी वह बहुत थोड़ा होगा—श्रीकृष्णचंद्रजी महाराज की खास बहन सुभद्रा भी अर्जुन को ब्याही थी, वही महाविजयी अर्जुन, इस रानी का भी पति था—इस कारण यह रानी, द्रोपदी के समान श्रीकृष्ण को सगे भाई से भी अधिक प्रिय मानती थी—सारांश ग़रीब स्त्री से लेकर इस दर्जेतक बल्कि इससे अधिक ऐश्वर्यवाली स्त्रियों तक ने अपने समस्त ऐश्वर्यों को तुच्छ, और पतिव्रत को सब कुछ समझ उसे, यावत्जन्म पाला—उसी महातारीफ़ी पतिव्रतधर्म को आज इस समय की स्त्रियों ने हाय ऐसा अतिलतमर्द कर छोड़ा है कि जिसका वर्णन नहीं होसक्ता कहो इनकी क्या २ कुगति न होगी ? हा !!! जिस देश में पांच हज़ार वर्ष के पहले, घर २ ऐसी अनुपम पतिव्रता छा रहीं थीं तहां अब कवि लोग स्पष्ट यह लिखते हैं कि "पतिव्रता नार, न घर घर—कलौ कृत्या, गृहे गृहे,, अस्तु अब और सुनो आगे दूसरी कथाओं को ॥

॥ वृद्धाविनयः ॥

॥८५॥ सत्यं रतिश्च धर्मश्च, स्वर्गश्च गुणसंचयः ।
स्त्रीणां पतिसमाधीनं, कांक्षितं च द्विजर्षभ ॥ १ ॥
॥८६॥ भर्तुः प्रसादा न्नारीणां, रति पुत्रफलं तथा ।
पालनाद्धि पति स्त्वं में, भर्तासि भरणा च्च मे ॥२॥

॥८७॥ पूज्यो मम गुरु स्त्वं वै, यतो दैवतदैवतम् ।
देहः प्राणश्च धर्मश्च, शुश्रूषार्थ मिदं गुरोः ॥३॥
॥८८॥ तव विप्रप्रसादेन, लोकान् प्राप्स्यामहे शुभान् ।
पुत्रप्रदाना द्वरद, स्तस्मात् सक्तून् प्रयच्छ मे ॥४॥

भा॰—विदित होकि महाभारतांतर्गत अश्वमेधपर्व की यह एक कथा, इस प्रकार की है कि कौरवों का विध्वंस करे पीछे महाराजा युधिष्ठिर ने जो अश्वमेधयज्ञ, किया उसकी प्रशंसा में व्यास जी ने स्पष्ट लिखा है ॥ ८६ ॥ यत् कृतं कुरुराजेन, मरुतस्याऽनुकुर्वता ॥ न करिष्यति तल्लोके, कश्चि दन्यो नराधिपः ॥ ९० ॥ कोटि कोटि कृतां प्रादात्, दक्षिणां त्रिगुणां क्रतोः ॥ युधिष्ठिरो जितःस्वर्गो, मुमुदे भ्रातृभिः सह ॥ ९१ ॥ बहुधनरत्नौघः, सुरामैरेयसागरः ॥ सर्पिःपंका ह्रदा यत्र, बभूवु श्चान्नपर्वताः ॥ ॥ ९२ ॥ रसालकर्दमा नद्यो, बभूवु र्भरतर्षभ ॥ भक्ष्यखांडवरागाणां, नांतं ददृशिरेजनाः ॥ कि आँगे कभी कोई राजा ऐसा यज्ञ नहीं कर सकेगा जिसमें तीन २ करोड़ मुहर और पसेरिन रत्न दक्षिणा में ब्राह्मणों को मिलें—इसी प्रकार ऊपर के श्लोकों में लिखे अनुसार इस यज्ञ में और बाकी सब अपूर्व ही ठाठ बाठ थे परंतु "धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः,, धर्म की गति, बहुत बारीक कही है—तदनुसार यज्ञ की समाप्ति पर एक नीलाक्ष नाम के निउलाने वहां आकर कहा कि जिस यज्ञ की ये तैय्यारियां और ये अनुपम व बेहद ठाठ, वह "॥ ९३ ॥ उंछवृत्ते र्वदान्यस्य कुरुक्षेत्र निवासिनः ॥ सक्तुप्रस्थेन वो नायं यज्ञ स्तुल्यो नराधिप,, हे राजन्—मेरी समझ में कुरुक्षेत्रनिवासी उंछवृत्ति नामा महागरीब ब्राह्मण की करनी को नहीं पाता—हालांकि उस बेचारेने केवल एक सेर सत्तू ही का प्रदान, एक समयोपस्थित अतिथि को किया था—सो खाकर उस अतिथि ने जहां कुल्ला किया, वहां जाकर मैंने लोट लगाई तो आप देखिये कि तुरंत मेरा यह आधा शरीर तब से सोने का हो ग-

या बाक़ी रहा मेरा शरीर, ओर सुवर्ण का होजाय, इस विचार से मैंने कुरुक्षेत्र से इतनी दूर तक दौड़ की और आप के यहां के ब्राह्मणों के किये हुए कुल्लों के पानी में प्रति दिन सैंकड़ों लोटें भी मैंने लगाई— लेकिन मेरी वह दुराशा, यत् किंचित् भी पूरी न हुई इस का मुझे हे महाराज, अत्यंत शोक है अतः वह सब कथा, आप को सुनाने पड़ी—यों कहकर वह चलता हो गया ॥ *

अब रही उस उंछवृत्ति ब्राह्मण की बाक़ी कथा, सो वह इस प्रकार है कि कई दिन लंघन हुए पीछे उसे एक दिन मध्यान्ह के समय एक सेर सत्तू हाथ लगे उस के उस ने बराबर के चार भाग करके ३ भाग अपनी स्त्री, पुत्र, और बहू को दिये, रहा चौथा भाग, सो ख़ुद उस ने लिया—ज्यों ही ये चारो जने खाने को हुए त्योंही एक अतिथि वहां आ-गया—उसी दम उस वृद्ध ब्राह्मण ने उस को बड़े सत्कार से बिठाला और अपने भाग का सत्तू उठाकर उस के सामने धर दिया, सो खाकर वह बोला कि महाराज, मेरी तृप्ति नहीं हुई—तब ब्राह्मणी ने पति से कहा कि यह मेरा भाग, आप लेकर अतिथि को और दे दीजिये इस पर वृद्ध ने कहा कि विदुषी तू बड़ी धन्य है, परन्तु मेरा चित्त तेरा भाग लेकर देने को किसी तरह साक्षी नहीं देता क्योंकि वैसे ही तूँ वृद्धावस्था के का-रण महा जर्जर, तिस में आज बहुत दिनों से तुझे अन्न का दर्शन नहीं ज्यों त्यों यह इतना सत्तू तेरे सन्मुख आया है उस को उठा दिये पीछे किसी तरह तेरा जीवन नहीं हो सकेगा ॥

इस पर फिर स्त्री ने कहा कि महाराज, इस समय आप मेरे जीवन मरण की तरफ़ न देखिये—मृत्यु ने तो कभी किसी को नहीं छोड़ा और वह यदि इस तरह मुझे प्राप्त हो, तो मेरा महा अहोभाग्य है—परंतु इस अवसर पर आप के सम्मुख से अतिथि का भूंखा उठ जाना बड़ाही अधर्म है—सो आप के सिर चढ़ाना मुझे किसी तरह उचित नहीं, क्योंकि स्त्रियों का परमधर्म यही है कि वे अपने पति की किसी तरह हानि न होने देवें—

* आँगे नोट नंबर २७ देखा जाय ॥

आप के चरणों की कृपा से मेरी इतनी उम्र बड़ेही आनंद से कटगई तथा मैंने अच्छी तरह अपना सत्य, सुख और धर्म भी आप से समझा उस के और इस अतिथि पूजन के प्रभाव से अवश्य मुझे सर्वोत्तम लोकों की प्राप्ती होगी—आपने मेरा इस अवस्था तक अच्छी तरह लालन पालन किया इसलिये आप मेरे पति कहाते हैं—तथा भरण पोषण किया इसलिये आप मेरे भर्ता हैं—और आपने मुझे यह पुत्र दिया इसलिये आप वरदानी हैं और सब कुछ लिखा पढ़ाकर और समझा बुझाकर मुझे सुयोग्य किया इसलिये मेरे सच्चे हितू और मेरे जन्मजन्मान्तरों के सुधारने वाले परम-पूज्य गुरू हैं—इसलिये हे पतिदेव, आपकी प्रशंसा मुझ से हो नहीं सक्ती ऐसे प्रशंस्य जो आप, तिनकी सेवा में मेरा देह, प्राण, तथा धर्मतक लग जाना सर्वथा सार्थक है—अतः कृपा करके यह मेरे सत्तू अवश्य लेकर अतिथि को दिये जावें जिससे कि आपके धर्म की पूर्ण रक्षा हो, इसी में मुझे सर्वस्व सुख है—तब वृद्ध ने उसका भाग लेकर अतिथि को दिया, फिर भी वह तृप्त न हुआ तब उसके पुत्र ने पितासे अपना भाग लेकर देने के लिये प्रार्थना की और उसने अपना सब पुत्रधर्म कह कर वृद्ध को राज़ी किया, तथापि उस अतिथि की तृप्ति न हुई परिणाम में उस वृद्ध की बहू ने बहुत सा विनय करके अपना भाग अतिथि को देने के लिये अपने ससुर से प्रार्थना की ज्यों त्यों वृद्ध ने उस का भी कथन स्वीकार किया, तब वह छली अतिथि, संतुष्ट हुआ और इस दान के प्रभाव से वे चारों मनुष्य उसीक्षण सर्वोत्तम विमान में बैठ कर सुर-धाम को गये ॥

ऐसी यह बहुत विस्तृत कथा है—सो यहां पर थोड़ी सी केवल इस लिये दिखाई गई है कि हमारी सब प्यारी बहू बेटी देखें और समझें कि अतिथि सत्कार की आवश्यकता जो हम इस से पूर्व लिख चुके हैं उस का कैसा ज़बर्दस्त प्रभाव है और वह इस दशा तक गृहस्थ को अवश्य साधना चाहिये, तब उस को वैसी ही सद्गति प्राप्त होती है और जब कि उस में इस प्रकार सद्गति देने की शक्ति है तब वह चूक भये पर दुर्गति भी उतनी ही कर छोड़ता है जिस की कि सीमा नहीं—इसी

लिये उस वृद्ध की स्त्री व पुत्र और पुत्रवधू ने उस में कमी नहीं होने दी और इतना खेद सहन करने से उस के परिणाम में उन चारों को वह लाभ हुआ जो महाराजा युधिष्ठिर और उस के समस्त कुटुम्ब को अपने यज्ञ में विश्वभर की संपत्ति दान करने से भी प्राप्त नहीं हो सका ॥

—:*:*०*:*:—

॥ सावित्रीचरित्र. ॥

॥९४॥ सगुणो निर्गुणो वापि, मूर्खः पंडित एव वा। दीर्घायु रथवाल्पायुः, समे भर्ता मम प्रभो ॥ १ ॥

॥९५॥ नान्यं वृणोमि भर्तारं, यदि साक्षा च्छचीपतिः। इति मत्वा त्वया तात. यत्कर्तव्यं वरस्य च ॥ २ ॥

नारद उवाच.

॥९६॥ स्थिरा बुद्धिश्च राजेंद्र, सावित्र्याः सत्यवान् प्रति। त्वरयस्व विवाहाय, भर्त्रा सह कुरु त्विमाम्॥३॥

भा०—विदित होकि अपने इस देशभर में सावित्री का पतिव्रतापन अच्छी तरह प्रसिद्ध है--दक्षिणदेश में तो ज्येष्ठ शुक्ला १३ त्रयोदशी से तीन दिन तक बहुधा सब सुहागिन स्त्रियें अपने २ घर बड़े उत्साह और गाजे बाजे के साथ इसका व्रत और वरपूजन आदि कार्य किया करती हैं—जो त्रिरात्रव्रत, नहीं करतीं वे पौर्णिमासी का उत्सव तो अवश्य ही मानती

हैं—उस दिन ग्राम वा मुहल्ले में किसी एक श्रेष्ठ पुरुष के स्थान में तीसरे पहर को इन सब स्त्रियों का बुलावा होकर वहां बयना बढ़कर सावित्री माहात्म्य की कथा पढ़ी वा गाई जाती है इसलिये उस कथा का परिज्ञान बहुधा उधर की छोटी २ लड़कियों तक को होता है अतएव उसका विस्तार यहां पर विशेष न लिखकर केवल सब के स्मरणार्थ हमने उक्तकथा का सार मात्र यहां लिखदिया है ॥

सो वह इस प्रकार है कि जैसी यह सावित्री रूप, विद्या, गुण और स्वभाव से अनुपम थी वैसा ही इसको पति मिले इस चिंता में डूबेहुए इसके पिता राजा अश्वपति ने एक दिन घर पर आये हुए नारद मुनि से हाथ जोड़कर कहा कि महाराज यह मेरी कन्या सावित्री विवाह योग्य होचुकी है अतः कृपा करके इसके योग्य कोई राजपुत्र बताइये ? वे बोलने नहीं पाये थे कि इतने में बड़े विनीतभाव से सावित्री ने प्रार्थना की कि महाराज मैं आपकी चिंता दूर होने का यत्न आपकी इच्छानुसार प्रथम ही कर चुकी हूं परंतु लोक लज्या के मारे आप से यह बात अभी तक कह नहीं सकी उसकी क्षमा मागती हूं—यह सुन राजा ने अति प्रसन्न होकर उसे उसका सब वृत्तांत सुनाने,की आज्ञा दी तब उसने कहा कि महाराज यहां अमुक वन में राज्यच्युत राजा द्युमत्सेन अपने स्त्री पुत्र सहित तप करते हैं उनके पुत्र सत्यवान् को मैंने वर लिया है—यह सुन नारदमुनि बोले वाह वर तो बहुत ही उत्तम बेटी ने वर लिया—निःसंदेह वह सब तरह इस के योग्य भी है परन्तु उस में एक बड़ी खोट मुझे अपने तपोबल से राजा इस समय यह जान पड़ती है कि वह बड़ा ही अल्पायु है अर्थात् ठीक एक वर्ष से अधिक वह नहीं जियेगा यह सोच लिया जाय, तब राजा ने कहा कि यदि ऐसा है तो बेटी तुम उसे छोड़ो और दूसरे को वरलो बेटी बोली कि महाराज "सकृत्प्रदीयते कन्या,, स्वयंवर तो एक ही बार करना लिखा है सो वह हो चुका—इस पर उस के माता पिता उस को अनेक भांति समझाते रहे परंतु पार्वती के समान सावित्री हर बार उनकी उस बात को सत्य के विरुद्ध समझ पीछे हटती थी तथा उस ने बड़ी नम्रता के साथ उन को "सगुणो निर्गुणो वापि आदि,, ऊपर लिखे वा-

क्य सुनाये, इन का अर्थ यह है कि महाराज लाखों दोषों से युक्त भी यदि सत्यवान् अब है तो भी उसे छोड़ साक्षात् इंद्र वा इंद्रसम किसी अन्य पति को वरने वाली अब मैं नहीं कहाउंगी—ऐसा पक्का निश्चय समझ आप उसी के साथ मेरा बहुत जल्द विवाह कर दीजिये यही मेरी प्रसन्नता और इसी में मुझे सर्वस्व सुख है—यदि इस के विरुद्ध अर्थात् जैसा आप कहते हैं वैसा कुछ करूंगी तो मैं जगत् में मिथ्यावादिनी ठहरूंगी-सो किसी तरह न हो क्योंकि (सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप—तथा सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितं तथाच, नासत्यात् पातकं परं) ऐसा शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है उस पर मेरा जन्म से पूरा विश्वास व निश्चय चला आता है-सो मैं अपने उस परम पावन व्रत को अब भी किसी तरह नष्ट नहीं करूंगी ॥

इस पर नारद जी की सम्मति के अनुसार राजा ने तुरंत उस का विवाह उस सत्यवान् के साथ कर दिया उस दिन से वह फूली अंग नहीं समाती थी-बड़े चाव से यह अपने पति और अंधे सास ससुर की सेवा व शुश्रूषा करती थी-वे महादरिद्र और तंग हाल थे परन्तु कभी सावित्री को इस बात का स्वप्न में भी खेद नहीं हुआ बल्कि बड़ा ही आनन्द व सुख, उसे उस समय होता था जब कि उस के महादीन दुखिया सास, ससुर उस की घड़ी २ की सेवा से संतुष्ट होकर उसे बार बार असीसते थे ॥ १९ ॥ वह मनही मन हुलस २ कर कहती थी कि बस इन्हीं असीसों

---

(१९) इस प्रकार सास ससुर की सेवा करनेवाली स्त्रियों से प्रथम तो स्वदेश सर्वत्रही परिपूरित था परन्तु अब भी उनका इस संसार में बिलकुल अभाव वा अकाल नहीं होगया अर्थात् इस समय में भी कहीं२ ऐसी सुलक्षणा स्त्रियें जगत् में विद्यमान् हैं-कानो सुनी नहीं किंतु आंखों देखी लिखते हैं कि साक्षात् देवरूप हमारे सपत्नीक श्वशुर जो कि अपने महागुणी इकलौते नूतनवयस्क पुत्र के शोक से तीन चार वर्ष अति दुखी व जर्जर होकर काशी में मरे—उनकी १८ वर्ष के उमर की निः संतान महादुखित विधवा बहू ने ऐसी सर्वोत्तम सेवा की कि वैसी उन के पुत्र

के लिये मैंने बड़े हट से अपना विवाह इस घर में होना स्वीकार किया था—सो उस में नारद के आने से हाय बड़ा ही विघ्न खड़ा हो गया था परंतु धन्य वह परमेश्वर जिसने मेरे उस महा संकष्ट को तुरंत दूर करके मुझे कृतकृत्य किया आशा है कि यह

से भी होना असंभव थी—गो उस समय वहां उन की दो तरुण कन्या भी मौजूद थीं परन्तु इस सेवा विषय में जो कुछ कि तारीफ़ और धन्यवाद इस समय इस बहू ने चहुंओर से पाया वह उन की कोई कन्या नहीं पा- सकी, २२ वर्ष होचुके तमाम काशी के समस्त स्त्री पुरुष, आज तक इस की वाह वाह कर रहे हैं—काशी ही में नहीं किंतु प्रयाग मथुरा झांसी ग- वालियर व जयपुर आदि अनेक नगरों में भी हम ने ख़ुद बिरादरी के हर एक स्त्री पुरुष के मुख इसकी तारीफ़, अति संतोष के साथ इसी प्रकार सुनी और सब लोग इस लपेट में उक्त बहू के माता पिता को भी धन्य धन्य कहते हैं जो इज़्ज़त. आबरू. और प्रतिष्ठा. आज दिन इसकी तमाम बिरादरी में देखी जा रही है वह हर एक स्त्री को प्राप्त होना महादुर्लभ है— ऐसा, सास ससुर की सेवा का प्रत्यक्ष प्रभाव है—अस्तु अब साथ ही इसके उस बहू की पांच नंदों में से एक नंद की यह तारीफ़ भी सुनलो कि उसकी सास अपनी तमाम जिंदगी भर यह रोती रही कि हमारी बहू सदा हमसें ऐंठ ही मानती रही, वह कभी घड़ी भर को भी हमारे पास न बैठी, सदा बेटा २ कहते मेरा मुख और कंठ सूखा परंतु बहूने कभी यह न समझा कि यह कौन है और किसलिये इस प्रकार लुलाचुरा कर सदा मुझे समझाती है, यहां तक कि इस विचित्र बहू ने अपने सास की इच्छा के अनुसार अपने माथे की बेंदी और कपड़ा पहिनने का ढँग तक कभी एक दिन को न बदला—अब सोचें और कहें हमारी सब प्यारी बहू बेटीं कि तुम्हारी समझ में इन दोनों में भौजी अच्छी वा नंद? अर्थात् जो अच्छी ठहरे उसी ऐसी अगर वे खुद बनें तो बड़ाही उनका हम पर उप- कार हो ॥

यहां पर प्रथम सब बहू बेटियों को सोचना चाहिये कि वास्तव में सास ससुर क्या चीज़ हैं! वे तुम्हारे उस परमपूज्य व प्राणप्रिय पतिदेव

परम दयालु सालभर पीछे नारद जीके कथनानुसार आनेवाली मेरे पति की मृत्यु को भी इसीतरह निवारण करदेवेगा—अंतको वैसाही सब हुआ अर्थात् परमेश्वर की दया और इसके उस पतिवृत के प्रभाव से इसका जंगल में मरा हुआ पति, इसके सन्मुख जी उठा तथा इसकी सेवा शुश्रूषासे सुखी हुए इसके सास ससुर को अच्छी तरह सूझने भी लगा और उसी प्रकार उन्हीं दिनो उनका गयाहुआ राज्यपाट भी उनको फिर मिलकर वे सब दरिद्र भोग से छुटे और जोकि इसके माता पिता ने इसकी इच्छानुसार इसका इस ठौर विवाह कर दिया था इस कारण यह सदा उनके लिये परमेश्वर से वारं वार पुत्र मांगती थी तदनुसार उनको एक दो नहीं किंतु शत पुत्र हुए और उसी प्रकार यह ख़ुद भी अनेक सद्गुणी बेटा नातियों

के जन्मदाता हैं जिस को कि वेदादि शास्त्र और सब जगत् तुम्हारा नसीब पुराकृत फल व सौभाग्य कहता है—ये वे हैं कि जिन्होंने तुम्हारी प्राप्ती के लिये सैकड़ों उपाय व मिन्नतें व मन्नतें कीं हैं—ये वे हैं कि जिन्हों ने तुम्हारी सगाई होतेही बड़ी ख़ुशियां मनाई हैं—ये वे हैं कि जिन्होंने अपने लड़का व लड़की के लिये चाहे कभी एक छल्ला तक न बनवाया हो परंतु तुम्हारा संबंध होतेही सैकड़ों वा हज़ारों रुपयों का तुम्हारें लिये गेहना. कपड़ा आदि अवश्यही बनाछोड़ाहै—ये वे हैं कि जिन्होंने अपनी शक्ति से बाहर तुम्हारे विवाहादि में ख़र्च किया और सैकड़ों रुपया व मोहरें तक तुम पर वारीं व लुटाई—ये वे हैं कि जिन्होंने तुम्हारे आने पर और भी अनेक प्रकार की ख़ुशियां मनाई—ये वे हैं कि जो तुम्हारे नाना प्रकार के दोषों व अपराधों को प्रति दिन देखें व सहें और फिर भी तुम्हारा भला चाहें—ये वे हैं कि जिन्हों ने अपनी संपूर्ण व सब प्रकार की संपत्तियों में तुम्हारा पूर्ण सत्व नियत कर दिया है—क्या इतने पर भी तुम्हारा यह धर्म नहीं कि तुम उनकी कही मानों ? वा उनके विपत्ति काल में उनकी सेवा व शुश्रूषा करो ? भला फिर इनके मरे पीछे इनका श्राद्ध वा गया करने की क्या ज़रूरत है अर्थात् वह सब सर्वथा व सार्वकाल व्यर्थ है ॥

से अलंकृत हुई और उन सबका पूर्ण सुख देख कर अपने ज्ञान बल से पति सहित यह मुक्त भी हुई। *

सारांश जिस समय यह राज्य पर पहुंची उस समय में भी वह कभी राज्यमद में नहीं भूली अर्थात् जैसी प्रथम वह उस ग़रीबी में अपने पति और सास ससुर को प्रसन्नरखती थी उसी प्रकार उसने जन्मभर उन तीनों को हांजी हांजी कह कर हर तरह से अति प्रसन्न रक्खा, वह हर महीने की हर पर्वीऔर सब त्योहारों पर हज़ारों सुहागिनों को एकत्रितकरके बड़े सन्मान के साथ उनको नाना भांति की ऐसी अद्भुत कथाएं सुनाती थी कि जिनसे वे सब अपना चरित्र सुधार कर इसके समान पतिवृता बनगई और सदा उसी तरह उसके समय में और उसके पीछे भी जिधर देखो उधर पतिवृताओं की वृद्धि होती दीखती रही अर्थात् कोई घर उस काल से ऐसा नहीं दीखता था कि जिसमें हटीली वा दुष्टा वा क्रूरा वा कटुवादिनी कोई स्त्री कहीं देखी जाती हो—ऐसी अनुपम विदुषी व गुणवती और सर्वोपरि सुचरित्रा व सर्वजनप्रिय पतिवृता, यह रानी सावित्री उस काल में यहां होगई है—अतः इसकी प्रशंसा के अनेक प्राचीन ग्रंथ इस देश में अब तक पायेजाते हैं और इसकी याद में आज तक हरसाल जेठ के महीने में सब देशों में पूर्व लिखितानुसार वरसातें आदि तिथि, मानी व पूजी जा रही हैं॥

ऐसी अब भी हमारी सब प्यारी बहू बेटी बनती चली जांय इस विचार से हमने यह उसकी एक अति लघु कथा यहां पर लिख जताई है—सो तभी होगा जब सब स्त्रियें अपना दुष्ट स्वभाव त्याग कर प्रतिदिन नीचे लिखे दोनों स्तोत्रों का पाठ करना सीखेंगी क्योंकि इन्हीं के पाठ से सावित्री ने अपने समय में सब स्त्रियों का सुधार किया है अर्थात् स्त्री सुधार के उक्त दोनों स्तोत्र मूलमंत्र हैं, ऐसा समझ अवश्य उनके अर्थों पर बने वैसे अपना खूब चित्त जमा कर काम बनाओ॥

---

* नोट नंबर २७ के देखने की यहां भी सूचना की जाती है॥

॥ अथ लक्ष्मीनारायण संवादः ॥ २० ॥

॥ लक्ष्म्युवाच ॥

॥९७॥ सत्स्त्रीणां समुदाचारं, सर्वधर्मविदां वर ॥
श्रोतु मिच्छाम्यहं त्वत्त, स्तन्मे ब्रूहि जगत्पते ॥ १ ॥

नारायणउवाच ॥

॥९८॥ सर्वज्ञां सर्वतत्वज्ञां, देवलोके मनस्विनीं ॥
कैकेयीसुमना नाम, शांडिलीं पर्यपृच्छत ॥ २ ॥
॥९९॥ हुताशनशिखेव त्वं, ज्वलमाना स्वतेजसा ॥
सुता ताराधिपस्येव, प्रभया दिव मागता ॥ ३ ॥
॥१००॥ भास्वराणिच वस्त्राणि, धारयंती गतक्लमा ॥
विमानस्था शुभा भासि, सहस्रगुण मोजसा ॥ ४ ॥

(२०) इस संवाद के श्लोक नंबर ११ व १८ का भाव पीछे नोट नंबर १२ में लिख दिया है कि यदि पति किसी के साथ एकांत में हो वो पतिव्रता स्त्री कदापि वहां न जाय–जाना तो दूर किंतु उसके इस प्रकार के किसी एकांत वा उसकी किसी गुप्त बात का भेद तक दूसरे स्त्री वा पुरुषों से कहना भी महापाप और महाअनर्थ है—अतः जो स्त्री तनक भी बुद्धि रखती हो वह अपना और अपने पति आदि का हित विचार इस महादुष्ट कृत्य से अवश्य सदा बचती रहे ऐसा शांडिली देवी बल्कि साक्षात् नारायण जता रहे हैं ॥

॥ १०१ ॥ नत्व मल्पेन तपसा, दानेन नियमेन वा ॥
इमं लोक मनुप्राप्ता, त्वं हि तत्वं वदस्वमे ॥ ५ ॥
॥ १०२ ॥ इति पृष्टा सुमनया, मधुरंचारुहासिनी ॥
शांडिली निभृतं वाक्यं, सुमना मिद मब्रवीत् ॥ ६ ॥
॥ १०३ ॥ नाहं काषायवसना, नापि वल्कलधारिणी ॥
नच मुंडाच जटिला, भूत्वा देवत्व मागता ॥ ७ ॥
१०४ ॥ अहितानिच वाक्यानि, सर्वाणि परुषाणिचं ॥
अपि प्रमत्ता भर्तारं, कदाचिन्नाह मब्रुवं ॥ ८ ॥
॥ १०५ ॥ देवानांच पितॄणांच, ब्राह्मणानांच पूजने ॥
अप्रमत्ता * सदा युक्ता, श्वश्रूश्वशुरवर्तिनी ॥ ९ ॥
॥ १०६ ॥ पैशून्ये न प्रवर्तामि, न ममैत न्मनोगतं ॥
अहं द्वारि न तिष्ठामि, चिरं न कथयामिच ॥ १० ॥

* यहां इस अप्रमत्ता शब्द से संपूर्ण बहू बेटियों को सख्त ताकीद यह जानना चाहिये कि वे कभी किसी मद से मतवारी वा घमंडिन अपने कामों में न देखीं जांय क्योंकि बहुधा ऐसा देखा जाता है कि कोई स्त्रियें ससुरे में जाकर पति की उत्तमता वा ऐश्वर्य वा उसके लाड़ प्यार में आकर आपे में नहीं रहतीं और कोई अपने माता पिता आदि की करतूत अर्थात् उन के लाड़ प्यार और दिये हुए दहेज के मारे ससुरे वालों को जन्मभर कुछ चीज़ नहीं समझतीं और अनेक ऐसी देखी जातीं हैं कि वे अपने रूप, लावण्य और तारुण्य के मद में भूलकर अपने लिये अनेक प्रकार से सुखों की जगह दुःखों के पहाड़ खड़े कर लेतीं हैं, ऐसा कदापि कुछ न हो इति ॥

॥१०७॥ असद्वा हसितं किंचि, दहितं वापि कर्मणा ॥
रहस्य मरहस्यं वा, न प्रवर्तामि सर्वथा ॥ ११ ॥
॥१०८॥ कार्यार्थे निर्गतं चापि, भर्तारं गृह मागतं ॥
आसने नोपसंयोज्य, पूजयामि समाहिता ॥ १२ ॥
॥१०९॥ यदन्नं नाभिजानाति, यद्भोज्यं नाभिनंदति ॥
भक्ष्यं वा यदिवा लेह्यं, तत्सर्वं वर्जयाम्यहं ॥ १३ ॥
॥११०॥ कुटुंबार्थे समानीतं, यत्किंचि त्कार्यमेवच ॥
प्रात रुत्थाय तत्सर्वं, कारयामि करोमिच ॥ १४ ॥
॥१११॥ प्रवासं यदि मे याति, भर्ता कार्येण केनचित् ॥
मंगलै र्बहुभि र्युक्ता, भवामि नियता तदा ॥ १५ ॥
॥ ११२ ॥ अंजनं रोचनां चैव, स्नानं माल्यानुलेपनं ॥
प्रसाधनं च निष्क्रांते, नाभिनंदामि भर्तरि ॥ १६ ॥
॥ ११३ ॥ नोत्थापयामि भर्तारं, सुखसुप्त महं सदा ॥
अंतरेष्वपि कार्येषु, तेन तुष्यति मे मनः ॥ १७ ॥
॥ ११४ ॥ ना यासयामि भर्तारं, कुटुंबार्थेपि सर्वदा ॥
गुप्तगुह्या सदा चास्मि, सुसंमृष्टनिवेशना ॥ १८ ॥
॥ ११५ ॥ इमं धर्मपथं नारी, पालयंती समाहिता ॥
अरुंधतीव नारीणां, स्वर्गलोके महीयते ॥ १९ ॥

॥ इति लक्ष्मीनारायण संवादः समाप्तः ॥

॥ अथउमामहेश्वरसंवादः ॥

॥ महादेवउवाच ॥

॥११६॥ तव सर्वः सुविदितः, स्त्रीधर्मःशाश्वतःशुभे ॥
तस्मा दशेषतो ब्रूहि, स्वधर्मं विस्तरेण मे ॥ १ ॥

॥ पार्वत्युवाच ॥

॥११७॥ स्त्रीधर्मो मांप्रति यथा, प्रतिभाति यथाविधि ॥
तमहं कीर्तयिष्यामि, तथैव प्रश्रितो भव ॥ २ ॥
॥११८॥ स्त्रीधर्मः पूर्व एवायं, विवाहे बंधुभिः कृतः ॥
सहधर्मचरी भर्तु, भवत्याग्नि समीपतः ॥ ३ ॥
॥ ११९ ॥ सुस्वभावा सुवचना, सुवृत्ता सुखदर्शना ॥
अनन्यचित्ता सुमुखी, भर्तुः सा धर्मचारिणी ॥ ४ ॥
॥१२०॥ सा भवे द्धर्मपरमा, सा भवे द्धर्मभागिनी ॥
देववत्सततं साध्वी, या भर्तारं प्रपश्यति ॥ ५ ॥
॥ १२१ ॥ शुश्रूषां परिचारं च, देववद्या करोतिच ॥
नान्यभावा ह्यविमनाः, सुव्रता सुखदर्शना ॥ ६ ॥

॥१२२॥ पुत्रवक्त्र मिवा भीक्ष्णं, भर्तु वेदन मीक्षते ॥
या साध्वी नियताहारा, सा भवे द्धर्मचारिणी ॥ ७ ॥
॥ १२३ ॥ श्रुत्वा दंपतिधर्मं वै, सहधर्मं कृतं शुभं ॥
या भवे द्धर्म परमा, नारी भर्तृसमावृता ॥ ८ ॥
॥१२४॥ वश्याभावेन सुमनाः, सुवृता सुखदर्शना
अनन्यचित्ता सुमुखी, भर्तुः सा धर्मचारिणी ॥ ९ ॥
॥ १२५ ॥परुषाण्यपि चोक्ता या,दृष्टा दुष्टेन चक्षुषा ॥
सुप्रसन्नमुखी भर्तु,र्या नारी सा पतिव्रता ॥ १० ॥
॥ १२६ ॥न चंद्रसूर्यौ न तरुं, पुंनाम्ना या निरीक्षते ॥
भर्तृवर्जं वरारोहा, सा भवे द्धर्मचारिणी । ११
॥ १२७ ॥ दरिद्रं व्याधितं दीन, मध्वना परिकर्षितं ॥
पतिं पुत्र मिवो पास्ते, सा नारी धर्मभागिनी ॥१२॥
॥१२८॥या नारी प्रयता दक्षा, या नारी पुत्रिणीभवेत् ॥
पति प्रिया पति प्राणा, सा नारी धर्मभागिनी ॥ १३ ॥
॥ १२९ ॥ शुश्रूषां परिचर्यां च, करोत्यविमनाः सदा ॥
सुप्रतीता विनीता च, सा नारी धर्मभागिनी ॥ १४॥
॥ १३० ॥ न कामेषु न भोगेषु, नैश्वर्ये न सुखे तथा ॥
स्पृहा यस्या स्तथा पत्यौ, सा नारी धर्मभागिनी॥१५॥
॥१३१॥ कल्पोत्थानरति र्नित्यं, गृहशुश्रूषणे रता ॥

सुसंमृष्टत्वया चैव, गोशकृत् कृतलेपना ॥ १६ ॥
॥१३२॥ अग्निकार्यपरा नित्यं, सदा पुण्य बलिप्रदा
देवता तिथि भृत्यानां, निर्वाप्य पतिना सह ॥ १७ ॥
॥ १३३ ॥ शेषान्न मुपभुंजाना, यथा न्यायं यथाविधि॥
तुष्टपुष्टजना नित्यं, नारी धर्मेण युज्यते ॥ १८ ॥
॥१३४॥ श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ, जोषयंती गुणान्विता॥
मातापितृपरा नित्यं, या नारी सा तपोधना॥ १९ ॥
१३५ ॥ब्राह्मणान् दुर्बलानाथां, दीनांधकृपणां स्तथा॥
बिभर्त्यन्नेन या नारी (२१) सा पतिव्रत भागिनी २०॥
॥ १३६ ॥ पुण्य मेत त्तपश्चैत, त्स्वर्ग श्चैष सनातनः॥
या नारी भर्तृपरमा, भवेद्भर्तृव्रता सती ॥ २१ ॥
॥ १३७ ॥ व्रतं चरति या नित्यं, दुश्चरं लघुसत्वया ॥
पतिचित्ता पतिहिता, सा पतिव्रत भागिनी ॥ २२॥

---

(२१) देखो श्लोक १९ से २० तक पार्वती जी स्पष्ट कहती हैं कि पति के सिवाय प्रति दिन अग्नि, अतिथि, सास, ससुर और माता पिता की सेवा करना परमावश्य है तथा अनाथ व दीनांध दुर्बल और अपने दास दासीगणों को भी राज़ी रखने के काम, पतिव्रता स्त्री सदा करती रहे—सचमुच हम ने बड़े २ घरानों तक की अनेक स्त्रियों को इसी चाल पर चलता देखा कि वे नौकरों से भी कभी अरी वा अरे कह कर नहीं पुकारतीं फिर इस के विरुद्ध चाल चलने वाली स्त्रियें क्यों सत्पुरुषों में दुष्टा व कुलटा न कहावेंगीं ! अत एव इस के श्लोक नंबर २१ व २१ व २५ व २६ के अर्थों पर भी ध्यान देना सर्वथा सब को उचित है ॥

॥ १३८ ॥ पतिर्हि देवो नारीणां, पति बंधुः पति गुरुः ॥
पत्या समा गति र्नास्ति, दैवतं वा यथा पतिः ॥ २३ ॥
१३९ ॥ पतिप्रसादः स्वर्गेण, तुल्यो नारी न भावयेत् ॥
अहं स्वर्गं नहीच्छेयं, त्वय्य प्रीते महेश्वरे ॥ २४ ॥
१४० ॥ यद्यकार्य मधर्मं वा, यदि वा प्राणनाशनं ॥
पति र्ब्रूया द्दरिद्रो वा, व्याधितो वा कथंचन ॥ २५ ॥
१४१ ॥ आपन्नो रिपुसंस्थो वा, ब्रह्मशापार्दितो पिवा ॥
आपद्धर्मा ननुप्रेक्ष्य, तत्कार्य मविशंकया ॥ २६ ॥
१४२ ॥ एष देव मया प्रोक्तः, स्त्रीधर्मो वचना त्तव ॥
या त्वेवं भाविनी नारी, सा पतिव्रत भागिनी ॥ २७ ॥

॥ इति उमामहेश्वर संवादः समाप्तः ॥

भा०—इन दोनों संवादों में से प्रथम संवाद का सार यह है कि देवलोक में तुरन्त आई हुई देवी शांडिली से सुमना देवी ने पूछा कि बहनी तूं किस तपोबल से ऐसी असीम तेजोरूप होकर यहां आई है कि जिस के सन्मुख मशाल तक का उजेला कुछ चीज़ नहीं ठहरता सब तरह तूं मुझे साक्षात् सूर्य कन्यासी जान पड़ती है—तब उस ने इस के उत्तर में कहा कि बहिनी इस का कारण मेरे कट्टर पतिव्रतापन के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है—इस के पीछे उस ने अपना संपूर्ण सविस्तर चलन समझा कर उस से कहा कि मैंने जन्म से मरण तक अपने सास ससुर वा पति से कभी कोई कठोर वा कटु शब्द नहीं कहा और न कभी मैंने उन का गुप्त भेद वा भला बुरा उन का कोई काम. किसी से कहना ठीक स-

मझा और न कभी मैं उन से ऐसे समय में उदास वा अप्रसन्न हुई जब कि उन्हो ने मेरी वा मेरे लड़कों की तबियत के अनुसार कोई काम कभी न किया हो अथवा घर में गिरस्ती के लिये अपेक्षित किसी महा ज़रूरी पदार्थ को उन्होंने मुझे न मंगवा दिया हो अथवा वे सकारण वा निष्कारण मुझ से वा मेरी संतान से वा मेरे माता पिता आदि से क्रुद्ध होकर चाहे जैसा भला बुरा कह बैठे हों अर्थात् ठीक वैवाहिक वेदमंत्रों में कहीं आज्ञाओं के अनुकूल सदा मैं अपने पति देव के साथ बर्ताव करती रही ॥

सारांश इस शांडिली ने हर अवस्था में हँसमुखी रहकर अपने उन उक्त तीनों पूज्य देवों की अचूक सेवा और अपने आश्रम संबंधी सब काम काज चलाने की अपनी सब परिपाटी, यहां ऐसी अति उत्तम दर्साई कि जिस को देख केवल मनुष्य ही नहीं किंतु साक्षात् नारायण भी अति प्रमुदित हो इस संवाद के अंत में कहते हैं कि, हे लक्ष्मी जी इस के समान चाल चलने वाली नारी, अरुंधती के समान सदा स्वर्ग में वास पाती है—बस वही सब परिपाटी हम इस पुस्तक के द्वारा वारंवार सब को समझा रहे हैं और इसी प्रकार दूसरे संवाद में कुछ अधिक विस्तार के साथ पार्वती जी ने महादेव जी को स्त्री धर्म सुना कर अंतमें स्पष्ट कहा है कि महाराज जी इस रीति जो नारी अपनी सब इच्छाओं को दूर छोड़कर अपने सास ससुर और पतिदेव की सेवा में तन, मन, धन से आरूढ़ होती है उसे उस के उस तपोबल से त्रिलोकी तक का राज्य मिलजाना कोई बड़ी बात नहीं है—मानों इसी प्रकार की पतिव्रताओं में से कोई एक स्त्री हमारी श्रीमती महारानी विक्टोरिया इस समय विद्यमान हैं ॥

॥ अथसतीचरित्रम् ॥

—— :※: ——

॥ १४३ ॥ व्यालग्राही यथा व्यालं, बला दुद्धरते बिलात् ॥ तद्वत् भर्तार मादाय, स्वर्गलोके महीयते ॥ १ ॥

॥ १४४ ॥ चितौ परिष्वज्य विचेतनं पतिं, प्रियाहि या मुंचति देह मात्मनः। कृत्वापि पापं शतसंख्य मप्यसौ, पतिं गृहीत्वा सुरलोक माप्नुयात् ॥ २ ॥

॥ १४५ ॥ तिस्रः कोट्योर्द्धकोटी च, यानि लोमानि मानवे ॥ तावत्कालं वसेत्स्वर्गे, भर्तार मनुगच्छति ॥ ३ ॥

भा०—समस्त ऋषि मुनि कहते हैं कि जैसे सांप का पकड़नेवाला सँपेरा मनुष्य, सांप को ज़बर्दस्ती के साथ उसके बिलसे निकाल लेजाता है उसी प्रकार जो स्त्री मृतपति के साथ सती होती है वह अपने उस मृतपति को उसके महाघोर पातकों से उद्धार करके सीधी स्वर्गलोक को लेजाती है॥

कदाचित् कोई कहे कि सती कैसे हुआ करती हैं सो उसकी ठीक २ विधि, यह है कि जिस स्त्री को अपने परमप्रिय पति के मरे पीछे अपना बाक़ी तमाम जीवन, और संसार के समस्त उपभोग, महा तुच्छ जान पड़ते हैं—वह देवी अपने परमप्रिय पतिदेव के मृतशरीर से लिपट कर अति आनंद के साथ जलने के लिये उसकी चिता पर लेट रहती है—इस परम

विस्मयप्रद स्वकार्य से वह सती हुई स्त्री अपने अनेक जन्मजन्मान्तरीय सब घोर पापों से मुक्त होकर सीधी पतिसहित सुरधाम को चली जाती है ॥

और जितने कि मनुष्य के शरीर में रोम होते हैं उतने समय तक अर्थात् साढ़े तीन किरोड़ वर्ष तक वह सती देवी स्वर्गीय अनुपम सुखों को उस पति सहित भोगती है ॥

ऐसा सती होने का बहुत सा माहात्म्य है, यद्यपि इन दिनों अपने इस देश में अंग्रेज़ी राज्य है और इन परधर्मियों ने सती होने की रीति, बड़ी ज़बर्दस्ती के साथ बिलकुल बंद भी कर रक्खी है तथापि कभी २ कहीं न कहीं अब भी यहां इस देश में यह कार्य, किसी न किसी तरह बहुधा होई जाता है ॥ २२ ॥ तभी तुरन्त वह ख़बर अख़बारों के द्वारा सर्वत्र

॥ २२ ॥ इसके दृष्टांत तो बहुत होंगे परंतु यहां हम नीचे केवल उन्हीं दृष्टांतों को लिखते हैं जिनको कि हमने इधर दस वर्ष के भीतर प्रत्यक्ष देखा वा सुना है ॥

(१) टीकाराम पाठक की स्त्री—साकिन् मोहल्ला बज़रिया शहर फ़र्रुख़ाबाद ॥

(२) मगनीराम देसराज की दूकान कानपुर के लखपतराय ब्राह्मण की बहू साकिन् शहर फ़र्रुख़ाबाद ॥

(३) पं॰ रामदयाल अध्यापक अनाथालय शहर फ़र्रुख़ाबाद की स्त्री साकिन् कनौज ज़िला फ़र्रुख़ाबाद ॥

(४) ठाकुर डालसिंह नंबरदार की ठकुराइन—साकिन् ग्राम सुखचैनपुर तहसील तिर्वा ज़िला फ़र्रुख़ाबाद ॥

(५) पं॰ मथुराप्रसाद पाठक की माता साकिन् कंपिल ज़िला फ़र्रुख़ाबाद ॥

(६) इनके सिवाय जो कथा, इधर १० वर्ष के भीतर अख़बारों के द्वारा सर्वत्र विख्यात हो चुकी हैं उनकी संख्या, नहीं होसकी, अतः उन सब को छोड़ कर हाल की एक ताज़ी कथा, यहां पर और थोड़ी

फैलजाती है ऐसा बहुवार देखने में आचुका है और ५० वर्ष पूर्व तो हमने स्वनेत्रों से ऐसे कई प्रसंग, देशीय राजाओं के राज्यों में हुए देखे व सुने हैं—उस समय शहर से लेकर श्मशान भूमि तक मेला लग जाता था उन दिनों के सदृश कभी कहीं धूम धाम और गुलशोर हमारे देखने में नहीं आया बहुत दिनों तक उन सती देवियों के सुचरित्रों की जहां तहां वाह वाह और धन्यवाद के साथ चरचा होती रही और आए गए मनुष्यों के मुख वे सब खबरें नगरांतरों में पहुंचती रहीं कारण कि अब ऐसे डांक खाने और अखबार तब कहीं प्रचरित नहीं थे ॥

जिस जाति वा कुल वा घर की कोई स्त्री सती होती थी उसकी निरंतर के लिये प्रतिष्ठा होने लग जाती थी उन २ कुलों में अब तक उन सती के नाम से वर्ष में एक दो बार पूजा स्त्रियें करती हैं और अपने हर बड़े मंगल कार्य में पूजन के सिवाय उन सती के नाम से बहुत सी सुहागिन स्त्रियों को बहुत सा वस्त्रालंकार और बहुत से सुहाग के पदार्थ देकर मंगल के गीत गाए जाते हैं—इसके अनंतर उन घरों में प्रधान मंगल कार्य संबंधी इतर कामों में लग्गा लगता है ॥

सी लिखे देते हैं—वह इस प्रकार की है कि पंजाबके मुल्क में ज़िला होशियार पुर में हाजीपुर नामी क़स्बा के रहने वाले रामलोक नामी ब्राह्मणके मरे और जला दिये पीछे तुरंत उसकी सुभद्रा नामी पतिव्रता स्त्री, स्वगृह से पाखाने के बहाने निकल कर अपने पति की जलती हुई चिता में चुपका जा कूंदी और मरगई जिसे इसका विस्तार देखना हो वह माह अक्तूबर सन् हालका स्त्रीहितकारीनामी मासिक पुस्तक आगरेसे मगाकर तुरंत देखलेवे ॥

(७) इसी प्रकार कई वर्ष प्रथम की बात है कि मथुरामें एक मथुरनी अपना सब श्रृंगार करके पति की लाश, उठतेही धड़म कोठेपर से सड़क पर जाकूंदी और उसी दम अपने प्रिय के साथ वह जलाई गई—ऐसी अनेक कथाएं हैं अभी इसी माह दिसंबर सन ९४ के भारतमित्रादि अखबारों को देखो कि पूर्वीरेल पर के किसी एक स्टेशन माष्टर के मरतेही उसकी प्रेमवती स्त्रीने तुरंत अपने प्राण छोड़ दिये, आदि वृत्तांत कैसा सविस्तर लिख संपादकों ने अपना संतोष प्रकाशित किया है इति ॥

इस देश में कोई पुराना फुट्टा गांव तक ऐसा न होगा जहां की आबादी से बाहिर एक दो दिशाओं में इन सती देवी की छोटी वा बड़ी यादगारें न बनी हों वा वे अब तक न पूजी जा रही हों—ऐसी सैकड़ों बल्कि हजारों साल तक की पुरानी अपमित यादगारों से हमारे इस भरतखंड की चारो सीमा सुशोभित होरहीं हैं—उनको हे स्त्रियो तुम देखो और समझो कि अपने शास्त्रकारों ने सदा सर्वत्र जो पति माहात्म्य लिखा है वह कितना सत्य है अन्यथा लाखों स्त्रियें क्यों ऐसा विचित्र साहस करतीं।

सत्य तो यह है कि उनकी वे मढीं मठ और बड़े २ आलीशान मंदिर आदि स्मारक स्थान, आज दिन इस भारतभूमि के बड़े बेश कीमती अलंकार हैं—मानो वे अपने सन्मुख बड़े २ राजा महाराजाओं के विजयस्तम्भों की शोभा को अति तिरस्कृत कर रहे हैं—अर्थात् स्पष्ट कहते हैं कि अरे तुम सबलों के कृत्यों की तारीफ़ ही क्या है, हद कहो उन कृत्यों को, जो हम अबला कहा कर कुछ ऐसा विचित्र चमत्कार धरती पर कर जांय—सच पूछो तो हमारी ये स्त्रियें भाई मरीं नहीं किन्तु वे, अपने इसी परम अलौकिक सत्कृत्य से स्वयं अमर होकर अपने शास्त्रों में लिखे लेखों की एक जुदे तौर पर सबको सचाई दर्सा रही हैं—इतने पर भी जिन स्त्रियों अथवा बहू बेटियों की आंखें न खुलें अर्थात् वे अपने २ पतिदेव की महिमा न समझें अथवा सुन समझ करके भी भूलें तो वे मानुषी नहीं किंतु साफ़ २ गर्धभी वा शुनी वा शूकरी नाम धारण करने वाली हैं सम्पूर्ण स्त्रियों को ऐसा अच्छी तरह जानना व मानना चाहिये कि संसार में मनुष्ययोनि का मिलना महा कठिन और महा दुर्लभ है इसलिये उसे पाकर उसकी सार्थकता करना बहुत आवश्यक है—सो तभी होती है जब कि अपने २ धर्मानुसार वे चलते हैं, ।

हमारे इस सतीचरित्र पर अंग्रेज़ों के महाखुशामदी, स्वदेश के पूर्णशत्रु, काशीनिवासी राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने संस्कृतज्ञान की शून्यता के कारण, 'अपने तृतीय तिमिरनाशक उर्फ बुद्धिविनाशक आदि नाम की कपोल कल्पित क्षुल्लक पुस्तकों में अंग्रेज़ों की भांति जी में आया वैसा बहुत कुछ अंड बंड लिख मारा है, सो किसी तरह विश्वास के योग्य न-

हीं—ऐसा हम अपने तिमिरनाशक तृतीयखंडसार नामक लघु ग्रन्थ में १२ वर्ष पूर्व सविस्तर दर्सा चुके हैं—उसे सब विद्वज्जन, अच्छी तरह जानते हैं परंतु आँगे पीछे फिरभी कभी कोई स्त्री पुरुष, हमारे इस लेख पर इस परम प्रशंस्य सतीकृत्य को निराधार वा जबरन् भारतवासी कराते रहे ऐसा भूल कर के भी न समझें—किंतु ऐसा समझना बहुत ठीक है कि यह धर्मकृत्य हमारे यहां सदैव से सती होनेवाली स्त्री की पूर्ण इच्छा के अनुकूल ही होता रहा है उस में अंग्रेज़ों नें बाधा डाल रक्खी है-इसका हम भरतखंड निवासी सब मनुष्यों को बड़ा भारी खेद अब तक है और वह चिरकाल तक रहेगा, ऐसा प्रचरित अख़बारों से बराबर सिद्ध होता चला आता है अस्तु ॥

अब आँगे कोई ऐसी भी शंका न करे कि कोई भूंखीं टूटी वा अंधी लंगड़ी वा असह्य रोग ग्रसित अथवा कोई ऐसी स्त्री कि जिस के कोई आँगे नामलेवा वा पानीदेवा नहीं रहा वह बदर्जे लाचारी पति के साथ अपने प्राण होम देना ही अच्छा समझ लेती होगी—सो इस प्रकार की कभी कोई विपत्ति कर्शिता स्त्री सती नहीं हुई और न हुआ करती थी किंतु इस परम श्लाघ्य सूचीपत्र में बड़े २ रंजे पुजे परम सुप्रसिद्ध, घरानों की विदुषी और हमारी रानी महारानियों तक के नाम, मानों सुवर्णाक्षरों से अमिट लिख गए हैं ॥

पंजाब के जगत् विख्यात, नरकेसरी, महाराजा रणजीतसिंह तो मानों कल ही मरे हैं उन की एक रानी चन्दा वा झींदा को छोड़ कर बाकी चार रानियां जिनमें से दो की उम्र केवल १६ ही १६ बरस कीथी २७ जून सन् १८३९ ई० में और इस के थोड़े ही दिन पीछे उन के दीवान (वज़ीर) राजा ध्यानासिंह की १३ रानियां ब मुकाम लाहौर जिस महोत्साह, जिस ख़ुशी, जिस बश्शाशी, जिस ख़ूबी और बहादुरी के साथ सती, हुई हैं—वह उन का महा हर्षशोकप्रद सर्व इतिहास देखने के योग्य है—और इन से किरोड़ों दर्जा बढ़कर था प्रताप, और ऐश्वर्य जिन का—ऐसे संपूर्ण भरतखंड भर के महा तेजस्वी अधिपति, अर्थात् पूना के श्री महाराजाधिराज श्रीमंत बड़े माधवराव साहिब बहादुर पेश-

वा की पटरानी श्रीमती रमाबाई साहिबा का सती चरित्र जो सर्वत्र भू- मंडल पर सूर्यवत् प्रकाशमान है ॥

१८ नवंबर सन् १७७२ ई० के दिन इन पतिप्राणा, महा विदुषी, महा प्रवीणा, महेंद्राणी ने अपने प्राणप्रिय प्राणवल्लभ के साथ गमन किया मानों पूर्णचंद्र के साथ ही साथ उस की चांदनीभी अस्ताचल को चल बसी, सो यह सब इन की महा पवित्र कथा दक्षिण देश की बहुत सी पुस्तकों में लिखी है जिस को देखकर मनुष्य मात्र के रोमांच खड़े हो जाते हैं—हज़ारों अमीर व हज़ारों सर्दार आदि नातेदार और उनकी स्त्रियें तथा बहू बेटे, लाखों ही प्रकार से ऊपर लिखीं सब रानियों को हाथ जोड़ २ कर समयानुसार समझाते और उन के ऐश्वर्य व नाती पोतोंकी मुहब्बत भी दिलाते रहे परन्तु उन के चित्त से तिलभर भी पतिप्रेम न- हीं हटा अर्थात् उन्होंने सब से बढ़ कर मौल्यवान् स्वधर्म को ही समझा और वे जगत् भर की स्त्रियों को अपने इस अनुपम उदाहरण से अच्छी तरह दिखला गईं कि स्त्री जाति के लिये पतिसेवा के सिवाय अन्य को- ई बढ़ कर सुख, वा ऐश्वर्य, इस धरती पर नहीं है—कहो इस से अधि- क वा अधिकतर उदाहरण इस सतीचरित्र पर और क्या हो सक्ता है? इतने पर भी जिन बहू बेटियों के हृदय में पतिव्रत और पतिसेवा का प्रेमांकुर न जमे और वें अपना महा घिनोना दुष्ट स्वभाव, न त्यागें तो क्योंकर वे ऊपर लिखे अनुसार महा घोर नरक यातना न भोगें?

सत्य मानो और सत्य ही समझो और अवश्य उसी के अनुकूल च- लना हे बहू बेटियो, उचित समझो जिस से कि तुम्हारे जन्म जन्मांतर सुधरें और सती साध्वी और पतिव्रता आदि सर्वोत्तम अमिट पदवियां तुम को प्राप्त हों, परन्तु खूब समझ लो कि उन का मिलना उस समय तक अति असंभव है जब तक कि तुम अपने उस दुष्ट स्वभाव को नत्या- गोगी जिस को कि माता के पेट से लेकर उपजीं हो, और वह तब ब- दलता है जब कि सुंदरी स्त्री वा सज्जन पुरुषोंका समागम वा सर्वोत्तम पुस्त- कों का निरंतर अवलोकन बहू बेटियां करती हैं—सो यह सब ऊपर बहुत विस्तार पूर्वक लिख चुके और यहां फिर तुमको उसका स्मरणदिला दिया है॥

सारांश स्त्री मात्र को अच्छी तरह जानना चाहिये कि जैसे सुनार के हाथ पड़ा सोना उस की वारंवार की दी हुई आंच और ताड़ना सहन करके बेशकीमती व जगत् प्रशंस्य अलंकार वा कुंदन बन जाता है उसी प्रकार अपने परम श्रेष्ठ पति की ताड़ना और उस की क्रोधरूपी आंचों को निरंतर सहन करने से ही स्त्री की जाति, पतिव्रता बनती है—हद तो यह है कि जिन्हों ने जन्म भर इस आंच को चूं चपड़ छोड़ कर आनन्द के साथ सहन किया उन को पृथ्वी भर की यह भौतिकाग्नि (जिसको कि मनुष्य मात्र छूने से डरता है और सचमुच वह संपूर्ण जगत् को जला देने का पूर्ण सामर्थ्य भी रखती है) चंदनवत् शीतल हो जाती है अतएव हमारे यहां की बहुत सी पतिव्रता स्त्रियें बेधड़क, और बे खौफ, हो कर महा आनन्द के साथ पति की दहकती हुई चिता में धसकर भस्म हो जाती थीं अन्यथा उस जलती हुई होलीरूप चिता में धसना वा बैठना वा लेटना महा असंभव है ॥

ऐसे किरोड़ों दृष्टांत, प्रत्यक्ष जिनके सन्मुख इस देश में मौजूद हों उस देश की स्त्रियें यदि उलटा अपने पति का वारंवार बल्कि घड़ी २ सामना और अपमान करके खुद निर्दोष, और निरपराध, बना चाहें तो उन दुष्टाओं का कैसे कल्याण हो—भला बतावें तो सही कि कहीं सोना. सुनार. को सुधार सक्ता है ? यदि कहें कि नहीं—तो बस उसीतरह का ज्ञान, अपने विषय में भी रक्खें कि हमको पति के किसी काम में ओंठ हिलाने तक का अधिकार नहीं—तथापि अबतक जितना हम व्यर्थ का जो मुंह चलाती रहीं वे सब, सरासर हमारे महा अपराध हैं—इसके आंगे परमात्मा ऐसी चूकें, हमारे हाथ से कभी न करावे जैसी कि हम अपनी कुमतिवश अब तक कर चुकी हैं ॥

फिर अपने दोनों हाथों अपने कान पकड़ें और कौशल्या देवी के समान गिड़ गिड़ाकर पति के चरणकमलों में अपना सिर धरदें और वारंवार हाथ जोड़ कर बहुतसी मिन्नत, खुशामद, और बिनती व आर्जू के साथ अपने परमपूज्य पतिदेव से अपने सब कृत दोषों की अच्छीतरह क्षमा मागें और यह काम बराबर उस दिन तक करती रहें जौलों कि.

पति का क्रोध शांत न हो वा वह माफ़ न करदे, और फिर इसके पीछे कभी कोई काम ऐसा न किया जाय जिससे कि उसका चित्त फिर बिगड़ जाय।

हम ऊपर एक ठौर लिख चुके और आंगे भी यह विशेष कथा तुमको देख मिलेगी कि श्री कौशल्याजी महारानी अपने पति महराजा दशरथ से अपने संपूर्ण जन्मभर में केवल १ बार तनक और तरह पर बोल बैठीं थीं उस समय महाराजा दशरथ को बड़ा खेद हुआ, उस दशा में उन्हों ने ऊपर लिखे "दुःशीलः कामवृत्तो वा,, इत्यादि बहुत से श्लोक सुनाकर उनको चिताया कि हे रानी हज़ारों दोषों से भरे महा ग़रीब पति से भी कभी कोई उसकी स्त्री ऐसा नहीं बोल सक्ती जैसा कि आज तुम, मुझ से बोल बैठीं हो, इतना सुनते ही कौशल्या जी के हृदयस्थ कपाट खुल गए—इसके अनंतर देखो कितनी वे पस्तानीं और कितनी आधीनी व नम्रता के साथ उनको वह अपना अपराध, माफ़ कराने पड़ा ॥

परंतु हा शोक कि इन दिनों की हमारीं कुलटा स्त्रियें जन्मभर अपनी सास और पति का कलेजा छेद २ कर चलनी कर दिये पीछे भी कभी एक बार को भी नहीं पस्तातीं—खुद समझना तो दूर उनको दूसरे लोग हज़ारों बार समझावें और उनके दिये घावों से घायल होकर पड़ा पति हाय २ करता भी वे देखें तो भी वे नष्टा, अपने चांडालिन सम कृष्णमुख को निर्मलचंद्रिकाविशद ही सदा समझती रहती हैं कहो इनकी क्या २ कुगति न होगी—फिर भी विश्वास न हो तो देखो आंगे टीप में लिखे वसिष्ठ जी महाराज के महा भयंकर वचनों को, और "सा नारी नरकं व्रजेत्,, इत्यादि वाक्यों से अच्छी तरह यह भी स्मरण रक्खो कि जिस पति के शुभ सेवन से साढ़े तीन किरोड़ बरसों तक स्त्री की जाति, स्वर्गीय अनुपम व अतुल सुखों को भोग सक्ती है उसको दुखित करने से उससे बहुत अधिक काल तक ज़रूर उसको बारं बार शूकरी आदि की महा भ्रष्ट योनि भोगने पड़ती है ॥

ऐसा पक्का निश्चय श्री कौशल्याजी महारानी को था तब वे इतनी अपने तनक से अपराध से घबड़ाकर गिड़गिड़ाई और तब शांत हुई जब

कि उनको माफ़ी मिलगई—इसका नाम पतिव्रतधर्म है—उसका साधना कैसाही कठिन क्यों न हो तथापि अपना हित सोच सब स्त्रियों को अवश्य ही वह साधना सर्वथा उचित है सो तभी सधता है जब उसके माहात्म्य पर स्त्री जाति की पूर्ण नज़र पहुंचती है ॥

देखो चारो तरफ़ ख़ूब नज़र फैलाकर कि होली के मुआफ़िक जलरही अनाप सनाप अग्नि को पानी और चंदन की भांति शीतल कर देनेवाला सिवाय तुम्हारे पतिव्रत धर्म के क्या और भी कोई धर्म इस संसार में है—बड़े २ साधु और तपस्वी पुरुष, तुम्हारे इस महा ज़बर्दस्त धर्म को देख थर्रा उठते हैं क्योंकि वे बेचारे बाहर से ही धूनी रमाने की सामर्थ्य रखते हैं परंतु धन्यातिधन्य है वह सती स्त्री, जो उस महा प्रचंडाग्नि के भीतर घस कर कभी आह. ऊह. तक करती आज तक न सुनी गई—ऐसा महा ज़बर्दस्त है प्रताप और प्रभाव जिसका, उसपरमपुनीतपतिव्रत धर्म को, हे स्त्रियो, तुम कभी मतभूलो—उसके साधन की अति सेहल क्रिया यही एक है कि तुम अपने पति की पड़छांई बन जाओ और सोचो कि छाया का मुख्य धर्म क्या है ? तब जानोगी कि वह सदा चुप चाप रहकर अपना सब काम वैसाही करती है जैसाकि छायावान् पुरुष आदि करता है—बस इसी प्रकार तुम भी अपना सब काम काज चुप चाप करने लग जाओ और देखो कि फिर कैसा अनुपम सुख और आनंद तुमको इसी लोक में प्राप्त होता है ॥

अस्तु अब इस पतिव्रत के प्रभाव पर एक और ऐसा महा अद्भुत दृष्टांत नीचे लिखकर इस विषय को समाप्त करते हैं—जिससे जान पड़ेगा कि पतिव्रता के सन्मुख सच मुच यह अग्नि चंदन का गुण धारण कर लेती है—आशा है कि उसको देख स्त्रीमात्र का पतिव्रतधर्म पर अधिक विश्वास व निश्चय जम जावेगा ॥

अहा कितना सर्वोत्तम यह दृष्टांत है कि जिसे देख हमको प्रल्हाद चरित्र का आज वह सर्वोत्तम श्लोक, यहां पर याद हो आया है जिसको कि हम एक भारी मुद्दत से भूले हुए थे अतः प्रथम उसीको यहां पर हम सुनाते हैं देखो कैसी ठीक २ विद उसकी इस उक्त दृष्टांत में मिलती है ॥

॥ १४६ ॥ जगदीशनिदेश मंतरा, दहनो नैव दहेत् किंचन—यदि तव भवेत् स्वतंत्रता, हृदयस्थो न दहेत् किं वपुः ॥ १ ॥ इस का अर्थ यह है कि जगदीश्वर की आज्ञा के विना अग्नि भी कुछ नहीं जला सक्ती यदि उस में स्वतंत्रता है तो वह सब के हृदयों में विद्यमान रहते क्यों उन के शरीरों को जलाकर भस्म नहीं कर देती ?

जब कि वैसा हम नहीं देखते तब सिद्ध है कि वह केवल उसी पदार्थ के जलाने की शक्ति रखती है जिस की कि आज्ञा उसे होती है अन्य को नहीं ॥

॥ पतिव्रतप्रभाव ॥

॥ १४७ ॥ पुत्रं पतंतं प्रसमीक्ष्य पावके, न बोधयामास पतिं पतिव्रता ॥ तदा भव त्तत्पतिधर्मगौरवात्, हुताशन श्चंदन पंक शीतलः ॥ १ ॥

भा०—हे स्त्रियो यह एक महा अद्भुत कथा इस प्रकार की है कि सोमदत्त नामक ब्राह्मण, रिपुंजय नामक राजा का यज्ञ समाप्त हुए पीछे जब लौट कर अपने घर आया तब उस की सुशीला नामक धर्मपत्नी ने दौड़ कर यथाविधि उस का पूजन करके उसको एक सुंदर मृदु आस्तरण बैठने को दिया और वहीं उस के समीपभाग में आप स्थित होकर पंखा डुलाने लगी, दो चार इधर उधर की वार्ता कहे पीछे सोमदत्त ने कहा कि प्यारी हम कई दिन के जगे हुए हैं और सिवाय इस के मार्ग का भी कुछ श्रम इस समय हमें सता रहा है कहो तो तनक लेट जांय, ऐसा कहकर

वहीं अपनी पतिव्रता स्त्री की जंघा पर सिर धर कर वह लेट गया पंखा चल ही रहा था उस की शीतल हवा लगते ही वह तुरंत सो गया ॥

उस समय उस का एक डेढ़ेक वर्ष का बालक अपनी माता के समीप खेल रहा था वह थोड़ी देर पीछे वहां से खेलता २ जिधर अग्निकुंड था उधर को बढ़ गया और देखते ही देखते वह धड़म उस अग्निकुंड में जा गिरा—यह सब चरित्र बड़े धीरज के साथ उसकी माता बैठे ठौर से देखती व हाथ व नेत्रों के इशारों से उसे उधर न जाने के लिये रोकती भी रही, परंतु होनहार बलवत्तर इस कारण वह बालक न रुका बल्कि विशेष कौतुक के साथ हंसता और हूं हां करता हुआ क्षणमात्र में नाहीं सा होगया, परंतु धन्य कहो उस पतिव्रता के धीरज को कि उस महा दारुण विपत्ति और असह्य दुःख और शोक की अवस्था में भी उस का चित्त तनक भी चंचल वा चलायमान न हुआ अर्थात् न वह दौड़ी न चिल्लाई न रोई और न कोई अन्य ऐसी चेष्टा उस ने की कि जिस से उस की घबराहट जान पड़ती अर्थात् ज्यों की त्यों वे खटका और वे गम अपने पति का सिर गोद में धरे उसे पवन करती रही कहो इस हालत में इन दिनों की स्त्री कैसी हाय तोबा मचा देती ! परन्तु सुशीला तो पूर्ण पतिव्रता थी अतः उस का संपूर्ण ध्यान पति को आनंदित रखने में था यदि तनक भी वह उस समय चलाय मान हो जाती तो उस का वह सब बहुमोल्य व परम प्रशंस्य पतिव्रतधर्म, उसी क्षण नष्ट होजाता—इस डर से उस ने कोई चेष्टा ऐसी उस समय न की कि जिस से उस के प्राणप्रिय की नींद उचक जाती। *

* देखो लक्ष्मीनारायण संवाद में का १७ वां श्लोक कि जिस में स्पष्ट लिखा है कि सुख से सोते हुए पति को कभी जगाना न चाहिये ॥

इस विषय में ऐसी ही एक कथा सीता जी के पतिव्रतापन की इस प्रकार प्रसिद्ध है कि किसी वन में मध्यान्ह के समय सीता जी की जंघा पर सिर धरकर रामचंद्र जी सो गए थे उस काले उनके आरक्त पांय के महा मृदु अंगूठे को किसी फल की भ्रांति से एक कौआ वारंवार नोच-

अंत को कोई सवा डेढ़ पहर पीछे अपने आप पति को जब चेत हुआ तो वह क्या देखता है कि अपनी वह धर्मपत्नी उसी प्रकार अति आनन्द के साथ बैठी पंखा डुला रही है और उसी प्रकार परमप्रमोद-

ता खाता रहा, परंतु रामचंद्र जी की नींद कहीं न उचक जाय, इस विचार से सीता जी ने चूं नहीं की और न वे चलविचल हुईं और न वे थोड़ी ही दूरी पर आड़ में बैठेहुए लक्ष्मण जी तक को बुला सकीं— इसका नाम पतिव्रत और पतिव्रतापन है—न यह कि मीठा २ हप्प और कडुआ २ थू ॥

परंतु महा हँसी की बात यह है कि फिर भी हमारे यहां की स्वार्थिनें नहीं लजातीं, लजाना तो दूर वे उलटी अपने मुखारविंद पर नौ गज़ लंबी नाक लगाकर पति के सन्मुख सुधिष्णा (महा बुद्धिमती व सच्ची पतिव्रता स्त्री) की जिज्जी अर्थात् बड़ी बहन बनने को सदा तैयार रहती हैं—शरम—शरम—शरम ॥

इस प्रकार की महा मस्त, महा मदांध, महा उन्मत्त, महा गमार, महा अंधी, महा नीचप्रकृति, महा मतवारी, महा कठोरचित्ता, महा दुष्टा, महा कृतघ्नी, महा पापिन, महा ऐबिन, महा कुलटा, महा नष्टा, महा भ्रष्टा व कुलघ्नी, तमाम स्त्रियों को खूब सोचना व बताना चाहिये कि जिस पति की तनकसी नींद उचका देने में स्त्रीजाति को अपना सर्वस्व नाश होजाने का ऐसा डर रहा उस पति के सर्व सुखों का आठो पहर नाश करनेवाली कलहाओं की क्या २ हालतें अंत में जाकर न होंगीं ?

खूब सोचो और खूब समझो कि जिन रानी महारानी आदि पतिव्रता स्त्रियों का वर्णन यहां तुमको लिख सुनाया है वे कोई सिड़िन वा पगली वा नादानवा ना समझ, नहीं थीं- इतने पर भी जो अभागिनें होश में न आवें वे भलेंई ८४ लाख नरकों की अच्छीतरह सैर करें क्योंकि ऐसी चांडालिनों को तो साक्षात् ब्रह्मा भी नहीं समझा सक्के अर्थात् हमारी तो आशा केवल उन्हीं भली आदमिनों से है जिनकी तारीफ़ में शास्त्रकारों ने "बुद्धिस्तासां चतुर्गुणा" लिखा है ॥

बल्कि उसका चेहरा भी कमल की भांति प्रफुल्लित है—पति के उठते ही सुंदर व स्वच्छ पात्र में जल लाकर उसने उपस्थित किया—जब हाथ मुंह धोकर पति का चित्त अच्छीतरह सावधान हुआ तब उसने हंसकर सुशीला से पुत्र की खबर पूंछी—उस समय दूसरी स्त्री अवश्य ही डिडकार मार कर रोने लग जाती परंतु सुशीला फिर भी अपना धीरज ज्यौं का त्यौं बनाएं रही—केवल दबी ज़ुबान से क्या कहूं इतना मुख से निकाल कर वह चुप होगई, जब दो तीन वार पति ने पूंछा तब गुज़रा हुआ सब वृत्तांत उस बेचारी को कहना पड़ा—उसे सुनते ही हाय चांडालिन यह तूं क्या कर बैठी—ऐसा कहकर सोमदत्त अतिसत्वर होमकुंड की तरफ़ दौड़ा, साथ ही उसके यह सुशीला भी अब पीछे २ वहां गई तो वे दोनों स्त्री पुरुष वहां पहुंचकर क्या देखते हैं कि उस दहकते हुए लक्कड़ और कोयला की आगी में पड़ा हुआ वह बालक ऐसा किलोलें कर रहा है जैसा कि शीतल चंदन की कीच में पड़ा हुआ कोई बालक करे ॥

तुरंत पिता ने उठाकर उसे गले से लगाया और कई वार उसका मुखचुंबन कर उसे अपनी प्रिया को दिया और कहा कि प्यारी यह सब तुम्हारे पतिवृत का प्रभाव है इसे लो और जगदीश्वर का अच्छीतरह धन्यवाद करो यह सुन सुशीला पुत्र सहित पति के चरणों में गिर पड़ी और गद्गद् स्वर से बोली कि स्वामिन् यह सब प्रभाव, केवल इन्हीं चरणों का है—उस समय उसके नेत्रों से आनंद की अटूट अश्रुधारा बहने लगीं मुख से अक्षर नहीं निकलता था परंतु मन ही मन वह अनेक प्रकार से परमेश्वर का धन्यवाद करती नहीं अघाती थी, कभी कहे कि हाय कैसी वे स्त्रियें इस संसार में हैं जो इस महाअनुपम पतिव्रतधर्म पर ध्यान नहीं देतीं, कभी कहे कि हाय मुझे तो आज इस पुत्र के जीते पाने की कुछ भी आशा शेष नहीं रही थी परन्तु कहां तक करूं धन्यवाद उस करुणावरुणालय का, जिसने कि मेरा मुख इसप्रकार उजला किया, नहीं तो न मालूम कि आज मुझे आस पास की स्त्रियों के मुख क्या २ न सुनना पड़ता ॥

ऐसा विचित्र सोच विचार वे परम विस्मित दोनों स्त्री पुरुष, आपस में कर रहे थे और उन के हृदय में अतिअतर्क्य विस्मय और असीम आ-

नन्द हो रहा था कि इतने में सैकड़ों स्त्री पुरुषों की भीड़ वहां जमा हो गई सब के सब बड़े प्रेम और आश्चर्य के साथ उस भोले बालक को हृदय से चिपटाते थे और पूंछते थे कि बेटा तुम आज कहां गिर पड़े थे ? तब वह वारंवार उछल २ कर उस अग्निकुंड की तरफ़ अपनी अंगुली दिखाता था उसकी उस समय की ख़ुशी व उछल कूंद और मन को लुभाने वाली टूटीसी तोतली बोली सुन, वहां जमा हुए समस्त स्त्री पुरुषों के हृदय में अजीब आनन्द बरस रहा था तथा वे सब वारंवार उस विलक्षण घटना पर अत्यंत आश्चर्य भी करते थे परिणाम में उस बालक को उस दिनसे सब लोग, अग्निदत्त कहने लगे—आगे वह अग्नि के समान तेजस्वी और विद्वान् भी अपूर्वही हुआ और सदैव सब ठौर उस सुशीला देवी के पतिव्रत की महिमा सब स्त्री पुरुष गाने लगे तथा देवी देवता से बढ़ कर सब ठौर उस की पूजा और सन्मान भी होने लगा ॥

ऐसे हज़ारों दृष्टांत, और उदाहरण जिस देश में प्रत्यक्ष विद्यमान हों वहां की स्त्रियें, सर्वोत्तम. सर्वमान्य. सर्वश्रेष्ठ व परमप्रशंस्य जो पतिव्रतधर्म, और सूर्यसम देदीप्यमान जो उस का माहात्म्य, उसे भूल कर अपने परमपूज्य पतिदेव की पूजा और प्रति घड़ी करने का जो उस का आदर व सन्मान, उसे समयानुसार अधिकाधिक न करके उलटा हर समय हर तरह उस को सतावें यह महाबुराई है—निश्चय जानो कि इस महा खोटी चाल से आज तक कभी कोई घर नहीं बना और न कभी बनने की आशा हो सक्ती है ॥

निश्चय रक्खो कि कही हुई चाल के चलने से यदि दुःख भी होय तो वह दुःख नहीं कहाता किंतु विपरीत चाल चल कर प्राप्त किये सुखों को ही महादुःख समझना चाहिये, ऐसा वेदादि शास्त्रों का पक्का सिद्धान्त है ॥

इसे हमारी समस्त प्यारी बहू बेटी बहुत अच्छी तरह समझें और इस सुशीला देवी की भांत यश और प्रतिष्ठा, प्राप्त करें तब स्त्रीजन्म की सफलता हो सक्ती है अन्यथा जैसी भई वैसी न भई क्योंकि केवल आहार विहारमात्र के ही लिये मनुष्य का जन्म नहीं है—यहां तक का तुम्हारा

सब व्यवहार तो पशु पक्षियों को भी लगा है ॥ २३ ॥ फिर उन में और तुम में भेदही क्या है ? यह सोचना चाहिये क्योंकि जब तक इस प्रश्न का उत्तर तुम न जानोगी तब तक कभी कोई काम लायक़ तारीफ़ तुम से नहीं बनेगा, और तारीफ़ वा प्रशंसा वा यश, स्त्री पुरुषों को तब प्राप्त होता है जब वे अपना सब कृत्य ठीक २ वैसा करते हैं जैसा कि अपने वेदादि शास्त्रों में उन के करने को कहा है—सो पुरुषों की कर्तव्यता का तो पारावारही नहीं—परंतु स्त्री जाति के लिये तो केवल एक पतिव्रतधर्म ही कहा है—उसी एक के साधन से वे तीनों लोकों को जीत सक्ती हैं—यह हम अनेक भांत इस पुस्तक में लिख चुके और लिखते हैं—इस को चित्त देकर देखना सुनना समझना और इस में कहे अनुसार अपना सुभाव बदलकर अपने पति की छाया बन जाना अर्थात् हर समय उसकी प्रसन्नता के अनुसार, प्रसन्नमुख और प्रसन्नचित्त से चलना और वैसा ही सदैव रहना यह तुम्हारा मुख्य काम है ॥

इसलिये सब से प्रथम, ऊपर लिखे अनुसार अपनी बोल चाल सुधारना बहुत आवश्य है क्योंकि मधुरभाषण के बराबर मोहनमंत्र इस संसार में और कुछ भी नहीं है—इस कारण हर घड़ी और हर समय वह तुम्हारे बर्ताव में रहना बड़ा ही लाभकारी होगा—उससे जब पशु पक्षी से लेकर परमेश्वर तक प्रसन्न होजाते हैं तब तुम्हारा पति कैसे तुमसे प्रसन्न न होगा अर्थात् अवश्यमेव वह भी तुम पर अति प्रसन्न होगा ॥

परंतु यहां पर तुमको अच्छीतरह यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जैसा सब के लिये तुम्हारा पति, और तुम्हारे लिये सब मनुष्य, मनुष्य हैं वैसा कभी तुम भूल करके भी अपने पति को केवल एक सामान्य मनुष्य

॥ २३ ॥ आहार निद्रा भय मैथुनं च, समान मेतत् पशु भिर्नराणां ।
धर्मो हितेषा मधिकः प्रचक्ष्यते, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

मतलब इस का यह है कि जो स्त्री वा पुरुष धर्म को जाने और ठीक उसी के अनुकूल चले सो मनुष्य, और जो वैसा न करे वह पशु पक्षियों से भी गया गुज़रा है ॥

ही न समझ बैठो—यह बात ऊपर सैकड़ों ही ठौर कह चुके और कहते हैं कि तुम्हारे वास्ते तुम्हारा पति परमगुरु और देवरूप है—उसे तुम हमेशा वैसाही समझतीं रहो तथा उससे हरदम और हर घड़ी ऐसीं डरतीं रहो जैसी कि संपूर्ण प्रजा अग्नि वा तेजस्वी राजा से और समस्त विद्यार्थी अपने पढ़ाने वालों से निरंतर डरते हैं ॥

इस पढ़ाने वाले को भी लोग गुरू कहते हैं क्योंकि लड़कों को वही संसार की सब भलाई बुराई दिखाता है—इसलिये इसको आचार्य भी कहते हैं और इसी वास्ते "आचार्यदेवोभव,, ऐसी आज्ञा सब के लिये वेदों में लिखी है तथा पुराणवालों ने भी इसी के अनुसार गुरू का यह माहात्म्य दिखलाया है कि ॥ १४८ ॥ (गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ॥ गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवेनमः) हे मनुष्यो तुम अपने गुरु को ब्रह्मा विष्णु महेश बल्कि साक्षात् परब्रह्म समझ कर उसके सब उपदेशों को मानों तभी तुम्हारा इस जगत् में सब तरह से हित होगा—बस इसी प्रकार स्त्रीजाति का हित करनेवाला केवल एक उसका पति ही है अतः सब स्त्रियें, उसको अपना देव और गुरू समझें और उसकी सब प्रकार की ताड़ना, यंत्रणा और नाराज़गी सहन करें तब हित होता है अन्यथा कदापि नहीं, इसका प्रमाण नीचे देखो और शांत व प्रसन्न हो जाओ ॥

॥१४९॥ क्रुद्धो गुरुर्वदति यानि वचांसि शिष्ये ।
मध्यान्हसूर्य इव तानि दहंति शिष्यम् ॥
तान्येव कालपरिणाम सुखावहानि ।
पश्चात् भवंति कुसुमाकर शीतलानि ॥१॥

भा०—सब जानते हैं कि जेठमास में दोपहरके समय सूर्य के किरण, जैसे प्रतिदिन अधिकाधिक गरम होकर धरतीको जलाते हैं वैसेही वैसे आगे वे खूब पानी बरसा कर धरती को शांत भी कर देते हैं और इसी प्रकार

सब पदार्थों की अधिक उपज, होकर सब संसार सब तरह सुखी भी होता है इसी तरह गुरु वा पति के क्रोध को समझो अर्थात् उसके क्रोध भरे वचन जैसे २ शिष्य और स्त्री को प्रथम जलाते हैं वैसेही वैसे पीछे से उनको वे (वचन) उमर भर के लिये शांत व सुखी भी कर देते हैं– इसलिये जेठमास की गरमी के समान सब को अपने २ गुरु की और पति की गरमी सदैव सहना सर्वथा उचित है–जो इस्में चूकते हैं वे स्त्री पुरुष, संसार के सच्चे सुखों से भ्रष्ट होकर ही नहीं रहते किंतु उनका परलोक भी अवश्य बिगड़ जाता है -इसे सब स्त्रियें अच्छी तरह याद रक्ख कर इस अपने सच्चे हित सद्गुरुरूप पतिदेव की सेवा करें तथा समझें कि ऊपर माता पिता आदि जो ५ मनुष्य, देव कहे हैं वे ही सब के सच्चे गुरु हैं इनके सिवाय और कोई किसी का गुरु नहीं कहा सक्ता ॥

बहुत सी स्त्रियें किसी बावाजी वा बैरागी वा सन्यासी वा गुसाईजी वा पुजारी वा पंडित वा आचारी आदि से कान फुंका कर चेली बनती हैं और व्यर्थ उन से गुरु भी कहती हैं यह बहुत ही बुरी रीति है–कहीं किसी वेद वा शास्त्र में ऐसा करने की आज्ञा किसी स्त्री वा पुरुष के वास्ते नहीं लिखी है–जो ऐसा करने को कहते वा इस विषयक अपने बनावटी ग्रंथ दिखाते वे सब के सब मिथ्यावादी महा ठग हैं और जो उन के कहने वा बहकाने पर चलते, वे केवल मूर्ख वा महामूर्खही नहीं किंतु वे सर्वथा अपनी आत्मा का सत्यानाश कर लेने वाले हैं–ऐसे लोगों के लिये किसी भाषा कवि ने ,,लोभी गुरु लालची चेला, नरककुंड में ठेलं ठेला,, जो कहा वह बहुत ही सत्य है अर्थात् ऊपर लिखे सब गुरु बनने वाले बावाजी आदि लोग, व उन के चेला चेली कहाने वाले सब मनुष्य, निःसंदेह उस महाभ्रष्ट रीति के प्रभाव व प्रचार से धक्के लगा २ कर ज़रूर नरकों में ठेले जाते हैं ॥

कारण इस का यदि पूछो तो वही है जो कि अभी ऊपर लिख चुके हैं कि अपने परम पूज्य जो धर्मग्रंथ वेद, उन में वैसा करना कहीं नहीं लिखा है अतएव उन की व तुम्हारी वह सब काररवाई पाप में गिनी जाती है, कदाचित् कहो कि फिर इस का रिवाज क्यों सर्वत्र देखा जा-

ता है, तो इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि जब से इस देश से सच्ची विद्या का पढ़ना व पढ़ाना जाता रहा तब से यहां के लोगों की चाल का नाम भेड़ चाल पड़ गया है अर्थात् जैसे एक भेड़ को कुए में गिरती देख सब भेड़ें धड़ा धड़ कुए में आ पड़ती हैं—उसी प्रकार अब यहां के मनुष्यों की चाल हो गई है ॥

देखो हिन्दूधर्म के लाखों मनुष्य, जखई और मियां मदार आदि मुसल्मानों की सैकड़ों कबरें कैसे शौक़ से पूजने लग गए हैं और इसी प्रकार स्याने नउतों के नाम से महा नीच धानुख, भंगी, व चमारों की यहां कैसी दिनों दिन मानता होती जाती है ? जैसा यह सब निराधार भ्रष्टाचार अज्ञानवश तुम्हारे यहां इन दिनों चलता देख सब सूझता, अंधे बनं बैठे, वैसीही उक्त सब धूर्तों ने गुरू चेला बनने की रीति भी इस अंधाधुंधी के समय में स्वार्थ सिद्धी के अर्थ चला छोड़ी समझ ऊपर हमने लिखे सच्चे अपने पतिरूप गुरू को पूजो और उस की आज्ञामें अच्छी तरह ऐसी चलों जैसी कि अपने यहां की पुराने काल की सब स्त्रियें साफ़ दिल से सदा चलतीं आईं हैं तथा समझो कि गुरू शब्द का मुख्य अर्थ यह है कि जो सदा सार्वकाल अर्थात् हर घड़ी हितका ही उपदेश करे वह गुरू कहाताहै—कहो ऐसा पति है वा वह चालाक मनुष्य, जिसने कि तुम्हारा कान फूंका है ? उस ठग का तो केवल मतलब, तुम से सालियाना कुछ कर, वसूल कर लेना मात्र है अतः उसे छोड़ो और समझो कि इन सब गुरू बनने वाले मनुष्यों में समर्पण की चाल चलानेवाले सबसे अधिक दुष्ट व भ्रष्ट हैं इति ॥२४॥

॥ २४ ॥ देखो इन महा धूर्तों की दुष्टता व भ्रष्टता कि ये अपने चेली के हाथ में पानी देकर उनसे कहाते हैं कि कहो बीबी हमने अपना तन, मन, धन, का समर्पण अर्थात् संकल्प, आप जो गुरू तिनको कर दिया जब वे बेचारी भोली चेली 'वैसाही' कहकर अपने हाथ में लिया हुआ पानी और गहरी दक्षिणा, गुरू जी के हाथ पर छोड़ कर उनके चरणों में ढोक

॥ प्रथमप्रस्ताव ॥

——*****——

जो कि अब तक हम अनेक सर्वोत्तम ग्रंथों के प्रबल प्रमाणों और उदाहरणों को दिखाकर वारंवार पतिव्रतधर्म की असीम तारीफ़ लिख आए हैं उसे देख सुन हज़ारों अच्छी स्त्रियें पतिव्रता बनने के लिये ऊब रही होंगी अर्थात् मन ही मन वे कहती होंगी कि अब हम कौनसी ऐसी चाल चलें जिससे बहुत जल्द हमारा नाम परमात्मा पतिव्रताओं की फेहरिस्त में लिखा देखे और हमारे दोनों लोक सुधरें—यह उनकी चिंता दूर

देती हैं तब ये चालाक मनही मन हँसते हुए उसके मूड़ पर हाथ फेर कर धीरे से कहते हैं कि राज़ी रहो और समझो कि आज से तुम्हारे इस शरीर मन और धन पर हमारी सत्ता होगई. हम तुम्हारे साथ चाहे जैसा रास विलास तक करने का आज से अख्त्यार रखते हैं उसमें कभी तुमको अब उज़् नहीं होसक्ता—ऐसा तुम्हारे किये इस समर्पण का अर्थ है उसे तुम सदा ध्यान में रक्खो—हरे हरे ।

इसी प्रकार दूसरी महा धूर्तता इनकी यह देखो कि ये परमेश्वर से भी अधिक अपना दर्जा सदा अपने चेला चांटियों को जताने के अर्थ उन्हें अपना बनाया हुआ यह महामंत्र कंठ कराते हैं " गुरू गोविंद दोनों मिले काके लागूं पांय—बलिहारी उन गुरुनकी जिन गोविंद दिये बताय ,, अर्थात् स्पष्ट कहते हैं कि अगर कभी हम और परमेश्वर तुम्हारे सामने आते मिलें, तो तुम उस समय दौड़ कर हमकोही प्रणाम करो न परमेश्वर को।

हमारी समझ में लाखों धिःकार देना चाहिये इन ऐसे गुरू को, जो दुष्ट, परमेश्वर से विमुख करें समस्त मनुष्य जाति को, जैसा प्रथम चा-

हो अर्थात् जैसी कि वे सब बनाचाहती हैं वैसी झटपट ज़रूर बन जाँय इस विचार से आँगे हमने रामायणका कुछ निचोड़ लिख दिया है उसे वे थोड़ा २ चित्त लगाकर पढ़ें और खूब समझें तो ज़रूर उनका वह सब मनोरथ पूर्ण होजावेगा।

इसमें मुख्य दो भाग हैं प्रथम भागकी बुराई को देख कर उसका परित्याग, और दूसरे भागकी उम्दगी देखकर उसका स्वीकार, कर लेने से स्त्रीजाति निःसंदेह पतिव्रता बन जावेगी।

यहां पर प्रथम खंडके प्रत्येक उक्ति में जिस संस्कृत पदके नीचे लकीर खिंची देखो उस पद को केकयी के लिये दुर्वचन कहे समझो। इति॥

—✻✻✻✻✻—

लाकी से भ्रष्ट किया इन्होंने स्त्री को वेदोक्त विवाह विधि के नियम से, उसी प्रकार इस दूसरी चालाकी से उन्होंने दूर किया सब को सर्वांतर्यामी श्री जगदीश्वर से, अतः कहाजाता है कि बचो इन महानिंद्य जालसाज़ों के पंजे से और खूब दृढ़ होकर समझो कि तुम्हारा गुरू सिवाय पति के और कोई भी पाजी कभी नहीं होसक्ता और न कभी पतिके सिवाय किसी दूसरेकी सत्ता तुम्हारे शरीर पर होसक्ती है चाहे एक नहीं हज़ार समर्पण इन ऐसे स्वार्थियों ने तुमसे क्यों न करा लियेहों—कदापि उसकी पाबन्दी कोई स्त्री पुरुष न करे अर्थात् ऐसे गुरूको सदैव के लिये तुरंत तिलांजलि देदेवे—इसी में उनका सर्वथा हित है और इसी तरह निरंतर सब से अधिक महिमा परमेश्वर की समझी जाय, न कभी किसी प्रकार के मनुष्यादि जीव वा वृक्षपाषाणादि पदार्थ की—जो ऐसा नहीं समझेंगे वे महाघोर नरकों को भोगेंगे॥

यहां पर प्रसंगवश यह भी जता देना परमावश्य है कि बहुतेरे मांसख्वार भगत, तुमको तुमारे बाल बच्चों का हित सुझा कर तुमसे बकरा वा पिटला आदि जीव की हत्या कराते हैं—सो तुम कभी वैसा मत किया करो—उससे बड़ाही अहित होता है अतः सदैव सब जीवोंकी दया अर्थात् रक्षा करना ही श्रेष्ठ धर्म है—ऐसा हम प्रथमही ऊपर २५ वें श्लोक में दर्सा चुके हैं इति॥

॥ द्वेषः कस्य न दोषाय, प्रीतिः कस्य न भूतये ॥
॥ दर्पः कस्य न पाताय, नो नत्यै कस्य नम्रता ॥ १ ॥

॥ अथ ॥

॥ रामयशांशसार प्रथमखण्डः ॥

—:*:*:*:*:*:—

(१)

॥ कैकेयी प्रमादः ॥

॥१५०॥ कैकेय्यां मुक्तलज्जायां, वदन्त्या मतिदारुणं ।
राजा दशरथो वाक्य, मुवाचा यतलोचनां ॥ १ ॥
॥ १५१ ॥ वहंतं किं तुदसि मां, नियुज्य धुरि माहिते ।
अनार्ये कृत्य मारब्धं, किं नु पूर्व मुपारुधः ॥ २ ॥
॥१५२॥ तस्यैत त्क्रोधसंयुक्त, मुक्तं श्रुत्वा नृपांगना।
कैकेयी द्विगुणं क्रुधा, राजान मिद मब्रवीत् ॥ ३ ॥
॥१५३॥ तवैव वंशे सगरो, ज्येष्ठपुत्र मुपारुधत् ।
असमंज, इति ख्यातं, तथायं गंतु मर्हति ॥ ४ ॥
॥ १५४॥ एव मुक्तो धिगित्ये व, राजा दशरथो ब्रवीत्।
व्रीडितश्च जनः सर्वः, साच तन्नाव बुध्यत ॥ ५ ॥
॥१५५॥ अदुष्टस्यहि संत्यागः, सत्पथे निरतस्यच ॥
निर्दहे दपि शक्रस्य, द्युतिं धर्म विरोधवान् ६ ॥
॥१५६॥ तदलं देवि रामस्य, श्रिया विहतया त्वया।

लोकतोपि हि तेरव्य:, परिवाद: शुभानने ७ ॥
॥१५७॥ श्रुत्वा ह्यसिद्धार्थवचो, राजा श्रांततरःस्वरः ।
शोकोपहतया वाचा, कैकेयी मिद मब्रबीत् ॥ ८ ॥
॥१५८॥ एतद्वचो नेच्छसि पापरूपे हितं न जानासि म-
मात्मनोथवा । आस्थाय मार्गं कृपणं कुचेष्टा, चेष्टा
हि ते साधुपथा दपेता ९ ॥
॥१५९॥ प्रत्युवाचाथ कैकेयी, रौद्रा रौद्रतरं वच: । यदि
दत्वा वरौ राजन्, पुन: प्रत्युत तप्यसे ॥ १० ॥
॥ १६० ॥ धार्मिकस्त्वं कथं वीर, पृथिव्यां कथयिष्यसे ।
सह कौसल्यया नित्यं, रंतु मिच्छसि दुर्मते ॥ ११ ॥
॥ १६१ ॥ भवत्व धर्मो धर्मो वा, सत्यं वा यदि वा नृतं ।
नान्यथा परितुष्येह, मृते रामविवासनात् ॥ १२ ॥
॥ १६२ ॥ एकाह मपि पश्येयं, यद्यहं राममातरम् ।
अंजलिं प्रति गृह्णंतीं, श्रेयो ननु मृति र्मम ॥ १३ ॥
॥ १६३ ॥ अहं हि विष मद्यैव, पीत्वा बहु तवाग्रतः ।
पश्यतस्ते मरिष्यामि, रामो य द्यभिषिच्यते ॥ १४ ॥
१६४॥ पृथिव्यां सागरांतायां, यत्किंचि दधिगम्यते ।
तत्सर्वं तव दास्यामि, माच त्वं मृत्यु माविश ॥ १५ ॥
॥१६५ ॥ अंजलिं कुर्मि कैकेयि, पादौ चापि स्पृशामि ते ।
शरणं भव रामाय, माऽधर्मो त्वा मिह स्पृशेत् ॥ १६ ॥

॥ १६६ ॥ अनर्थरूपा सिद्धार्था, ह्यभीता भयदर्शिनी।
पुनः सकामयामास, तमेव वर मंगना ॥ १७ ॥
॥ १६७ ॥ त्वं कथ्यसे महाराज, सत्यवादी दृढव्रतः।
मम चेदं वरं कस्मा, द्विधारयितु मिच्छसि ॥ १८ ॥
॥ १६८ ॥ पापं कृत्वैव किमिदं, मम संश्रुत्य संश्रवं।
शेषे क्षितितले सन्नः, स्थित्यां स्थातुं त्वमर्हसि ॥ १६ ॥
॥ १६९ ॥ समयं च ममार्येमं, यदित्वं न करिष्यसि।
अग्रतस्ते परित्यक्ता, परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥२०॥
॥१७०॥ तांहि वज्रसमां वाच, माकर्ण्य हृदयाप्रियां।
नाभ्यभाषत कैकेयीं, प्रिया मप्रियवादिनीं ॥ २१ ॥
॥१७१ ॥ नृशंसे पापसंकल्पे, क्षुद्रे दुष्कृतकारिणि।
भूतोपहतचित्तेव, ब्रुवंती मां न लज्जसे ॥ २२ ॥
॥१७२॥ यदि भर्तुः प्रियं कार्यं, लोकस्य भरतस्य च।
विरमैतेन भावेन, त्व मेतेनाऽनृतेन च ॥ २३ ॥
॥१७३॥ किं चैनां प्रति वक्ष्यामि, कृत्वा विप्रिय मीदृशं।
यदा यदा च कौसल्या, दासीवच्च सखीवच ॥ २४ ॥
॥१७४॥ भार्यावत् भगिनीवच्च, मातृव च्चोपतिष्ठति।
सततं प्रियकामा ते, प्रियपुत्रा प्रियंवदा ॥ २५ ॥
॥१७५॥ न तथा सत्कृता स्म वै, यथा त्वं सत्कृता सदा।
इदानीं तदहति मां, यन्मया त्वत्कृते कृतं ॥ २६ ॥

॥ १७६॥ सतीं त्वा मह मत्यंतं, व्यवस्या मसतीं सतीं।
चिरं खलु मया पापे, त्वं पापेनाभिरक्षिता ॥ २७ ॥
॥१७७॥ अनार्य इति मा मार्याः, पुत्रविक्रयकं ध्रुवं ।
अहो दुःख महो कृच्छ्रं, यत्र वाचः क्षमे तव ॥२८॥
॥ १७८ ॥ मृते मयि गते रामे, वनं पुरुषपुंगवे ।
सेदानीं विधवा राज्यं, सपुत्रा कारयिष्यसि ॥ २९ ॥
॥१७९॥ धिगस्तु योषितो नाम, शठाः स्वार्थपरायणाः ।
न ब्रवीमि स्त्रियः सर्वा, भरतस्यैव मातरम् ॥ ३० ॥
॥ १८० ॥ चिरं बतां केन धृतासि सर्पी ।
महाविषा तेन हतोस्मि मोहात् ॥
विनाशकालां महिला ममित्रा ।
मावासयं मृत्यु मिवाऽत्मनस्त्वां ॥ ३१ ॥
॥ १८१ ॥ नृशंसवृत्ते व्यसनप्रसारिणि ।
प्रसह्य वाक्यं यदिहाद्यभाषसे ॥
न नाम ते तेन मुखात् पतं त्यधो ।
विशीर्यमाणा दशनाः सहस्रधा ॥ ३२ ॥
॥ १८२ ॥ न किंचि दाहा हित मप्रियं वचो ।
न वेत्ति रामः परुषाणि भाषितुं ॥
कथं नु रामे ह्यभिरामवादिनि ।

ब्रूवीषि दोषान् गुणवृन्दभूषिते ॥ ३३ ॥
॥ १८३ ॥ प्रताप्य वा प्रज्वल वा प्रणम्य वा ।
सहस्रशो वा स्फुटितां महीं व्रज ॥
न ते करिष्यामि वचः सुदारुणं ।
समाहितं केकयराजपांसुने ॥ ३४ ॥
॥ १८४ ॥ क्षुरोपमां नित्य मसत्प्रियंवदां ।
प्रदुष्टभावां स्वकुलोपघातिनीं ॥
न जीवितुं त्वां विसहे मनोरमां ।
दिधक्षमाणां हृदयं सबन्धनम् ॥ ३५ ॥
॥ १८५ ॥ न जीवितं मेस्ति कुतः पुनः सुखं ।
विनात्मजे नात्मवतां कुतो रतिः ॥
ममाहितं पापिणि कर्तु मर्हसि ।
स्पृशामि पादा वपि न प्रसीदसि ॥ ३६ ॥
॥ १८६ ॥ क्रियतां मे दयां भद्रे, मयायं रचितांजलिः ।
अथवा गम्यतां शीघ्रं, नाह मिच्छामि
भाषितुं ॥ ३७ ॥
॥ १८७ ॥ विशुद्ध भावस्य हि दुष्टभावा, दी-
नस्य ताम्राश्रुकलस्य राज्ञः । श्रुत्वा
विचित्रं करुणं विलापं, भर्तु नृशंसा
न चकार वाक्यं ॥ ३८ ॥

॥ १८७ ॥ तदा स राजा पुनरेव मूर्छितः, प्रिया
मतुष्टां प्रतिकूलभाषिणीं । समीक्ष्य
पुत्रस्य विवासनं प्रति, क्षितौ विसंज्ञो
निपपात दुःखितः ॥ ३९ ॥
॥ १८८ ॥ कैकेयि मामकांगानि, मा स्प्राक्षीः पाप-
निश्चये । न हि त्वां द्रष्टु मिच्छामि,
न भार्या न च बांधवी ॥ ४० ॥
॥ १९० ॥ ये च त्वा मनुजीवंति, नाहं तेषां
न ते मम । केवलार्थपरां हि त्वां,
त्यक्तधर्मां त्यजाम्यहम् ॥ ४१ ॥
॥ १९१ ॥ अग्रहणां यच्च ते पाणि, मग्नि पर्णय-
नंच यत् । अनुजानामि, तत्सर्व म-
स्मिंल्लोके परत्रच ॥ ४२ ॥
॥ १९२ ॥ भरत श्चेत् प्रतीतः स्या, द्राज्यं प्राप्यैत-
दव्ययम् । य न्मेस दद्या त्पित्रर्थे,
मा मां तद्दत्त मागमत् ॥ ४३ ॥
॥ १९३ ॥ सकामा भव कैकेयि, विधवा राज्य मावस ॥
नहि ते पुरुषव्याघ्रं, विना जीवितु मुत्सहे ॥ ४४ ॥

भा० — खुलासा अर्थ इस महा कड़ी कथा का यह है कि महादुखदायी व दारुण शब्दों को कह रही बेहया रानी केकयी से राजा दशरथ कहते

हैं कि अरी अभागिन् क्यों तू महा दुष्ट वचनों से व्यर्थ मेरा कलेजा छेद रही है देख हमारे पवित्र कुल में अभी तक ऐसा दुष्ट कृत्य किसी ने नहीं किया जैसा कि तूं आज कराना चाहती है—तब वह बोली कि अरे तेरेही वंश में राजा सगर हो गया है उस ने अपना असमंजा नाम का ज्येष्ठ पुत्र जैसा घर में से निकाल दिया उसी तरह तूंभी आज अपने बड़े पुत्र रामचन्द्र को अभी निकाल देने सक्ता है—यह सुन सभा के सब लोग, अति लज्जित होकर हरे, हरे, कहने लगे परन्तु उसकी, केकयी को शरम तक नहीं—तब राजा दशरथ उसे शतशः धिक्कार देकर बोला कि अरी हतश्री नष्टबुद्धिन् असमंजा महापापी, और महा दुराचारी, था उसकी उपमा गुणसागर रामचन्द्र में नहीं लग सक्ती, सब लोग तेरी इस भ्रष्ट बुद्धि पर खेद करते हैं—इस कारण अपने इस दुष्ट हट का परित्याग कर ॥

यह सुन केकयी आग बबूला हो बोली कि राजा भ्रष्ट बुद्धि मेरी तो नहीं किंतु तेरी ज़रूर हो गई है जो अपने मुख से कही बात को बदलता है—क्या इसी बात पर जगत् में धर्मात्मा कहाना चाहता है ? स्पष्ट जान पड़ता है कि अब तूं कौशल्या के साथ बिलसें चाहता है—धर्म हो चाहे अधर्म, मैं रामचन्द्र को बिना निकाले अब कभी नहीं मानूगी—मैं तो अब राज़ी तभी हूंगी जब आठ पहर दासी के समान हाथ जोड़ कर अपनी सेवा में खड़ी तेरी परम प्यारी पटरानी कौशल्या को सदा देखूंगी—इसी में मैं अपना हित समझती हूं अन्यथा मेरी मौत समझ—बहुत सा ज़हर खाकर अभी तेरे सामने मर जाऊंगी पर और तरह पर अब कभी संतुष्ट मैं न हूंगी ॥

राजा ने कहा अरी अभागिन् व्यर्थ प्राण क्यों देना चाहती, देख हाथ जोड़ तेरे पांव तक पड़ता हूं—कृपा करके मुझ शरणागत की बात मानले—जो कुछ धरती पर मिल सक्ता है वह सब आज तुझे मैं देने को तयार हूं सारांश कि व्यर्थ के अधर्म और अपजस से तूं बच जाय तो बड़ा ही अच्छा हो—इस पर वह बहुतसी झींकती सिर धुनती और अनेक प्रकार के डर दिखाती हुई बेखौफ़ राजा से बोली कि मुझे सिवाय अपने मांगे

हुए उन दो वरदानों के, और कुछ भी राजा दरकार नहीं, सो तू कबूल कर चुका है—यदि सच्चा सत्यवादी और दृढ़व्रत है तो चुपचाप वैसा कर और यदि कही हुई बात को पलटकर पापी बना चाहे तो मेरे प्राण ले ऐसा वज्र के समान केकयी का उत्तर सुन राजा एक साथ सन्नाटे में आकर कुछ देर को चुप होगया ॥

और फिर बोला कि हा दुष्टे हा पापिन, हा चांडालिन् हा पापचारिणी, तूं चुड़ैल के समान मुझ से बकती हुई—ज़राभी नहीं लजाती कहो ऐसी कृत्या स्त्री को कोई कैसे समझावे! सदा से तेरा और मेरा प्रिय करने वाली सदा सबसे अति प्रिय बोलनेवाली तथा अपने पुत्र से भी अधिक तेरे पुत्र पर प्यार रखनेवाली कौशल्या देवी देखी जा रही है तथापि कभी मैंने उसका ऐसा सन्मान नहीं किया जैसा कि सदासे हर घड़ी तेरा करता चला आता हूँ—सो मुझे मेरे वे सब काम और भूलें आज अत्यन्त दुःख दे रही हैं—मैं नहीं जानता था कि तूं ऐसी ज़हर भरी छुरी है—महा असती महा पापिन् और महा चांडालिन् जो तूं तिसे मैं आजतक महा सती और महा पतिवृता ही समझता रहा सो इसकाभी आज मुझे अति शोक, संताप और पछतावा है—दुष्टे, इस समय जितनी २ तेरी क्षमा करता हूं उतनाही उतना महा कष्ट, मुझे बढ़ रहा है—सब आर्यलोग मुझे, अनार्य और परम प्यारे पुत्र का बेचनेवाला कहेंगे—हा, मैंने महा बिसैली कारी नागिन गोद में धर कर पाली उसी ने हा, आज मुझे डस लिया—अरी दुष्टिन् रामचंद्र के बनवास के साथही मेरी मौत होगी—फिर तूं विधवा होकर राज्य का उपभोग पुत्र सहित कीजियो—धिक्कार है तुझ ऐसी दुष्टा स्त्री की जाति पर क्योंकि वह निरी अपने मतलब में ही सदा मस्त रहती है—उस के रोबरू उसे बिलकुल पति की इज्ज़त वा आब्रू वा सुख दुःखों की परवा नहीं रहती, वह कल मरता होय तो आज ही क्यों न मर जाय लेकिन खुद्गरज़िन के मतलब में कहीं अंतर न पड़ जाय ॥

जैसी सज्जनता अभी ऊपर मैंने कौशल्या की प्रकाशित की उसी प्रकार अनुपम गुणरत्नों से विभूषित उस का प्राणप्रिय पुत्र, रामचन्द्र है आज तक कभी उस ने कुछ भी तेरे विषय में अप्रिय वचन नहीं कहा

और न वह बेचारा कभी किसी से वैसे अप्रिय वा कटुशब्दों को कभी बोल ही जानता है—उन्ही दोनों के हक्क में तूं महा पापिन् व महा चांडालिन् ऐसी पैनी, कैंची चला रही है अतः मुझे ऐसा क्रोध आता है कि अभी तेरे मुख के सब दांतों के हज़ारों खंड करके धरती पर गिराऊं—तभी मेरा नाम, ठीक है नहीं तो नहीं—तूं चाहे जैसी गरम हो वा जलकर भस्म हो जा, वा विनय कर वा यह धरती फटे और उस में तूं समायभी जाय तथापि हे केकयराजकुलकलंकिन् अब मैं तेरा प्रिय करने वाला नहीं हूं—मैं ख़ूब जान गया कि तूं एक महापैने छुरा की धार है—असत्य और अप्रिय के सिवाय और कुछ तूं बोल ही नहीं सक्ती—तेरे हृदय का भाव महा दुष्ट है—उस से तूं हमारे कुल का सत्यानाश कर देने को आज उद्यत हुई है—ऐसी दुष्टा का मर जाना ही अच्छा है—मेरा सर्वथा जिस में नाश होता है वही करना सर्वथा अब तुझे इष्ट है—तभी तू मेरे हाथ जोड़ने और पांव पड़ने तक को कुछ बात नहीं समझती—देख फिर हाथ जोड़ता हूं अब भी दयाकर और इतने पर भी यदि न माने तो अपना काला मुख करके यहां से निकल जा, अतःपर तुझ से बोलने को मेरा जी नहीं चाहता और न अब मैं कभी तुझ से बोलूं।

इस कथन पर भी केकयी के हृदय में दया न उपजी अर्थात् वह कृत्या उसी तरह क्रूर और कर्कश बकवाद करती रही—परिणाम में राजा अचेत हो धरती पर गिर पड़ा—तब उस को समालने के लिये केकयी दौड़ी उस समय राजा ने झिड़क कर कहा कि देखरी अभागिन् कभी तूं मेरे शरीर को स्पर्श मत कर अब तेरी सूरत मुझे नहीं सुहाती, अब से न तूं कोई हमारी और न हम तेरे, बल्कि मैं उन तक का भी अब साथी नहीं जिन की कि जीविका का तुझ से कुछ भी संबंध हो—सारांश महा अधर्मिन् और स्वार्थपरा जो तूं उसे मैंने आज से छोड़ दिया यदिच मैं जानता हूं कि वेदोक्तविधि से ब्याही हुई स्त्री का छोड़ना दोनों लोकों में बुरा ठहरता है परंतु अब मुझे उस का बिलकुल डर नहीं, क्योंकि तेरी ऐसी दुष्टा स्त्रीका परित्याग कर देने की आज्ञा, शास्त्र में ठौर २ लिखी है*

* अप्रजां दश मे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत् ॥ मृतप्रजां पंचदशे

यदि आगे यहां आए पीछे तेरा पुत्र भरत तेरी करतूत को अच्छा समझेगा अथवा वह तेरी सलाह पर चलेगा तो वह भी अब से मेरा पुत्र न कहावेगा और इस दशा में जो कुछ कि मेरा वह क्रिया कर्म करेगा तो वह भी सब उस का किया व्यर्थ होगा—सारांश यह कि, मैं अब बिना रामचन्द्र के जी ही, नहीं सक्ता ऐसी सूरत में भलेई हे दुष्टा केकयी, तू अपनी इच्छा पूरी कर अर्थात् विधवा होकर राज्य भोग ॥

इस रीति, लाखों प्रकार से राजा ने समझाया और अनेक भांति उस से भला बुरा भी कहा परन्तु उस महा दुष्टा केकयी ने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा, बल्कि उस ने उसी क्षण सब के सन्मुख अति निर्दयता के साथ रामचन्द्र को चीर वस्त्र देकर निकाल ही दिया—इस का राजा को अपार शोक हुआ वे महा पश्चात्ताप के साथ बोले कि हा ! ! ! मैं ने अपने कुशल मंत्रिवरों की सम्मति इस विषय में नहीं ली, बिलकुल नारी के मोह में आकर जैसा मैं सहसा वचन हार बैठा वैसा ही यह अपार दुःख आज मुझे उठाने पड़ा, अस्तु अब मुझे इस राक्षसी के घर से रानी कौशल्या के घर ले चलो अन्यत्र कहीं मुझे सुख वा शांति नहीं मिलेगी—इतनी आज्ञा पाते ही राजकिंकर दौड़े और उन्हों ने सुख से राजा को कौशल्या जी के भवन में जा उतारा—तहां छटे रोज़ हा राम २ करते वे

सद्य स्त्वप्रिय वादिनी मिति ॥ नारदः ॥ अर्थात् जिस स्त्री के पुत्रादि न होते हों उसे दशवें और जिस के केवल कन्या ही कन्या होती हों उसे बारवें और जिस की संतान जीती ही न हो उसे पंद्रवें वर्ष छोड़ दे परंतु इन तीनों से बुरी उस स्त्री को समझे और उस का तुरन्त ही परित्याग करे जिस का कि बोल चाल पति आदि को सदा अप्रिय लगता हो ॥ ऐसा नारद जी कहते हैं ॥

मृत्यु वश हुए—इस राजा के साढ़े तीन सौ रानियां और थीं (२५) वे सब विधवा हुईं—इस प्रकार एक क्षण में अकेली केकयी के दुराग्रह से बना ठना अयोध्या का राज्य बहुकाल को हतश्री होगया ॥

प्रथम तो ऐन राजगद्दी के समय रामचन्द्र का वन को जाना ही सब को बहुत हड़ा, इस के पीछे तुरन्त द्वितीय अनर्थ यह हुआ कि राजा दशरथ न रहे, परिणाम में जिधर देखो उधर हा हा कार मच गया और सब ने नीचे लिखे अनुसार केकयी के जन्म में थूंका—उसे अच्छी तरह हमारी सब प्यारी बहू बेटी देखें और समझें कि लोभ, हट, और दुराग्रह कैसी बुरी वस्तु है कभी इस प्रकृति की स्त्री पतिव्रता नहीं कहाती रानी केकयी ने इतना अनर्थ उत्पन्न करके जितना सर्वोपरि सुख, लूटना चाहा उस से अधिक उसे अपार दुःख उपस्थित होगया—और उस समय से लेकर आज तक, सब उस को बुरा कहते और जब तक धरती रहेगी तब तक वह इस जगत् में बदनाम ही रहेगी—राजा, रानी, राजपुरुष, और तमाम रैयत ने उसे धिक्कारा, यह तो ठीक ही था परन्तु महा आश्चर्य की बात यह है कि उस की इस महा नीच करतूत पर इन सब से अधिक गालियां उस के खास औरस पुत्र, भरत ने उसे दीं—और वह बेचारा जन्म भर इसी कारण, सब के सन्मुख, कनौड़ा रहा और इसी कारण, उस ने उमर भर इसे कल नहीं लेने दी रामायण में देखो एक ठौर उसने अपने भाई शत्रुघ्न से स्पष्ट, कहा है कि प्रियबन्धु, मैं अपने हाथों इस महा दुष्टा स्वमाता का इसी दम, सिर काटकर फेंक देता और कहता कि देख अम्मा मेरे लिये कमाये हुए राज्य का सुख, परंतु क्या करूं भैया, मन की मनही में रही जाती है क्यों कि इसमें मुझे बड़ा भारी डर बड़े भाई श्री रामचन्द्र की नाराज़ी का

॥ २५ ॥ अर्धसप्तशता स्तत्र प्रमदा स्ताम्रलोचनाः ॥
कौशल्यां परिवार्या थ शनै र्जग्मु र्धृतव्रताः ॥

इस का अर्थ यह है कि इस राजा की ३५० रानी और थीं वे सब सदा कौशल्या जी को बीच में देकर चलतीं थीं ॥

लगा है कि फिर वे मेरा कभी मुख तक न देखेंगे, वही हाल तेरा होगा, अतः ढील अन्द इस रंडा कुब्जा को, देख अधमरी हो चुकी है ॥

सारांश बुरे हट और बुरे काम का ऐसा भयावह फल होता है-इस लिये कभी, उधर को न जाना चाहिये बरंच हर दम, व हर घड़ी, सोचना चाहिये कि जब रानी महारानियों की ऐसी दुर्गति हुई तब हमारी क्या चलाई है और कैसे हम इस जगत् में भली, वा पतिवृता, कही जा सक्ती हैं—साथही इसके अगाड़ी लिखे श्री रानी कौशल्या और श्री सीताजी महारानी के सुचरित्रों को पढ़ो, और उन पर अपना चित्त, जमाओ और सोचो कि सब जगत् में आज तक ये दोनों क्यों अच्छी कहा रही हैं ? तब जानोगी कि इसका मुख्य मूल कारण उनका पतिवृत धर्म ही है-इस पीछे तुम्हारा कर्तव्य, यह होगा कि तुम, अपने बोल चाल का ढंग ठीक वैसा ही, करो जैसा कि इन उक्त दोनों देवी का अपने २ पतिं के साथ करने का आँगे आनेवाले उनके चरित्रों में लिख रहा है, बस आनंदमयी और सब बिथा गई का लटका तुम्हारे हाथ आजावेगा अर्थात् अवश्य तुम पति-वृता कहाने लग जाओगी—अस्तु अभी थोड़ी देर और देखो केकयी के कृत्यों का फल कि किस २ ने क्या २ उसकी कारस्वाई पर उस समय वहां उससे कहा है ॥

—*****—

(२)

॥ इतरराजपत्नीरुदनम् ॥

—*****—

॥१६४॥ कौसल्यायां महातेजा, यथा मातरि वर्तते ॥
तथा यो वर्तते ऽस्मासु, महात्मा क्वनु गच्छति ॥ १ ॥

॥१९५॥ कैकेय्या क्लिश्यमानेन, राज्ञा सञ्चोदितो वनं। परित्राता जनस्यास्य, जगतः क्वनु गच्छति॥२॥

॥ १९६॥इति सर्वा महिष्यस्ता, विवत्सा इव धेनवः। रुरुदु श्चैव दुखार्ताः, सस्वरं च विचुक्रुशुः ॥ ३ ॥

॥ १९७ ॥ सकामा भव कैकेयि, भुंव राज्य मकंटकं । त्यक्त्वा राजान मेकाग्या, नृशंसे दुष्टचारिणि ॥ ४ ॥

॥ १९८ ॥ भर्तारंतु परित्यज्य, का स्त्री दैवत मात्मनः । इच्छे ज्जीवितु मन्यत्र, कैकेय्या स्त्यक्तधर्म्मणः ॥ ५ ॥

॥ १९९ ॥ न लुब्धो बुध्यते दोषान्, किंपाक मिव भक्षयन् ॥ कुब्जानिमित्तं कैकेय्या, राघवाणां कुलं हतम् ॥ ६ ॥

॥ २०० ॥कैकेय्या दुष्टभावाया,राघवेण विवर्जिताः॥ कथंसपत्न्या वत्स्यामः, समीपे विधवा वयम् ॥ ७ ॥

भा॰—सब राजपत्नीं कहती हैं कि जो कौशल्या के समान सदा हमारा सन्मान, करता रहा वह हमारा प्राणप्रिय पुत्र रामचंद्र आज हमसे बिछुड़कर कहां चलागया हा, एक अकेली महादुष्टा केकयीने परम दयालु राजाको अत्यंत,तंगकरके सब जगत् के परित्राता रामचंद्र को हमसे जुदाकरके आज हमारी वह हालत करदी जैसे कि बछड़ों के बिना सब गौओं की हो जाती है—इस प्रकार नाना विध विलाप, कर २ के महा दुःखित वे

सब राजपत्नी, उस समय बड़े ज़ोर से हाहाकार करने लगीं और फिर बोलीं कि हा नृशंसे, हा दुष्टता प्रचारिणी केकयी, अब तूं चैन से अपने सब मनोरथ सिद्ध करके अकंटक राज्य का उपभोग कर—इस दुष्टा और अधर्मिन् के सिवाय, जगत् में कौन दूसरी ऐसी स्त्री होगी जो अपने परम पूज्य देव रूपी पति को प्राणांत कष्ट देकर अपना सोचा हुआ हित बनावे वा जीना चाहे, परन्तु लोभी कभी दोषों को नहीं देखता * उसी प्रकार आज कुब्जा को कारण बनाकर जगत्प्रसिद्ध रघुकुल का सत्यानाश इस परमकुत्या केकयी ने कर दिया हाय जिस चांडालिन् ने आज हम सब बिना पति और पुत्र के कर छोड़ीं, उस महा बैरिन् के समीप बस कर कैसे हम सब अब अपना निर्वाह कर सक्ती हैं और क्यों कर व कैसें यह मंझधार पड़ी हमारी नवैया पार लगेगी ॥

—:*:*:*:*:—

* जबकि इतने भारी राज्य तक के लोभ पर रानी केकयी से सब जगत् ऐसी घिन करे और उस की लाखों प्रकार की निंदा करके लाखों ही प्रकार की गालियां उसे, निकृष्ट दरजे तक के सब स्त्री पुरुष, देवें—तो भला उन महाचांडालिन् स्त्रियों से फिर क्या कहा जाय ! जो दुष्टा बड़े घरानों की कहावें परन्तु तनक २ सी चीज़ वा सुई डोरा तक के लोभ पर अपना व पराया मूड़ फोड़तीं वा अपने परम प्यारे पुत्रादिकों की सौगंदें खातीं न लजावें—धिक्—धिक्—धिक् ॥
यह श्लोक नंबर ३ में कहे पंचम दोष का प्रत्यक्ष प्रभाव है—अतः सब स्त्रियें सदा सावधान रहें उस से ॥

तथा निरंतर स्मरण रक्खें अपने उक्त १ नंबरी श्लोक को जिसका कि आरंभ " अनृतं साहसं माया मूर्खत्व मतिलुब्धता,, से है ॥

(३)

॥ प्रजोक्तिः ॥

—:*:*:*:—

॥२०१॥ हा नृशंसा हि कैकेयी, पापा पापानुबंधिनी।
तीक्ष्णा संभिन्नमर्यादा, तीक्ष्णकर्मणि वर्तते ॥ १ ॥
॥ २०२ ॥ या पुत्र मीदृशं राज्ञः,प्रवासयति धार्मिकं।
वनवासे महाप्राज्ञं, सानुक्रोशं जितेंद्रियं ॥ २ ॥
॥२०३॥ एकस्याः खलु कैकेय्याः, कृतेयं खिद्यते जनः।
स्वार्थे प्रयतमानायाः, संश्रित्य विकृतिं त्विमां ॥ ३ ॥
॥२०४॥ एष स्वभावो नारीणा,मनभूय पुरा सुखम्।
अल्पा मप्या पदं प्राप्य, द्रुह्यंति पृजहत्यपि ॥ ४ ॥
॥२०५॥ असत्यशीला विकृता, दुर्गा अहृदयाःसदा।
असत्याः पापसंकल्पाः, क्षणमात्र विरागिणः ॥ ५ ॥
॥२०६॥ न कुलं न यशो विद्या, न दत्तं नापि संग्रहः।
स्त्रीणां गृह्णंति हृदय, मनित्यहृदया हि ताः ॥ ६ ॥
॥२०७॥ साध्वीनांतु स्थितानांतु, शीले सत्ये श्रुते
स्थिते। स्त्रीणां पवित्रं परमं, पति रेको विशिष्यते ॥ ७ ॥

भा०—राजधानी की सब प्रजा, एकत्रित होकर महा० विलाप के साथ

सिर पीट २ कर रोती और कहती है कि हाय इस महा चांडालिन, व महापातकिन् केकयी ने बड़ा ही दुःख फैलाया, इस महाकृत्या और महा कर्कशा ने इस महत् राजकुल की मर्जाद तोड़ कर राज्य का नाश मार दिया—हाय इस दुष्टा की बुद्धि पर कैसे पत्थर पड़े, कि जिस ने सब के प्राणप्रतिपालक रामचन्द्र को घर से निकाल कर हमारे महाराजाधिराज (दशरथ) के प्राणों पर और सब राजकुमार और सब रानी महारानियों के सुखों पर तथा सब राज्य पर ऐसी विपत्ति ला डाली कि जिस का वर्णन नहीं हो सक्ता हाय यही एक महाकृत्या केकयी इन तमाम महाविपत्ति और हमारे दारुण दुःखों की मूलकारण है—इस ने स्वार्थवश, सारे राज्य का नाश मार दिया—कोई कहते कि हम जन्म से देखते चले आते हैं, कि हमारे महाराजाधिराज ने अपनी सैकड़ों रानियों में से किसी एक की भी खातिर ऐसी नहीं की जैसी कि सदैव इसकी की है, सो यह केकयी आज ऐसी, विपरीत बरते इस का हम को अति आश्चर्य होता है—ऐसी कपटिन स्त्री घर से तुरन्त कोरी निकाल देने को शास्त्र कहता है * तथा दूसरे कहते हैं कि भाई तुम्हारा कथन बहुत ठीक है—सच मुच वह ऐसी ही कुलक्षणी है—धन्य कहना चाहिये श्रीकौशल्याजी महारानी को कि जिन्हो ने सदा पति की प्रसन्नता रखने के सिवाय और कुछ अपना स्वार्थ समझा ही नहीं, बाक़ी स्त्रीजाति मात्र का लक्षण, तो शास्त्र वालों ने स्पष्ट यही लिख जताया है कि इस का पति चाहे जैसी उमर भर इसकी ख़ातिर करे या उसे सुख दे, लेकिन वक़्त पड़े पीछे तनकसी बात पर यह कृत्या पति का तुरंत सब किया हुआ लीपकर स्पष्ट कहने लग जाती है कि तूने सदा से मुझे दुःख ही दिया

* खलु द्विषंत्या स्त्यागोस्ति नच दायप्रवर्तन मिति ॥ मनु कात्यायनौ ॥ अर्थात् पति की मर्ज़ी के विरुद्ध चलने वाली स्त्री, पतिद्वेषिणी कहाती है ऐसी का कभी कोई हक्क पति के घर में नहीं हो सक्ता, किंतु ऐसी स्त्री अवश्य घर से सूखी निकाल देनी चाहिये ॥ ऐसा मनुजी और कात्यायन ऋषि का वचन है ॥

वा कुछ और, इतना ही नहीं, किंतु यह उसी क्षण पति से द्वेष, करके उस को नाना प्रकार के मिथ्या कलंक लगाने और उसे छोड़ देने तक को तैयार हो जाती है—इस लिये इस का कभी कोई, विद्वान् व समझदार विश्वास न करे बल्कि, अच्छी तरह जानता रहे कि यह सदा बड़ी असत्या व असत्यशीला व विकृता व दुर्गा व अहृदया व अनित्यहृदया व पापसंकल्पा, है—इस की सब उत्तमता, छिनभर में कपूर की तरह उड़ जाती है-यह अभागिन, जानती ही नहीं कि कुल.यश.विद्या और धर्म क्या चीज़ है, और न यह दूसरे के किये व दिये का उपकारादि कभी मानें सारांश उत्तम गुणों का संग्रह, यह अभागिन कभी नहीं करती, ऐसी यह कृतघ्नी और विश्वासघातिन होती है और ठीक २ पूछो तो भाई इस की समझ तो यह है, कि परमात्मा ने मानों पति को मेरी सेवा चाकरी के ही लिये बनाया है-इस लिये मेरा काम ही यह है कि मैं कभी उसे कछ लेने ही न दूं अन्यथा मैंने स्त्रीजन्म लेकर किया ही क्या ॥ *

---

* यह बड़े घरों की बहुत सी दुष्टा स्त्रियों की समझ और तदनुरूप उनकी करतूत कही गई-अब सुनो व देखो कुछ जंगली स्त्रियों का बर्ताव, कुछ वर्ष पूर्व, जब हम पूना शहर से लौटकर मुल्क बरार की सैर कर रहे थे उस समय हम को एक दिन मध्यान्ह कृत्य के निर्वाहार्थ, एक पर्वतस्थली में किसी एक नाले के किनारे कुछ काल ठहरना पड़ा, वहां से चहुंओर दूर २ तक एक बड़ा लंबा चौड़ा बबूर का जंगल चला गया था-उस में एक गड़रिया अपने स्त्री पुत्रों सहित, अपनी बहुतसी बकरियों को चरा रहा था, उस काल हम ने काफ़ी सवा पहर तक जैसा स्वनेत्रों से उस गड़रिया को सुखी देखा, उस का लक्षांश भी सुख, हम अपने ऐसे मनुष्यों को, उन के आश्रमों में स्त्री जाति से प्राप्त होता नहीं देखते, अतः कहना पड़ता है कि सच मुच, लाखों ही धन्यवाद योग्य प्रेम था उस गड़रनी का अपने पति में-यदि परमात्मा स्वामी स्त्री दे तो वैसे ही स्वभाव की सब को दे, जैसी कि पतिप्रेमपरिप्लुता वह उक्त गड़रनी हम देखी-आशा है कि इस दृष्टांत को देख सुन, बहुत सी स्त्रियें अति लज्जित

(४)

॥ परिजनोक्तिः ॥

—*****—

॥ २०८ ॥ यया च राजा रामश्च, लक्ष्मणश्च महाबलः । सीतया सह संत्यक्ताः, साक मन्यं न हास्यति ॥ १ ॥

॥ २०६ ॥ नराश्च नार्यश्च समेत्य संघशो, विगर्हमाणा भरतस्य मातरं । तदा नगर्यां नरदेव-संक्षये, बभूवु रार्ता नच शर्म लेभिरे ॥ २ ॥

भा०—सर्व अधिकारी और दासदासीगण, उस समय अति व्याकुल होकर अनेक प्रकार से भरत की माता केकयी को निंदर २ कर बोले कि हाय जिस दुष्टा, जिस पापिन, और जिस महाकृतघ्नी केकयी ने, राजा रामचंद्र व लक्ष्मण और महासुकुमार सीता को, महा निर्दयता के साथ घर से निकाल बाहर किया, और खास इसी कारण राजा दशरथ के प्राण जिस ने जान बूझ कर लिये वह पापिन, अब आगे अपने राज्य में हम इतर लोगों पर अनर्थ करने को कैसे चूकेगी ? हाय न जाने अब और क्या २ हमको दुर्गति न भोगने पड़ेगी ? ऐसी चिंता, आठ प्रहर उन सब लोगों के हृदय को लग गई कि जिस से उनको क्षण भर के लिये भी चैन न था ॥

—*****—

(५)

॥ रामोक्तिः ॥

—✻✻✻✻—

॥ २१० ॥ मन्ये दशरथांताय, मम प्रव्राजनाय च ॥
कैकेयी सौम्य संप्राप्ता, राज्याय भरतस्य च ॥ १ ॥

॥ २११ ॥ अपीदानीं तु कैकेयी, सौभाग्यमदमोहिता।
कौसल्यां च सुमित्रां च, सा प्रबाधेत मत्कृते ॥ २ ॥

॥ २१२ ॥ माता स्मत्कारणा द्देवी, सुमित्रा दुःख मावसेत् ॥ अयोध्या मित्त एव त्वं, काले प्रविश लक्ष्मण ॥ ३ ॥

॥ २१३ ॥ अह मेको गमिष्यामि, सीतया सह दण्डकान् ॥ अनाथायाहि नाथस्त्वं, कौशल्याया भविष्यसि ॥ ४ ॥

॥ २१४ ॥ क्षुद्रकर्मा हि कैकेयी, द्वेषा दन्याय माचरेत्।
परिद्द्याद्धि धर्मज्ञ, गरं ते मम मातरं ॥ ५ ॥

भा॰—रामचंद्र को बन में गए थोड़ेही दिन हुए थे तब की बात है कि वे, एक दिन अपने लघु भ्राता लक्ष्मण से बोले, कि भैया जब से मैं इधर आया हूं, तब से मुझे माता केकयी की करतूत पर विचार करते हुए अपार सोच बढ़ जाता है—कहने को तो उस के दोही मनोरथ मुख्य हैं, परंतु इतने ही से अयोध्या में शांति का रहना बहुत असंभव है—सत्य स-

मझ कि मेरा यह वनवास पिता की मौत का मूलकारण है अर्थात् ज़रूर वे मेरे वियोग से बहुत जल्द अब मर जावेंगे—इस दूसरे वज्रपात से हमारी व तुम्हारी माता की क्या दशा होगी, उसे तुम स्वयं अच्छी तरह जान सक्ते हो—वे दोनों ज़रूर मृतप्राय हो जावेंगी, लेकिन हमारी तुम्हारी आशा में फिर भी वे किसी न किसी तरह अपने प्राणों को बचावेंगी, सो उस क्षुद्रकर्मा केकयी से कभी न सहा जायगा, क्योंकि अभी उसको पूर्ण निश्चय है, कि ये दोनों इन दोनों ज़बरदस्त चोटों से तुरंत मर जावेंगी—वैसा होता जब वह न देखेगी तब राज्य के लालच और मोह से उस नीचबुद्धि, क्षुद्रकर्मा को यह सूझेगी, कि अब इन दोनों को विष देदेना चाहिये, बस वह बैरिन और अन्यायिन् अवश्य भैया लक्ष्मण वैसा ही कर छोड़ेगी, इस लिये तुम तुरंत अयोध्या को जाओ और उन दोनों अनाथाओं के बने वैसे झटपट जाकर प्राण बचाओ, मैं अकेला सीता सहित दंडकारण्य को आनन्द से चला जाऊंगा इस की तुम बिलकुल, चिन्ता मत करो ॥

—*****—

(६)

॥ सुमंत्रोक्तिः ॥

—:*:*:—

॥२१५॥ ततो निर्धूय सहसा, शिरो निश्वस्य चासकृत्॥
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य, दंतान् कटकटाय्यच॥ १॥
॥ २१६॥ लोचने कोपसंरक्ते, वर्णं पूर्वोचितं जहत् ॥
कोपाभिभूतः सहसा, संताप मशुभं गतः॥ २ ॥
॥२१७॥ मनःसमीक्षमाणश्च, सूतो दशरथस्य च॥

कंपयन्निव कैकेय्या, हृदयं वाक्‌शरःशितैः ॥ ३ ॥
॥२१८॥ वाक्यवज्रै रनुपमै. निर्भिंद न्निव चाशुभैः ॥
कैकेय्याः सर्वमर्माणि, सुमंत्रः प्रत्यभाषत ॥ ४ ॥
॥२१९॥ यया त्वया पतिस्त्यक्तो, राजा दशरथः स्वयम्॥
भर्ता सर्वस्य जगतः, स्थावरस्य चरस्यच ॥ ५ ॥
॥२२०॥ नह्य कार्यतमं किंचि, त्तव देवीह विद्यते ॥
पतिघ्नीं त्वा महं मन्ये, कुलघ्नी मपि चांततः ॥ ६ ॥
॥२२१॥ यन्महेंद्र मिवाऽजय्यं, दुष्प्रकंप्य मिवा चलं॥
महोदधि मिवाऽक्षोभ्यं, संतापयसि कर्मभिः ॥ ७ ॥
॥२२२॥ मा वमंस्था दशरथं, भर्तारं वरदं पतिं ॥
भर्तु रिच्छाहि नारीणां, पुत्रकोट्या विशिष्यते ॥ ८ ॥
॥२२३॥ यथा वयो हि राज्यानि, प्राप्नुवंति नृपक्षये ।
इक्ष्वाकुकुलनाथे ऽस्मिं स्तं लोपयितु मिच्छसि ॥ ९ ॥
॥२२४॥ महाब्रम्हर्षि सृष्टा वा, ज्वलंतो भीमदर्शनाः ॥
धिग्वाग्दंडा न हिंसांति, रामप्रव्रा जने स्थिताम् ॥ १० ॥
॥ २२५ ॥ आम्रं छित्वा कुठारेण, निंबं परिचरे त्तु कः ॥
यश्चैनं पयसा सिंचे, न्नैवास्य मधुरो भवेत् ॥ ११ ॥
॥२२६॥ आभिजात्यंहि ते मन्ये, यथा मातु स्तथैवच ॥
नहि निंबा त्स्रवे त्क्षौद्रं लोके निगदितं वचः ॥ १२ ॥

भा०—राजा दशरथ का कहा केकयी नहीं मानती यह देख, सुमंत्र मंत्री को बड़ा ही अनिवार्य क्रोध आया–जिस से उस के नेत्र अँगारसम लाल हो गये उसी वेग में उस ने बड़े ज़ोर से दांत कटकटा कर कहा कि अरी अभागिन जिस ने सब जगत् के स्वामी अपने पतिदेव को ताक़ में धर दिया उसे और क्या अकर्तव्य अब बाक़ी रहा—ऐसी ही दुष्टा, पतिघ्नी और कुलघ्नी कहाती हैं–देख, जल्द होश में आकर राजा के प्रताप और गुणों का स्मरण कर–जिसको इंद्रादि देव डरें और सब उत्तमोत्तम उपमा जिसे छाजें उस अपने परम पूज्य दैवत का अपमान करना तेरे सर्वनाश का हेतु है–सो मत कर–किरोड़ पुत्रों से बढ़कर पति का दर्जा कहा है सो सब भूल कर केवल एक अकेले अपने पुत्र का हित सोच रही है उस में हानि क्या २ होगी–इस का विचार तूं तनक भी नहीं करती—स्पष्ट कहे देता हूं कि तेरे इस महादुष्ट व महाभ्रष्ट मनोरथ से महाराजा दशरथ तत्काल मर जावेंगे और उन के मरते ही संपूर्ण राज्य पाट और यह राज्यकुल, ज़रूर नष्ट हो जावेगा—ऐसा निश्चय तूं समझ ले–कहो फिर तेरी इच्छा और तेरा विभव कहां रहेगा ! क्या इन होनहार समस्त अनर्थों की शांति फिर तूं वा तेरी दासी वह महा दुष्टा कुब्जा वा तेरा छोकड़ा भरत कर लेवेगा ? कभी नहीं ३

रानी ख़ूब समझ ले कि जैसी इस समय तूं सब से विरुद्ध है, उसी तरह बाक़ी सब रानी, सब मंत्री सब अधिकारी, सब सेवक, सब सेना और सब प्रजा, तुझ से विरुद्ध हैं–इस लिये जताएं देता हूं कि देख, इन सब अनर्थों से ख़ुद बच और अपने सब राज्य पाट को भी बचा तथा सत्य समझ कि जो सुख, सन्मान और ऐश्वर्य तूने पति के राज्य में भोगा, उस का लक्षांश भी अब तूं कभी पुत्र के राज्य में नहीं भोग सकेगी सो तूं अभागिन उन सब अनुपम सुखोपभोगों का पलटा आज इस प्रकार उलटा, राजा को दे रही है, कि उन के परम प्राणप्यारे पुत्र रामचन्द्र को घर से निकारें देती है—धिक्कार है तेरी इस महा भ्रष्टबुद्धि पर–यदि यही हाल तेरा रहा तो ज़रूर तुझ पर बड़ी २ भयंकर गाजें अर्रा २ कर गिरेंगी—भला तुझ ऐसी मतिहीना के सिवाय और कौन ऐसा

होगा जो आम के पेड़ को काटकर उस ठौर नीम के वृक्ष को जमावे और उसे दूध से सींचे, जैसे ऐसे दूधसिचे नीमों से भी कभी दाखसम मीठे फल, पैदा नहीं होते—उसी तरह हम सब लोग, तेरे समान तेरे पुत्र को भी समझ रहे हैं ॥

—*****—

(७)

॥ सचिवांतरोक्तिः ॥

—:*:*:*:—

॥ २२७ ॥ अतिप्रमत्ते दुर्मेधे, कैकेयि कुलपांसनि ।
वंचयित्वा तु राजानं, न प्रमाणेव तिष्ठसि ॥ १ ॥

भा०—दूसरा मंत्री कहता है— अरी बेहोश, अरी मदमस्त, अरी दुर्बुद्धिन, अरी चांडालिन् अरी कुलकलंकिन्, तूं ख़ूब ठगले राजा को और कर ले जी में आवे वैसी सब उलट पलट अपने मन की, परन्तु इन अपने कुलच्छिनों से कभी तूं, आँगे कोई मनचीता सुख, वा किसी विचारशील पुरुष से इज्ज़त, नहीं पावेगी बस इतना वचन हमारा भी ख़ूब अच्छी तरह तूं याद रख ॥

—*****—

(८)

॥ भरतोक्तिः ॥

—:*:—

॥ २२८ ॥ श्रुत्वाच सपितु र्वृत्तं, भ्रातरौच विवासितौ ।
भरतो दुःखसंतप्तो, इदं वचन मब्रवीत् ॥ १ ॥
॥ २२९ ॥ किंनु कार्यं हतस्ये ह, मम राज्येन शोचतः।
विहीनस्याथ पित्रा च, भ्रात्रा पितृसमेनं च ॥ २ ॥
॥ २३० ॥ दुःखे मे दुःख मकरो, व्रणे क्षार मिवा ददाः ।
राजानं प्रेतभावस्थं, कृत्वा रामं च तापसं ॥ ३ ॥
॥ २३१ ॥ मृत्यु मापादितो राजा, त्वया मे पापदर्शिनि ।
सुखं परिहृतं मोहा, त्कुलेस्मि न्कुलपांसनि ॥ ४ ॥
॥ २३२ ॥ नन्वार्योपिच धर्मात्मा, त्वयि वृत्ति मनुत्तमां।
वर्तते गुरुवृत्तिज्ञो, यथा मातरि वर्तते ॥ ५ ॥
॥ २३३ ॥ तथा ज्येष्ठा हि मे माता, कौसल्या दीर्घ-
दर्शिनी । त्वयि धर्मं समास्थाय, भगिन्या मिव
वर्तते ॥ ६ ॥
॥ २३४ ॥ तस्याः पुत्रं महात्मानं, चीर वल्कलवाससं।
प्रस्थाप्य वनवासाय, कथं पापे न शोचसे ॥ ७ ॥

॥ २३५ ॥ कौसल्यां धर्मसंयुक्तां, वियुक्तां पापनिश्चये ॥ कृत्वा कं प्राप्यसे ह्यद्य, लोकं निरयगामिनि ॥ ८ ॥

॥ २३६ ॥ उत्पन्नातु कथं बुद्धि, स्तवेयं पापदर्शिनि । साधुचारित्रविभ्रष्टे, पूर्वेषां नो विगर्हिता ॥ ९ ॥

॥ २३७ ॥ तां तथा गर्हयित्वांतु, मातरं भरत स्तदा। रोषेण महता विष्टः, पुनरेवा ब्रवीद्वचः ॥ १० ॥

॥ २३८ ॥ राज्याद् भ्रंशस्व कैकेयि, नृशंसे दुष्टचारिणि। परित्यक्तासि धर्मेण, मा मृतं रुदती भव॥११॥

॥ २३९ ॥ भ्रूणहत्या मासि प्राप्ता, कुलस्यास्य विनाशकृत्। कैकेयि नरकं गच्छ, माच तातसलोकतां ॥१२॥

॥ २४० ॥ मातृरूपे ममा मित्रे, नृशंसे राज्यकामुके । न ते ह मभिभाष्यो ऽस्मि, दुर्वृत्ते पतिघातिनि ॥ १३ ॥

॥ २४१ ॥ इत्येव मुक्त्वा भरतो महात्मा, प्रियेतरै र्वाक्यगणै स्तुदं स्ताम् । शोकार्दित श्चापि ननाद भूयः, सिंहो यथा मंदरकंदरस्थः ॥ १४ ॥

॥ २४२ ॥ कौसल्या च सुमित्रा च, या श्चान्या मम मातरः । दुःखेन महता विष्टा, स्त्वां प्राप्य कुल दूषिणीं ॥ १५ ॥

॥ २४३ ॥ न त्व मश्वपतेः कन्या, धर्मराजस्य धी-
मतः ॥ राक्षसी तत्र जातासि, कुलप्रध्वंसिनी
पितुः ॥ १६ ॥
॥ २४४ ॥ यत्त्वया धार्मिको रामो, नित्यं सत्यपरा-
यणः । वनं प्रस्थापितो वीरः, पितापि त्रिदिवं
गतः ॥ १७ ॥
॥ २४५ ॥ यस्याः पुत्रसहस्राणि, सापि शोचति का-
मधुक् । किं पुन र्या विना रामं, कौसल्या वर्तयि-
ष्यति ॥ १८ ॥
॥२४६॥ एकपुत्रा च साध्वी च, विवत्सेयं त्वया कृता ॥
तस्मात्त्वं सततं दुःखं, प्रेत्य चेह च लप्स्यसे ॥ १९ ॥
॥ २४७ ॥ सा त्व मग्निं प्रविश वा, स्वयं वा विश
दंडकान् । रज्जुं बध्वाऽथवा कंठे, नहि तेऽन्य त्परा-
यणम् ॥ २० ॥

भा०—जिस समय भरत अपने, नाना के घर से आया और पिता की मृत्यु सुन, शोक करने लगा, उस समय उसकी माता केकयी ने कहा कि बेटा, तूं व्यर्थ ऐसा दुःख क्यों करता, मैंने तो प्रथम से ही तेरे लिये राज्य ले रक्खा है—उसका तूं आनन्द से उपभोग कर यह सुन, भरत आग बबूला हो बोला कि अरी अभागिन, तूं मेरे घावों पर निमक मत छिड़क चूल्हे में डाल अपने उस राज्य पाट को, जिस के कमाने की तूं दुष्टा बड़ाई मार रही है—तूने राज्य नहीं कमाया, किंतु अपना और मेरा

मुख ऐसी अमिट कारख से घर लीपा है कि वह कलंक, अब किसी तरह प्रलय तक नहीं धुलेगा।

अरी दुष्टा, अरी अभागिन, अरी कुलविनाशिन, तुझ ऐसी हत्यारी और कुलकलंकिन स्त्री, आज तक किसी ने कहीं देखी सुनी न होगी–तूने मेरे सब सुखों को खो दिया, मेरे पिता के मरण का अभी समय नहीं था, ज़बरदस्ती तुझ महा पापिन् ने उस के प्राण हर लिये–उस के पीछे पिता के समान मेरा संरक्षक मेरे प्राणों का त्राता, मेरा बड़ा भाई रामचन्द्र मुझे था, हा !!! उसे तूने प्रथम से ही तापसी बनाकर निकाल दिया, कहो किस विध और किस आधार पर अब मेरा जीवन हो ?

हायरी पापिन्, तूने मेरे सन्मुख महादुःखों के पर्वत, खड़े कर दिये–हाय तूने व्यर्थ, मेरे बड़े भाई को अपार दुःखों में फांस दिया–अरी सत्यानाशिन वह महा धर्मात्मा, परमआर्य, गुरुवृत्ति का जानकार मेरा परम प्राणप्रिय बंधु रामचन्द्र, सदा तुझे अपनी सगी माता के समान, परम नम्र भाव से मानता और पूजता रहा और उस की जननी मेरी, सच्ची जेष्ठमाता साक्षात् धर्म की मूर्ति, कौशल्या अपनी लहुरी बहन के समान महा प्रेम के साथ तुझे हँसाती और खिलाती रही उसी महाकृपिला के परम प्राणप्रिय पुत्र को निरपराध, इस प्रकार निकाल देने में तुझ चांडालिन की छाती हाय कैसे हुई– हे नरकगामिन्, महा पापिन, इस का शोक क्यों तुझे नहीं होता ?

फिर बड़े रोष से सिंह के समान डींग मार कर भरत बोला, कि हे दुष्टे, हे भ्रष्टे, हे मातारूपी मेरी बैरिन्, हे चांडालिन हे कुलघातिन्, हत्यारी, हे पिता विनाशिन्, हे नृशंसे, हे राज्य की लोभिन् तेरी इस महानिंद्य करतूत पर हज़ारों बल्कि लाखों लानत और करोड़ों धिक्कार साफ़ २ देकर कहता हूं कि तूं कुलकलंकिन, हज़ारों भ्रूणहत्या की करने वाली घोर नरक को प्राप्त हो, और फिर कभी तुझे पतिलोक का दर्शन स्वप्न में भी न होय— हायरी भ्रष्टबुद्धिन, तूं कैसे ये महा अनर्थ कर बैठी ? इस के पलटे में तूं राज्य का स्वतंत्र सुख न पाकर मुझे मरा देख, और धाय मार २ कर ख़ूब रुदन कर–हायरी चांडालिन् तूने

कौशल्या व सुमित्रा आदि सब मेरी माताओं को विधवा और विवत्सा करके महा दारुण दुःख सागर में डुबोदिया ॥

हे कुलदूषिन, हे वंशविनाशिन, तूं राजा अश्वपति के घर कन्या नहीं किंतु राक्षसी पैदा हुई—इसी लिये तूने मेरे महा प्राणप्रिय व महाशूर भाई रामचन्द्र को, निकाल कर अपने पति को खा लिया—कठोरी अभागिन् व निर्दयिन् अब निराधार कौशल्या, कैसे जिये ! और इन महापापों का फल तूं अनेक जन्म भोगेगी वा नहीं ? हटजा तूं मेरे सामने से कभी मैं अब तुझ से नहीं बोलूंगा और तूंभी अब से कभी भूल करभी मेरे सन्मुख न आना, बल्कि अपने इन सब पातकों के प्रायश्चित्तों में तूं कै तो आगी में प्रवेश कर, किंवा महा भयंकर अरण्य में निकल जा, अथवा अपने हाथों अपने गले में रस्सी फांस कर मरजा, सिवाय इस के और कोई प्रायश्चित्त वा तरणोपाय, तेरी भलाई के अर्थ, अब इस संसार में अन्य नहीं है ॥

—*****—

(९)

॥ कौशल्योक्तिः ॥

—*****—

॥ २४८ ॥ एवंहि क्रोशत स्तस्य, भरतस्य महात्मनः । कौसल्या शब्द माज्ञाय, सुमित्रां चेद मब्रवीत् १ ॥

॥ २४९ ॥ आगतः क्रूरकर्मायाः कैकेय्या भरतः सुतः । तमहं द्रष्टु मिच्छामि भरतं दीर्घदर्शनम् २ ॥

भा०—विदित हो कि ऊपर लिखे ऽनुसार केकयीभवन में शोक से संतप्त हुआ भरत, जिस समय सिंह के समान गरज रहा था, उस समय कौशल्या जी ने चौंक कर कहा, कि हाय, आज यह क्या नवीन झगड़ा

उपस्थित हुआ—उसी क्षण, उधर कान देने से उन को मालूम हुआ कि अरे यह तो भरत हाय २ कर रहा है—तब वे अति, व्याकुल होकर सुमित्रा से बोलीं, कि अरी बहन सुमित्रा, देख उस क्रूरकर्मा केकयी का पुत्र भरत आगया सा जान पड़ता है—मुद्दत से बिछुड़े उस परम प्यारे अपने पूत को मैं अभी इसी समय, देखना चाहती हूं—उठ जल्दी, ऐसा न हो, कि वह बिगड़ कर कहीं अपने वा अपनी माता के प्राणों पर बिता-दे—हायरी बहन, न जाने मुझ कमबख़्तिन के नसीब में क्या २ देखना अभी और नहीं बदा है—इस प्रकार रोती व घबराती हुई वे दोनों रानी भरत से मिलने को दौड़ीं ॥

अब देखो, और टुक सोचो, इन कौशल्या जी महारानी की इस सज्जनता की बात को, कि जिस महादुष्टा केकयी ने बेमतलब इतना, हद्द से अधिक इन के साथ सौतिया डाह करके इन को धूल में मिला दिया, उस के प्राणों पर उस का बेटा कहीं न बितादे, इस बुद्धि से उसे बचाने को वे बेचारी महाशोकसागर से निकल कर धांईं—और जिस की दुष्टकरतूत पर दूसरों ने उसे लाखों दुर्वचन कहे उस के लिये इन कौशल्या जी के मुख, केवल क्रूरकर्मा मात्र शब्द, सुनने में आया, तभी वे महा साध्वी कहांईं—सत्य तो यह है कि इन कौशल्या जी के हृदय में धर्म के दसो लक्षण, पूर्ण रीति से निवास करते थे, बस ऐसी ही सब स्त्रियें बनें, तब वे पतिव्रता कहा सक्ती हैं—नहीं तो कदापि नहीं ॥

॥ इति रामायणांशसार प्रथमखंडः समाप्तः ॥

—*****—

॥ अथप्रस्तावांतरम् ॥

—*******—

इस प्रकार नव विभागात्मक यह प्रथमखंड समाप्त हुआ—कहो ऐसी कौन राक्षसी स्त्री इस संसार में होगी, जिसे इस महा कृत्या केकयी का हट और बोल चाल आदि दुष्टता देख घिन वा लज्जा न उपजेगी, अस्तु अब यहां से आगे द्वितीय खंड, चलेगा उसे देख सुन सब बड़े घराने वाली उत्तम स्त्रियें अपने सब मनचीते काम, बनालेवें, इस महा प्रशंस्य खंड के सब आठ विभाग हैं—उन में से पांच कथा, ऐसी परम सुंदर व रमणीय व परमपावन हैं कि जिन को देख सुन कर हज़ारों बहू बेटियां अवश्य उन के समान धीरे २ अपना बोल चाल, सुधार कर बड़े सुख सौभाग्य के साथ प्रशंसा प्राप्त करेंगी—इसके पीछे उनको तीन छोटे २ विभाग रामचरित्र के देख मिलेंगे उन को देख सुन हमारी सब प्यारी बहू बेटियां अपनी संतान को सुधारेंगी अर्थात् जैसा शील जैसा सुभाव जैसा धर्म जैसा वीर्य जैसा पराक्रम जैसी गुरुभक्ति जैसी मातृभक्ति जैसी पितृभक्ति जैसा बंधुप्रेम जैसा प्रजावात्सल्य व समस्त सद्विद्यानैपुण्य आदि हज़ारों सद्गुण रामचन्द्र जी ने अपने समस्त जन्म में प्रकाशित कर दिखाए वैसे सब उत्तम गुण बच्चपन से अपने सब प्यारे बाल बच्चों को सब स्त्रियें अवश्य सिखावें, और सदा उन को दुष्ट बालकों के समागम और दुष्ट बोल चाल से, बचाकर सत्य मृदु और मधुर भाषण करना सिखावें॥

प्यारी बहू बेटियों सारांश मेरे कथन का आरम्भ से अंत तक केवल यहीं एक चला आता है कि "गुणलुब्धाः स्वय मेव संपदः" संसारकी संपूर्ण सुख संपत्तियां, सद्गुणों में ही रहती हैं—इस लिये उन समस्त तारीफ़ी गुणों से तुम विभूषित हो अर्थात् उन का संग्रह, जैसे तुम को

करते बने वैसे तुम अवश्य करो, सो तभी होगा जब तुम अपना कुटिल स्वभाव, ऊपर कहे अनुसार प्रथम सुधार लोगी अर्थात् वह अभी जो चलनी के समान है सो न रह कर सूप के समान हो जाना चाहिये—बस उसी दम सब तुम्हारे मन चीते कारज, बनजावेंगे। यद्यपि यहां चलनी और सूप के स्वभाव की विशेष कैफ़ियत लिखना कुछ आवश्य नहीं क्योंकि उनका व तुम्हारा साथ सदैव से बहन भाई के समान चला आता है परंतु जो फूहरें ख़ास अपने आजन्मिक नीच सुभाव से ही जन्मभर वाक़िफ़ नहीं हो पातीं, वे चलनी वा सूप के स्वभावों को कैसे बता सकेंगी इस लिये यहां उसका लिख देना ही ठीक जान पड़ता है ॥

विदित हो कि तुम्हारी चलनी बहन का सुभाव, ऐसा ख़राब है कि वह गुणरूप जो सार मैदा आदि पदार्थ, उसे फेंककर महा तुच्छ चीज़ जो बूर, उसे अपने में रख छोड़ती है—उस मुंडो के ख़िलाफ़ अर्थात् महा तारीफ़ के लायक़ सुभाव है तुम्हारे सूप भाई का, कि जो संपूर्ण कूरा करकट को फेंक फटकार कर सर्वोत्तम गुणरूप सार पदार्थ जो गेहूं वा चांवर उसे अपने में बचा छोड़ता है—बस इसी प्रकार दुर्गुणों को छोड़कर सुंदर साररूप गुणों का संग्रह, सब बुद्धिमान् करते हैं वैसा ही सब स्यानी व होशियार बहू बेटियों को निरंतर करते रहना चाहिये फिर देखो कैसी तारीफ़ और अनुपम सुख तुम को प्राप्त होते हैं * कदाचित् इसी नेक विचारसे बहुतसी जाति के लोग गौने की बिदा में सूप धर दिया करते हों॥

॥ इति ॥

—*****—

* ॥ यत् कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्, परितोषो तरात्मनः ॥
तत् प्रयत्नेन कुर्वीत, विपरीतं तु वर्जयेद्दिति मनुः ॥ १ ॥

देखो मनुजी महाराज, स्पष्ट कहते हैं कि हे स्त्री पुरुषो तुम सदैव वे काम करते रहो जिन से कि तुम्हारे जीवात्मा को निरंतर आनन्द ही आनन्द होता रहे, तथा सदैव उन बातों व कामों से बचा करो जिन से कि तुम को घर वा बाहिर खेद उत्पन्न होताहो इति ॥

॥ अथ ॥

॥ रामायणांशसारद्वितीयःखंडः ॥

—:***:—

(१)

॥ कौसल्यानुतापः ॥

॥ २५० ॥ भर्ता तु खलु नारीणां, गुणवा न्निर्गुणोपि वा । धर्मं विमृशमाणानां, प्रत्यक्षं देवि दैवतम् ॥ १ ॥

॥ २५१ ॥ सा त्वं धर्मपरा नित्यं, दृष्टलोकपरा वरा । नार्हसे विप्रियं वक्तुं, दुःखितापि सु दुःखितम् ॥ २ ॥

॥ २५२ ॥ तद्वाक्यं करुणं राज्ञः, श्रुत्वा दीनस्य भाषितं । कौसल्या व्यसृजत् बाष्पं, प्रणालीव नवोदकं ॥ ३ ॥

॥ २५३ ॥ सा मूर्ध्नि बद्ध्वा रुदती, राज्ञी पद्म मिवांजलिम् । संभ्रमा दब्रवीत् त्रस्ता, त्वरमाणाक्षरं वचः ॥ ४ ॥

॥ २५४ ॥ प्रसीद शिरसा याचे, भूमौ निपतितास्मि ते । याचितास्मि हता देव, क्षंतव्या हं नहि त्वया ॥ ५ ॥

॥ २५५ ॥ नैषाहि सा स्त्री भवति, श्लाघनीयेन धीमता। उभयो र्लोकयो र्लोके, पत्या या ऽसंप्रसाद्यते ॥ ६ ॥

॥ २५६ ॥ जानामि धर्मं धर्मज्ञ, त्वां जाने सत्यवादिनं। पुत्रशोकार्त्तया तत्तु, मया किमपि भाषितं ॥ ७ ॥

॥ २५७ ॥ क्रोधो नाशयते धैर्यं, क्रोधो नाशयते श्रुतं। शोको नाशयते सर्वं, नास्ति तत्सदृशो रिपुः ॥ ८ ॥

॥ २५८ ॥ एवंहि कथयन्त्या स्तु, कौसल्यायाः शुभं वचः। मन्दरश्मि रभूत् सूर्यो, रजनी चाभ्यवर्तत ॥ ९ ॥

॥ २५९ ॥ अथ प्रल्हादितो वाक्ये, तया कौसल्यया नृपः। शोकेन च समाक्रांतो, निद्राया वश मेयिवान् ॥ १० ॥

भा०—अभी हम ऊपर लिख चुके हैं कि रामचन्द्र, वन को गए पीछे राजा दशरथ, केकयी के यहां से कौशल्या जी के महल में चले आए, तहां वे केवल छः दिन जीते रहे—उसी अवसर में किसी समय कौशल्या जी ने कहा कि महाराज आपने केकयी से राज़ी होकर उसे सब राज्य पाट, दे दिया उस का मुझे तनक भी शोक वा सन्ताप नहीं किंतु मुझे रह २ कर बड़ा रंज आपकी इस समझ पर होता है कि आपने मेरे प्राणाधार का इतना भी हक्क अपने यहां बाकी न रक्खा, कि जिस से वह नगर के किसी कोने में एक झोपड़ी बनाकर उस में बेचारा आपकी प्रजा के समान मुझ सहित पड़ा रहता और वहां भिक्षा मांग कर मुझे खिलाता—बस इतनेही से मुझे महाराज अब शांति थी, सत्य कहती हूं कि जो सुख, और आनन्द, उसमें मुझे रहता, सो कभी इस राजभवन में बैठ कर अब मुझे नहीं रहने का। यह सुन, राजा को बड़ाही खेद हुआ—उस को ज्यों त्यों सहन कर

बहुत धीरजके साथ वह बोला, कि प्यारी तुम अपने धर्मका अच्छी तरह ओर छोर तक जानतीं हो-इस लिये तुम को "भर्तातु खलु नारीणां गुणवा निर्गुणोपि वा" इत्यादि अनेक वाक्यों में लिखा पति का माहात्म्य भी, छिपा नहीं है-ऐसी महा विदुषी, व सच्ची पतिव्रता, जो तुम तिन को किसी तरह उचित नहीं कि अति दुःखित जो मैं, उस से ऐसी कठोर बातें इस समय कहो-मैं यह भी जानता हूं कि तुम इस समय, अत्यंत दुखी हो, तो भी तुम ऐसी पतिव्रता स्त्री को यह शोभा नहीं देता, कि पुत्र के मोह में फंस कर अपने पतिदेव का माहात्म्य और अपने संतारक पतिव्रतधर्म को एक महा ग्रामीणा स्त्री के समान भूल कर अपना एक जुदा ही दुखड़ा उस के सामने पसार बैठो-रानी मैंने साढ़े तीन सौ से भी अधिक सौतें, तुम्हारी छाती पर चढ़ाई तथापि तुम्हारा चित्त, वा पतिव्रत, कभी डिगा मैंने न देखा, सो तुम आज कैसीं बदलीं जाती हो—सोचो तो सही, कि कहीं किसी स्त्री के लिये यह भी लिखा है कि पुत्रदेवो भव, वा पतिवैरिणी भव" पति को अधिकार है कि वह चाहे जो करे परन्तु किसी भी स्त्री को तनक भी यह अधिकार नहीं कि वह उसकी किसी बात पर रूठे वा जी में आया वैसा उस को कूंच २ कर बोलने लग जाय-ऐसा करने वालीं दुष्टा, अवश्य नरक गामिनी होती हैं, उस पंक्ति में केकयी की भांत हे-देवी कौशल्या, तुम न जाबैठो।

इसप्रकार परमदीन होरहे जो महाराजा दशरथ उनका करुणाप्रपूरित वाक्य सुन कौशल्या जी की हिलकी बँध गई-तथा उनके नेत्रोंसे अटूट अश्रुधारा बहने लगीं—तुरन्त वे हाथ जोड़ त्राहि २ करतीं पति के चरणों में गिर पड़ीं-उस समय अजीब घबराहट उनके हृदयमें समारही थी-और वे बहुत कुछ प्रार्थना करनी चाहती थीं परन्तु बोलनेमें सर्वथा असमर्थ होगई थीं-परिणाम में "प्रसीद शिरसा याचे भूमौ निपतितास्मि ते" की धुन भरने लगीं और फिर बड़ी देर पीछे बोलीं कि महाराज, निःसंदेह मुझ दुष्टासे बड़ाही यह अपराध व प्रमाद इस समय हुआ, उसे आप अब जबतक क्षमा न करेंगे तबतक कभी यह दासी आप के चरणों में धरे अपने सिर को अब ऊपर नहीं उठा सक्ती तथा अति दीनता के साथ बहुतसा विलाप करके बोलीं

कि महाराज मुझे मरना कबूल है परंतु आपकी अप्रसन्नता के साथ जी ने में अत्यंत धिक्कार समझती हूं-मैं स्त्री धर्म को जानती हूं अतः स्पष्ट कहती हूं कि जिसका पति अप्रसन्न रहता है, उस अभागिन के अविसत्वर दोनों लोक नसजाते हैं-धन्य हैं आप जिन्हों ने तुरन्त, मेरी गफ़लत हटादी-पुत्र शोक के मारे आज यह दोष महाराज मुझ से होगया-क्योंकि क्रोध और शोक मनुष्य मात्र के बड़े ही प्रबल वैरी हैं, उन के फंदे में पड़े मनुष्य से जो न बने वह थोड़ा है-ऐसा समझ हे पतिदेव, हे राजन् आप मेरे अपराधों की क्षमा दीजिये मैं वारंवार आप के शरण हूं इस प्रकार बहुत सा विनय करके, कौशल्या देवी ने जब राजा को प्रमुदित कर लिया, तब उन के व राजा के चित्त की शांति हुई ॥

इस कथाको पढ़ कर जानना चाहिये, कि कौशल्याजी सच्ची पतिव्रता थीं तथा उन में ऊपर नोट १४ में लिखे धर्म के १० दसो लक्षण, अच्छी तरह विराजमान थे अतः उन को बिल्कुल यह अहंकार न था, कि मैं एक महा बड़े राजा की बेटी, और दूसरे महाराजाधिराज की ऐसी महा सन्मान वाली पटरानी हूं कि जिस के पीछे उस की ३५२ सौतेली रानियां, चलतीं हैं वा यह कि मेरा पुत्र, त्रिलोकी को जीतनेवाला है-किंतु उनका चित्त और समय निरंतर अपने महा बेश क़ीमती धर्म की रक्षा में लगा रहता था अर्थात् वे ख़ूब जानतीं थीं कि यह इस समय की चूक, और घमंड मुझे ज़रूर इस शरीर के छुटते ही नरक में जा डालेंगे-इस लिये वे हरदम चौकस रहतीं थीं, बस इसी प्रकार सब स्त्रियों को अपने २ धर्म में अति सावधान रहना चाहिये अन्यथा बड़ी ही ख़्वारी होगी इति ॥

(२)

॥ अहिल्यामोदः ॥

॥ २६० ॥ ततः सीतां महाभागां, दृष्ट्वा तां धर्मचा-

रिणीम् । सान्त्वयन्त्य ब्रवीद् वृद्धा, दिष्ट्या धर्मं म-
वेक्षसे ॥ १ ॥
॥२६१॥ त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते, मानवृद्धिं च मानि-
नि । अवरुद्धं वने रामं, दिष्ट्या त्व मनुगच्छसि॥२॥
॥२६२॥ नगरस्थो वनस्थो वा, शुभो वा यदि वा शुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता, तासां लोका महोदयाः॥३॥
॥ २६३ ॥ दु:शीलः कामवृत्तो वा, धनै र्वा परिवर्जितः ॥
स्त्रीणा मार्यस्वभावानां, परमं दैवतं पतिः ॥ ४. ॥
॥२६४॥ नातो विशिष्टं पश्यामि, बांधवं विमृशं त्यहम्।
सर्वत्र योग्यं वैदेहि, तपः कृत मिवा व्ययम् ॥ ५ ॥
॥२६५॥ न त्वेव मनुगच्छांति, गुणदोष मसत्स्त्रियः ।
कामं वक्तव्यहृदया, भर्तृनाथा श्चरंति याः ॥ ६ ॥
॥२६६॥ प्राप्नुवं त्युत्पथं श्चैव, धर्मभ्रंशंच मैथिलि ।
अकार्यवश मापन्नाः, स्त्रियो याः खलु तद्विधाः ॥७॥
॥ २६७ ॥ त्वद्विधास्तु गुणै र्युक्ता, दृष्टलोकपरावराः।
स्त्रियः स्वर्गे चरिष्यंति, यथा पुण्यकृत स्तथा ॥८॥
॥ २६८ ॥ तदेव मेतं त्वमनुव्रता सती, पतिप्रधाना
समयानुवर्तिनी । भवस्व भर्तुः सहधर्मचारिणी,
यश श्च धर्मं च ततः समाप्स्यति ॥ ९ ॥

॥ २६९ ॥ सात्वेघ मुक्ता वैदेही, त्वनुसूया ऽनसूयया ।
प्रतिपूज्य वचो मंदं, प्रवक्तु मुपचक्रमे ॥ १० ॥
॥ २७० ॥ नैतदाश्चर्य मार्यायां, यन्मां त्व मनुभाषसे ।
विदितं तु ममाप्येत, यथा नार्याः पति गुरुः ॥ ११ ॥
॥ २७१ ॥ यद्यप्येष भवे द्भर्ता, अनार्यो वृत्तिवर्जितः ।
अद्वैध मत्र कर्तव्यं, तथा प्येष मया भवेत् ॥ १२ ॥
॥ २७२ ॥ किं पुन र्यो गुणश्लाघ्यः, सानुक्रोशो जितेंद्रियः । स्थिरानुरागो धर्मात्मा, मातृवत् पितृवच्च यः ॥ १३ ॥
॥ २७३ ॥ आगछन्त्या श्च विजनं, वन मेवं भयावहम् ॥
समाहितं हि मे श्वश्र्वा, हृदये यत् स्थिरं मम ॥ १४ ॥
॥ २७४ ॥ पाणिप्रदानकाले च, यत्पुरा त्वग्निसंनिधौ ॥
अनुशिष्टं जनन्या मे, वाक्यं तदपि मे धृतम् ॥ १५ ॥
॥ २७५ ॥ न विस्मृतं मेतु सर्वं, वाक्यैः स्वैर्धर्म चारिणि ।
पतिशुश्रूषणा न्नार्या, स्तपो नान्य द्विधीयते ॥ १६ ॥
॥ २७६ ॥ सावित्री पतिशुश्रूषां, कृत्वा स्वर्गे महीयते ।
यथा वृत्तिश्च याता त्वं, पतिशुश्रूषया दिवं ॥ १७ ॥
॥ २७७ ॥ वरिष्ठा सर्व नारीणा, मेषाच दिवि देवता ।
रोहिणी न विना चंद्रं, मुहूर्त मपि दृश्यते ॥ १८ ॥

॥२७८॥ ततोनुसूया संहृष्टा, श्रुत्वोक्तं सीतया वचः ॥
शिरस्याघ्राय चोवाच, मैथिलीं हर्षयं त्युत ॥ १९॥
॥२७९॥ एवं विधाश्च प्रवराः, स्त्रियो भर्तृदृढ़वृताः ।
देवलोके महीयंते, पुण्येन स्वेन कर्मणा ॥ २० ॥

भा०—वनवास में श्री सीताजी, रामचंद्र सहित जिस समय, अत्रि-ऋषि के आश्रम में पहुंचीं उस समय सीता जी को पास बिठा कर ऋषिपत्नी श्रीमती अनुसूया जी ने उनकी पीठ पर हाथ फेरकर बड़े प्रेम के साथ कहा कि आज मुझे, हे प्यारी बहू—तुझे देख बड़ा ही हर्ष होता है—धन्य है तूं और तेरे वे माता पिता, जिनके यहां तेरा जन्म हुआ, तेरे विचार, तेरी चाल, और तेरी बुद्धि की मुझ से प्रशंसा नहीं हो सक्ती—हे राजदुलारी, शाबास है तुझे, जो घर के राज्यादि सब सुखों को और जात बिरादरी को और इतर सब अपने प्रेमी जनों को तुच्छ करके इस महाभयानक जंगल में तूं पति के संग चली आई और सब प्रकार के कष्टों को उठा रही है—इसी का नाम पतिव्रतधर्म है ॥

और तत्व, इस धर्म का केवल यही है कि अपुन को अपने भाग्यसे जैसा पति मिले उसको उसी क्षण से स्त्रीजाति देवरूप समझ कर उसकी निष्कपट सेवा करने लगजाय और कभी उसकी बुराई वा दोषों वा ग़रीबी पर—अपना ध्यान, वह न जाने दे—और न कभी अपने सुखों को देखे और न दुःखों से कभी डरे—सो हे प्यारी बहू ये सब उत्तमोत्तम गुण, तुझ में देख, मुझे अपार हर्ष होरहा है—ऐसी ही स्त्रियें अनंतकाल तक स्वर्गीय सुख भोगती हैं—और इसी प्रकार जो दुष्टा, पति को देवतारूप न समझ कर अपने तुच्छ सुखों के लिये, नाना प्रकार के क्लेशजाल बढ़ाती हैं वे अनंत काल तक नरक वास करती हैं—अस्तु अब मैं हे राजकुमारी कुछ तेरी बातें, सुना चाहती हूं ।

उस समय सीता जी, अनुसूया जी के उपदेशों से अति संतुष्ट होकर

बोलीं कि महारानी जी, अहोभाग्य मेरा है कि जिससे मैं ने आपके आज अमोल्य दर्शन पाए और आपका बड़ा ही अनुग्रह मेरे ऊपर यह हुआ, कि आपने मेरे कल्याणार्थ मुझे पतिव्रतधर्म का बहुत कुछ लाभ दिखाया—सचमुच स्त्रीजाति के लिये उसका पति अवश्य परम पूज्य व प्रत्यक्ष देव और साक्षात् गुरु है—उसका अपमान करनेवाली का मान, सचमुच कहीं नहीं हो सक्ता, आगे जितनी अधोगति को वह पहुंचे, उतनी थोड़ीही है—इस विषयक जितने वाक्य, आज आपने कृपा करके मुझे सुनाए वे सब अनमोल हैं—निःसंदेह कैसा ही बुरा, कैसा ही कृपण, कैसा ही अनार्य, कैसा ही दुराचारी, कैसा ही दोषी, कैसा ही पातकी, वा महापातकी, वा निर्दयी, पति क्यों न हो, स्त्री जाति की भलाई, कल्याण और हित उसी की सेवा और शुश्रूषा से है—अवश्य वह स्त्री के लिये साक्षात् देव है—कभी कोई भी स्त्री, इस विषय में ग़ाफ़िल न रहे, ऐसी मेरी पक्की समझ और संमति है ॥

जहां तक मैंने शास्त्रों में देखा और आप ऐसी विदुषी वा विद्वानों के मुख सुना वहां तक इस विषय में ऐसा ही सब का सिद्धांत मैंने पाया *

* या प्रियं प्रीणयेत् प्रीता, त्रिलोकी प्रीणिता तया ॥ निद्रिते च विनिद्राति, प्रथमं परि बुध्यति ॥ आकृष्टापिनचाक्रोशे, त्ताड़ितापि प्रसीदति ॥ एवं कुरु कृतं स्वामिन्, मन्यता मिति वक्ति च ॥ आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गच्छति सत्वर मिति ॥ व्यासः ॥ अर्थात् जो स्त्री सदैव अत्यन्त प्रसन्न रहकर हर प्रकार से अपने पतिदेव को यावज्जन्म प्रसन्न रखती है उस ने त्रिलोकी भर के संपूर्ण देवी देवता प्रसन्न किये वह समझे—स्त्री का परम धर्म यह है कि वह पति से प्रथम आप जगे और उससे पीछे सदैव सोवे तथा उस का पति कितना ही क्रुद्ध होकर हल्ला गिल्ला करे उस के उत्तर वा प्रत्युत्तर में वह कभी चूं तक न करे तथा उस की दारुण शिक्षा तक में वह सुप्रसन्न रहे और जब २ वह कहे कि अरी ऐसा कर तब २ उस के उत्तर प्रत्युत्तर में उसी समय हाथ जोड़ कर ऐसा अति नम्रता के साथ बहुत मृदु व मधुर उत्तर देवे कि बहुत अच्छा स्वामिन् ऐसा मैंने अभी कि-

अतएव मैं सब को छोड़ कर बड़े हट से अपने पति के साथ इधर आई हूं-बचपन में मेरे विवाह के समय मेरी माता ने और इधर आने के समय मेरी परम कृपालु सास ने, मुझे इसी प्रकार सत्य उपदेश, पतिव्रत रखने के अर्थ किया है-सो उसकी मुझे पूर्ण स्मृति है-परमात्मा की कृपा से मुझे पति, वैसे ही गुणरत्न मिला यदि बुरे से भी बुरा मिलता तो भी मैं कभी उस का साथ न छोड़ती-मुझे बन में अनेक क्लेशों का होना प्रसिद्ध है परन्तु वे मुझे तनक भी नहीं हड़ते, अपनी सेवा से जब पति का मुख, प्रफुल्लित देखती हूं—तब मार्ग के सब कांटे व खुपरे मुझे फूल हो जाते हैं ॥

इत्यादि अति मृदु मधुर व मनोहर बातें सुन कर, श्री अनुसूया जी रोम २ प्रसन्न हुई तुरन्त उन्हों ने सीता जी को अपने गले से लगाकर बहुवार उन के मुख व मस्तक का चुंबन किया, तथा अति हर्ष के साथ उनको एक सुहाग पिटारी लादी, और उसी समय उनको अनेक प्रकार से अलंकृत करके यह आशीर्वाद दिया, कि हे वधू-तेरा पति में प्रेम रोहिणी के समान अचल हो, तथा सावित्री के समान सब पतिव्रताओं में तेरा सुयश प्रसिद्धी पावे, और तेरा इंद्राणी के समान अखंड ऐवात(सौ-

---

या आप समझिये तथा जब २ उसका पति उसको बुलावे तब २ उसी क्षण घर के सब ज़रूरी तक के कार्यों को छोड़ कर तुरंत उस के सन्मुख दौड़ जाय और जो वह कहे वह सब चित्त लगाकर सुने और उस की सब व्यवस्था उस के कथनानुकूल कर दिखावे ॥ ऐसा व्यास जी महाराज का स्पष्ट कथन है ॥

रजोवती त्रिरात्रंतु, स्वमुखं नैव दर्शयेत् ॥ स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत् स्नाता न शुध्यतीति ॥ देवलः ॥ अर्थात् रजस्वला स्त्री के लिये ऐसा धर्म कहा है कि वह तीन दिन व तीन रात्रि तक अपना मुख व शब्द किसी पुरुष को न दिखावे न सुनावे जब चौथे रोज़ स्नान करके शुद्ध हो तब वह प्रगट फिरे और बोले ॥ ऐसा देवलऋषि का वचन है इस पर भी संपूर्ण स्त्री जाति का सदा ध्यान रहे ॥

भाग्य) व ऐश्वर्य हो, बेटी मैथिली सत्य समझ तुझ ऐसी ही दृढ़व्रता स्त्रियें देव लोक को सुशोभित करती हैं ॥

अब इस कथा की सुनने वाली सब स्त्रियें अनुसूया और श्रीमती सीता जी की कही हर एक बातपर अच्छी तरह ध्यान देकर देखें, सोचें और कहें कि किस की चाल व समझ ठीक है, अर्थात् उन दोनों की वा खास तुम्हारी—पश्चात् जो ठीक ठहरे उस का स्वीकार और ग़ैर ठीक का तुरंत परित्याग कर देना उन का स्यानपन है ॥

(३)

॥ सीतानुनयः ॥

—:****:—

२८० ॥ आर्यपुत्र पिता माता, भ्राता पुत्र स्तथा स्नुषा।
स्वानि पुण्यानि भुंजानाः, स्वं स्वं भाग्य मुपासते १ ॥
॥ २८१ ॥ भर्तु र्भाग्यं तु नार्येका, प्राप्नोति पुरुषर्षभ।
अत श्चैवाऽह मादिष्टा, वने वस्तव्य मित्यपि ॥ २ ॥
२८२ ॥ अचिंतयंती त्रीन् लोकां, श्चिंतयंती पातिव्रतम्।
अग्रत स्ते गमिष्यामि, भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि ॥ ३ ॥
॥ २८३ ॥ भर्तार मनुगच्छंति, भर्ता हि परदैवतम्।
यस्त्वया सह स स्वर्गो, निरयो यस्त्वया विना ॥ ४ ॥
२८४ ॥ इति जानन्परां प्रीतिं, गच्छ राम मया सह।

भा०—प्रसिद्ध है कि रामचन्द्र जी की इच्छा नहीं थी कि अपने साथ

सीता को विकट जंगलों में ले जाकर उन की और अपनी जान आपत्ति में डालें—परंतु उस समय बहुत कुछ समझाने पर भी सीता जी ने संग चलने का ही अत्यंत हट किया, तब रामचन्द्र को बदरजे लाचारी हां कहना पड़ा और वे उन को संग ले भी गए—परन्तु विदित रहे कि सीता जी का यह हट, वैसा न था जैसा कि इन दिनों कीदुष्टा स्त्रियों में बहुधा देखा जाता है—इस लिये उन के उस समय के बोल चाल का थोड़ा सा ढंग, यहां आँगे दिखाया जाता है—उस पर हमेशा हमारी सब बहू बेटी अपना ध्यान रक्खें, अर्थात् ठीक उस के अनुसार हर समय वे अपने पति से बोलना सीखें ॥

श्री सीता जी कहती हैं कि हे आर्यपुत्र रामचन्द्र इस जगत् में माता, पिता, भाई, और बहू बेटा, अपना २ जुदा प्रारब्ध रखकर पूर्वजन्मकृत पुण्यों के फलों (सुखों) को भोगते हैं— इन सब से स्त्री जाति की व्यवस्था निराली है—अर्थात् उस का संबंध बिलकुल पति के ही भाग्य से है—ठीक उसी के अनुकूल सब उपभोग उसे लगे हैं—इस कारण, आपसे पृथक् मैं नहीं रह सक्ती और न आप मुझे छोड़ सक्ते हैं बस इसी न्याय से मुझे संग, चलने की आज्ञा मिलना चाहिये—हे कृपानिकेतन, मेरा मुख्य धर्म, पतिव्रत अर्थात् पतिसेवा है अतः अहर्निश उसी की चिंता में मैं डूबी रहती हूं उस के सामने त्रिलोकी भर का सुख, मुझे अति तुच्छ, जान पड़ता है ॥

महाराज जी जिस का मुख्य अभिप्राय, सर्वथा आप को सुखी रखने का है, वह वनवास में सदैव आप से आँगे जगेगी व चलेगी और पीछे से खावेगी व सोवेगी अर्थात् अपने सुखों की दृष्टि से कभी आप पर आफ़त नहीं डालूंगी—ऐसा निश्चय समझ, हे पतिदेव मुझे अपने साथ चलने की आप कृपा करके जल्द आज्ञा दीजिये—तभी मेरे चित्त की शांति होगी—हे महाराजाधिराज किसी तरह मेरा वह व्रत, नष्ट न हो जाय जिस्में लिखा है कि जैसे छाया, अपने संबंध का साथ नहीं छोड़ती—उसी प्रकार कभी कोई पतिव्रता स्त्री अपने परमदैवत पति को छोड़ उस से जुदी न रहे—हे दयानिधि, सत्य समझिये, मुझे आप का समागम स्वर्ग,

और वियोग नरक के समान है—इस लिये प्रीति पूर्वक मुझे संग ले चालिये—एतदर्थ शतशः बरंच सहस्रशः हाथ जोड़कर आप को वारंवार प्रणाम करती हूं ॥

देखा सीता जी के बोल चाल का ढंग—इसी प्रकार अभी ऊपर इनकी सास का ढंग तुम देख चुकीं हो—बस इस प्रकार की पूज्यबुद्धि से जो स्त्रियें महा विनय व सत्कार के साथ अपने २ पति, और पति के घरवालों से, बात चीत करेंगीं, वे अवश्य अपने घरों में प्रतिष्ठा पावेंगीं और उन्हीं की सदा वहां चलता रहेगी और जो कदाचित् कभी उन की कोई बात किसी कारण, वहां न भी मानी जावेगी तो भी उनकी इज्जत और लाड़ प्यार में कभी यत् किंचित् भी अंतर नहीं आवेगा—कहो इन सुखों का कहीं ठीक है—उसे छोड़ जो कोई स्त्री, व्यर्थ भूंसने वाली कहावे, उससे क्या कहा जाय ?

---

(४)

॥ कौसल्योपदेशः ॥

———*****———

॥२८५॥ असत्यः सर्वलोकेऽस्मि,न्स ततं सत्कृताः प्रियैः।
भर्तारं ना नुमन्यन्ते, विनिपातगतं स्त्रियः ॥ १ ॥
॥२८६॥ एषः स्वभावो नारीणा, मनुभूय पुरा सुखम्।
अल्पा मप्यापदं प्राप्य, दुष्यंति प्रजहंत्यपि ॥ २ ॥
॥२८७॥ असत्यशीला विकृता, दुर्गा अहृदयाः सदा।
असत्य: पापसंकल्पाः, क्षणमात्र विरागिणः ॥ ३ ॥

॥ २८८ ॥ नकुलं नकृतं विद्या, न दत्तं नापि संग्रहः ।
स्त्रीणां गृह्णाति हृदय, मनित्य हृदया हिताः ॥ ४ ॥
॥२८९॥ साध्वीनांतु स्थितानांतु, शीले सत्ये श्रुते स्थिते ।
स्त्रीणां पवित्रं परमं, पतिरेको विशिष्यते ॥ ५ ॥
॥२९०॥ स त्वया नाव मंतव्यः, पुत्रः प्रव्राजितो वनं ।
तव देवसम स्त्वेष, निर्धनः सधनोपि वा ॥ ६ ॥
॥ २९१ ॥ विज्ञाय वचनं सीता, तस्या धर्मार्थसंयुतं ।
कृत्वां जलि मुवाचेदं, श्वश्रू मभि मुखे स्थिता ॥ ७ ॥
॥२९२॥ करिष्ये सर्व मेवाह, मार्या यदनुशास्ति मां ।
अभिज्ञा स्मि यथा भर्तु, र्वर्तितव्यं श्रुतंच मे ॥ ८ ॥
॥२९३॥ न मा मसज्जने नार्या, समानयितु मर्हति ।
धर्मा द्विचलितुं नाह, मलं चंद्रादिव प्रभा ॥ ९ ॥
॥२९४॥ ना ऽतंत्री विद्यते वीणा, ना चक्रो विद्यते रथः ।
ना पतिः सुख मेधेत, या स्या दपि शतात्मजा ॥ १० ॥
॥२९५॥ मितं ददाति हि पिता, मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्यतु दातारं, भर्तारं का न पूजयेत् ॥ ११ ॥
॥२९६॥ साह मेवं गता श्रेष्ठा, श्रुतधर्मपरावरा ।
आर्ये कि मवमन्येयं, स्त्रियो भर्ता हि दैवतं ॥ १२ ॥
॥२९७॥ सीताया वचनं श्रुत्वा, कौसल्या हृदयंगमं ।

शुद्धसत्वा मुमोचाश्रु, सहसा दुःखहर्षजं ॥ १३ ॥

भा०—बनवास के समय, जब सीता जी ने अपनी सास के चरण छूकर जाने की आज्ञा मागी, तब कौशल्या जी ने कहा कि प्यारी बहू—मैं तुमारी चाल से अति प्रसन्न हूं और मुझे यह भी निश्चय है कि तुम जिस उत्साह से जाती हो, उसीतरह आँगे पतिसेवा में तुम अति सावधान भी रहोगी, कदाचित् मार्ग के क्लेश पाकर कहीं तुम किसी तरह गड़ बड़ा न जाओ—इसलिये चार बातें आज तुमको समझाएं देती हूं—देखो इस संसार में दो प्रकार की स्त्रियें होती हैं—उनमें से कुछ सती अर्थात् पतिव्रता, और कुछ असती अर्थात् खुदगरज़, होती हैं ॥ २६ ॥

ये असती स्त्रियें, तभी तक अपने पति को अच्छा कहकर साथ देती हैं जौलों इनकी इच्छा और कहे अनुसार काम होता चला जाय, जहां इनकी इच्छानुसार कोई काम पति के हाथ से न हुआ वहां इन्हें सुख की जगह खेद होने लगा, ये कुलटा उसी क्षण, अपनी त्यौरी बदल कर मन आई वैसी बात चीत करने लग जाती हैं—वर्सों बल्कि उमर भर हररोज़ व हर क्षण हर प्रकार से बेचारा पति इनकी खातिर क्यों न करता चला आया हो परंतु ये दुष्टा, उसके सब उपकारों को भूलकर स्पष्ट कहेंगी कि तूने मुझे सदा दुख ही दिया वा कुछ और—इतना ही

॥ २६ ॥ देखो सती लक्षण.

गुरुजन पूजे ब्याह को नित उठ करें व्यवसाय ॥
पत राखे पति की कुलवधू आपुन बांझ कहाय ॥ १ ॥

॥ देखो असती लक्षण ॥

आः पाकं न करोषि पापिणि कथं, पापी त्वदीयः पिता ।
रंडे जल्पसि किं तवैव जननी, रंडा त्वदीया स्वसा ।
निर्गच्छस्व मम गृहात्, कुत स्तव गृहं, नाम्नैव तन्मामकं ।
हा करुणाकर देहि मेघ मरणं, भर्त्य मदीयं गतम् ॥ १ ॥

नहीं किन्तु ये चांडालिनें उसी क्षण से सैंकड़ो बल्कि हज़ारों मिथ्यादोष, बेधड़क अपने पति को लगाकर उस बेचारे विपत्तिग्रस्त को छोड़ तक देती हैं और कदाचित् बनी भी रहीं, तो उसे आठो याम, कल नहीं पड़ने देवेंगी—सारांश यह कृत्या तभी तक की साथिन है जबतक उसको पति से मनमाना सुख प्राप्त होता चला जाय, जहां उसमें फ़रक पड़ा वा पति पर कोई विपत्ति आखेली वा किसीतरह वह बेकार वा निर्धन होगया अथवा और कोई काम इसकी मर्ज़ी के विरुद्ध वह कर बैठा—तहां " न मैं तेरी न तूं मेरा" की कहानी तुरन्त आँगे आजाती है ॥

बहू कहां तक कहूं इनकी कथा तेरी इस चला चली में अब मैं तुझ से, उस समय जो ये न कहें वा न कर करा बैठें सो थोड़ा है—अतएव इनके सब दुष्टाचरणों की सब कैफ़ियत जानी जाय इस अर्थ, शास्त्रकारों ने ख़ूब ताख सुकाख कर इनके आठ नाम निरन्तर याद रखने के लिये प्रकाशित करदिये हैं—उनको हे बहू तूं अच्छी तरह याद रख—असत्यशीला, विकृता, दुर्गा, अहृदया, असती, पापसंकल्पा, क्षणिकचित्ता और अनित्यहृदया, ये वे आठ नाम हैं—इनमें से जिस नाम के लेने की जब २ ज़रूरत हो तब २ उसमें उससे पहिले सदा शब्द को जोड़ लिया करो—जैसे सदा असती, वा सदा विकृता, कहकर बोला करो और समझो कि इन आठों में से हरएक नाम सैंकड़ों ही दोषों से भरा है ॥

प्यारी बहू सत्य तो यह है कि इस प्रकार की राक्षसी कभी अपने बाप व पति के कुल को भी नहीं देखतीं कि मैं किस की बहू वा बेटी हूं और न वह कभी, पति की विद्या वा प्रतिष्ठा का कुछ विचार करती है इस के पति ने चाहे जो इसे दिया हो, और चाहे जितनी उस ने इस के साथ घड़ी २ भलाई भी की हो, और चाहे जैसा व चाहे जितना गेहना व कपड़ा आदि पदार्थ, इस के लिये उस ने संचित्त भी क्यों न कर रक्खा हो लेकिन बिगड़े पीछे सुधिष्णा की सगी बहन बनने वाली यह महा निर्लज्ज व कृतघ्नी स्त्री उस का रत्ती भर तक उपकार नहीं मानती परमात्मा ऐसी दुष्टा और महा व्यभिचारिणी का कभी किसी भले आदमी को मुख तक न दिखावे ।

दूसरे प्रकार की स्त्रियें, साक्षात् देवी होती हैं-उन्हीं को विद्वज्जन सती साध्वी और पतिव्रता कहते हैं-उनका शील, सत्य और पवित्र ज्ञान जन्मभर अति सराहनीय रहता है, उन सब में तुं सर्वथा वरिष्ठ है, तथापि समझाती हूं कि तुझे मार्ग में अनेक प्रकार के क्लेश होंगे उस दशा में कहीं तूं, मेरे बेचारे वनवासी पुत्र से नेत्र न फेर, बैठना— बेटी सच्ची सती वही है, जो धनी पुरुष से भी बढ़कर निर्धन पति को सदा सब तरह प्रमुदित रक्खे.

यह सुन सास के सन्मुख खड़ी सीता जी, हाथ जोड़ कर परम नम्र भाव से बोलीं, कि माता जी मैं सब इसी तरह करूंगी जैसी कि आप इस समय मुझे करने की आज्ञा कर रही हैं मैं प्रतिज्ञा पूर्वक आप से निवेदन करती हूं, कि आप कभी स्वप्न में भी किसी असती के साथ मेरी तुलना न करें-जैसे बिना तार के सितार नहीं बजती और न बिना चक्र के कोई रथ चलता है उसी प्रकार बिना पति, किसी सुशीला स्त्री की शोभा वा निर्वाह नहीं हो सक्ता-फिर वह शतपुत्रा वा इंद्र की भी बेटी क्यों न हो भला बिना चंद्र के कहीं चंद्रिका रही सुनी है-माता जी पिता भ्राता और पुत्र के दिये की गिन्ती हो सक्ती है और वे सब इसी लोक तक के साथी हैं परंतु पतिदेव की महिमा बड़ी ही विचित्र और अति अपार है-उसके दिये व किये का कभी प्रमाण ही नहीं हो सक्ता, तथा उसकी पवित्र सेवा से स्त्रीजाति के दोनों लोक बनजाते हैं, अतः हे महारानी जी मुझ से पतिदेव की प्रशंसा नहीं हो सक्ती—इस प्रकार सीता जी का अति मृदु मधुर और परम गंभीर व अति शांतिप्रद उत्तर सुन कौशल्या जी का हृदय, समुद्र की भांत उमड़ उठा तथा उनके विशाल नेत्रों से अटूट अश्रुधारा बहने लग गई—जितना उनको उस समय हर्ष हुआ उतना ही उनको अपार कष्ट भी हुआ-ज्यों त्यों पोंछ पुचकार कर उन्होंने सीता जी को अपने हृदय से जुदा किया ॥

बस ऐसी ही बोल चाल व प्रेम परतीत सब सास बहुओं में हो और ऐसा ही उपदेश हरएक सास अपनी बहू को सदा करे, न यह कि पराई बेटी समझ सदा हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाय, ऐसी दुष्टा सास

को सब जगत् थूकता है अतः सदैव सब बहूओं को पुत्री के समान पालना चाहिये बहुत सी दुष्टा स्त्रियें जन्मभर उस बहू को आठो पहर नाना-प्रकार के त्रास दिया करती हैं जिसके कि बाप ने इन्हें अच्छा दहेज नहीं दिया—कहो इसमें बेचारी उस लड़की का क्या दोष है ? और उस निरपराधिन को व्यर्थ ऐसा त्रास देना सरासर कसाईपन है वा नहीं ? ऐसा अधम काम किसी सास को कदापि न करना चाहिये क्योंकि उनकी उन महा निंद्य करतूतों से उन नरम दिलवाली बहुओं को (यदि वे मर न गई तो) अनेक ऐसे रोग तो अवश्य ही लग जाते हैं जिनसे कि उनका संपूर्ण जन्म नष्ट हो जाता है ॥

---

(५)

॥ सीतासंमतिः ॥

—— ***** ——

॥२९८॥ सुतीक्ष्णेनाऽभ्यनुज्ञातं, प्रस्थितं रघुनंदनम् ।
हृद्यया स्निग्धया वाचा, भर्तार मिद मब्रवीत् ॥ १ ॥
॥२९९॥ पुरा किल महाबाहो, तपस्वी सत्यवान् शुचिः ।
कस्मिंश्चि दभव त्पुण्ये, वने रतमृगद्विजे ॥ २ ॥
॥३००॥ यत्र गच्छ त्युपादातुं, मूलानि च फलानि च ।
न विना याति तं खड्गं, न्यासरक्षणतत्परः ॥ ३ ॥
॥३०१॥ ततः स रौद्राभिरतः, प्रमत्तो ऽधर्मकर्षितः ।
तस्य शस्त्रस्य संवासा, ज्जगाम नरकं मुनिः ॥ ४ ॥

॥३०२॥ क्वच शस्त्रं क्वच वनं, क्वच क्षात्रं तपः क्वच।
व्याविद्ध मिद मस्माभि, र्देशधर्मस्तु पूज्यताम् ॥ ५॥
॥ ३०३ ॥ कदर्यकलुषा बुद्धि, र्जायते शस्त्रसेवनात् ।
पुन र्गत्वा त्वयोध्यायां, क्षात्रधर्मं चरिष्यसि ॥ ६ ॥
॥ ३०४ ॥ नित्यं शुचिमतिः सौम्य, चर धर्मं तपोवने ।
सर्वं नु विदितं तुभ्यं, त्रैलोक्य मपि तत्वतः॥ ७ ॥
॥ ३०५ ॥ स्त्रीचापला देत दुपाहृतं मे, धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः । विचार्य बुध्या नु सहानुजेन, य द्रोचते तत्कुरु मा चिरेण ॥ ८ ॥ *
॥ ३०६ ॥ वाक्य मेत त्तु, वैदेह्या, व्याहृतं भर्तृभक्तया ।
श्रुत्वा धर्मे स्थितो रामः, प्रत्युवाचाथ जानकीं ॥ ९ ॥

* विदित होकि केवल इसी आठवें श्लोक तक की कथा आँगे भाषा में लिखी गई है—बाक़ी १२ श्लोकों के द्वारा रामचन्द्र जी ने सीता जी को उत्तर अति संतोष जनक यह दिया कि प्यारी, अभी तुम ऊपर ख़ुद कह चुकीं हो कि प्रजा पर विपत् देख क्षत्रियों को शस्त्र उठाना चाहिये, सो ये सब ऋषिगण अपनी प्रजा हैं—उन को राक्षसगण अनेक प्रकार से सता रहे हैं अतः मैं उन को सुखी कर देने की पक्की प्रतिज्ञा कर चूका हूं उस के विरुद्ध अब मैं कुछ नहीं कर सक्ता इस में मेरे प्राण जांय अथवा तुम वा भाई लक्ष्मण तक यदि छुटजाओ तो भी मुझे कुछ शोक न होगा—ऐसा निश्चय समझ तुम बिलकुल बे खटका हो जाओ तथा यह भी समझो कि यह मेरा क़थन तुम से अति प्रसन्नता के साथ है क्योंकि तुम ने जो कुछ इस समय अपनी समझ के अनुसार मुझ से कहा वह सब अति प्रशंसा योग्यही कहा है ॥ यह नोट सफा १७४ के पीछे पढ़ो ॥

॥३०७॥ हित मुक्तं त्वया देवि, दुग्धया सदृशं वचः ।
कुलं व्यपदिशंत्या च, धर्मज्ञे जनकात्मजे ॥ १० ॥
॥ ३०८ ॥ किंनु वक्ष्याम्यहं देवि, त्वयै वोक्त मिदं वचः॥
क्षत्रियै र्धार्यते चापो, नार्त शब्दो भवे दिति ॥ ११ ॥
॥ ३०९ ॥ सर्वै रे व समागम्य, वागियं समुदाहृता ।
राक्षसै र्दंडकारण्ये, बहुभिः कामरूपिभिः ॥ १२ ॥
॥३१०॥ अर्दितास्म भृशं राम, भवा न्न स्तत्र रक्षतु ।
होमकाले तु संप्राप्ते, पर्वकालेषु चानघ ॥ १३ ॥
॥३११॥ रक्षक स्त्वं सह भ्रात्रा, त्वन्नाथाहि वयं वने ।
मया चैत द्वचः श्रुत्वा, कार्त्स्न्येन परिपालनं ॥ १४ ॥
॥ ३१२ ॥ ऋषीणां दंडकारण्ये, संश्रुतं जनकात्मजे ।
संश्रुत्य च न शक्ष्यामि, जीवमानः प्रतिश्रवम् ॥ १५ ॥
॥३१३॥ मुनीना मन्यथा कर्तुं, सत्य मिष्टं हि मे सदा ।
अप्याहं जीवितं जह्यां, त्वां वा सीते सलक्ष्मणां॥१६॥
॥ ३१४ ॥ नतु प्रतिज्ञां संश्रुत्य, ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।
तद वश्यं मया कार्य, मृषीणां परिपालनं ॥ १७ ॥
॥३१५॥ परितुष्टोऽस्म्यहं सीते, न ह्य निष्टोऽनुशास्यते।
सधर्मचारिणी मे त्वं, प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ १८ ॥
॥ ३१६॥ इत्येवं मुक्त्वा वचनं महात्मा, सीतां प्रियां

मैथिलराजपुत्रीं। रामो धनुष्मा न्सह लक्ष्मणेन, जगाम रम्याणि तपोवनानि ॥ १६ ॥

भा०—सीताजी ने देखा कि जब से इस महा भयंकर दंडक वन में अपुन आये हैं तब से बहुत से ऋषि मुनि, रामचंद्र जी को बेढब राक्षसों के मारने को उकसा रहे हैं—इसका परिणाम कभी अच्छा न होगा—इसलिये एक समय मार्ग में रामचंद्र जी को प्रसन्न देख अति नम्रभाव से वे बोलीं कि महाराज मेरी इच्छा आपकी सेवा में कुछ विनय करने की है? रामचंद्र जी ने अति प्रेम से कहा कि प्यारी, बड़े आनंद की बात है—जो कहना चाहती हो सो तुम अवश्य निःशंक होकर कहो ॥

यह सुन सीताजीने प्रथम उनकी इस कृपा का बहुतसा धन्यवाद उनको दिया पश्चात् हाथ जोड़ कर वे अति मृदु, मधुर, व मनोहर वाणी से बोलीं कि महाराज, आप अपना सब ऐश्वर्य छोड़ कर तपस्वी के वेष में जो इधर जंगल में आए हैं उसका केवल हेतु यह है कि जहां आपका चित्त रमें वहां आप ख़ूब तपस्या करें परंतु जब से आपने चित्रकूट पर्वत छोड़ा है तब से आपकी वह तपस्या दिनों दिन शिथिल होकर तीरंदाज़ी की तैयारी अधिक बढ़ती देख रही हूं—कहां तप, और कहां शस्त्र, स्पष्ट ये दोनों परस्पर ऐसे विरुद्ध हैं जैसे दिन से रात, सो मुझे किसी तरह ठीक नहीं जान पड़ता, यह शस्त्रास्त्रों का झगड़ा, आप अयोध्या में गए पीछे चाहे जैसा विस्तृत करें, यहां उसकी क्या आवश्यकता—इस ठौर तो आप अपने वेष (तापस रूप) और देश (तपोवन) के अनुकूल बने वैसी तपस्या, व सत्संग, अच्छी तरह कर लीजिये—इसी में बड़े लाभ, बड़ी शोभा, और बड़ा यश व सुख है—और होगा।

और यदि इस के विरुद्ध आप चलेंगे तो बड़ी भारी हानि आप श्रीमानों की यहां होगी, आप के हृदय में मुझ दासी की यह प्रार्थना समाजाय, इस कारण एक अवसर की कथा और आप को सुनाए चाहती हूं—आशा है कि आप उसे भी चित्त लगाकर सुन लेंगे—क्योंकि मेरी इस शंका का मूल कारण केवल वही कथा है ॥

सो वह एक अति प्राचीन इतिहास इसप्रकार का है कि किसी परम रमणीय तपोवन में सत्यवान् नामी एक महा प्रसिद्ध तपस्वी बहुकाल से निरंतर अपनी तपस्या करते थे, एक दिन उन के आश्रम में इंद्रदेव ने आकर कहा कि महाराज मैं एक आवश्यकीय कार्यवश इधर उत्तर को जाता हूं उधर से लौट कर आने तक मैं यह अपनी अमौल्य तलवार आप के यहां रक्खे जाता हूं इसे आप कृपा करके सुरक्षित रखिये—इतना कह वह तुरंत निकल गया—उस दिन से वे बेचारे ऋषि, पराई धरोहर अर्थात् उक्त तलवार को कोई कहीं ले न जाय इस भय से उसे सार्वकाल अपने पास रखने लगे—एक क्षण को भी वे उसे कभी अपने शरीर से जुदा नहीं करते यदि कहीं बाहिर फल मूलादि के लिये जांय तो वहां भी वे उसे साथ ही रक्खें—होते करते उस तलवार के संयोग से मुनि सत्यवान का स्वभाव बहुत क्रूर व कठोर होगया, वे उसे जहां तहां जीवों पर क्रोधवश चलाने भी लगे, परिणाम उस का महा अनिष्ट यह हुआ कि उन की वह सब तपस्या भ्रष्ट होकर वे घोर नरक को गए ॥

इस लिये स्वामी के चरणों में शतशः प्रणाम करके अति दीन व लवलीन होकर प्रार्थना करती हूं कि आप इन ऋषि गणों के बहकाने से कहीं व्यर्थ की झमेल में न पड़जांय, अर्थात् यहां पर सिवाय तपस्या के और कुछ आप न करें—क्षत्रियों को तब शस्त्र हाथ में पकड़ना चाहिये जब वैसा ही कोई संकष्ट वा विपत् उन की प्रजा पर आपड़े—सो कोई प्रसंग हे महाराजाधिराज, यहां नहीं है—ऐसा मेरी तुच्छ बुद्धि में आता है सो मैंने स्त्रियों की समझ के अनुसार आप की सेवा में निवेदन किया आंगे आप स्वयं महा प्रवीण व समझदार पुरुष हैं स्वबुद्धि और अपने लघु भ्राता से सलाह करके जैसा ठीक समझें वैसा करें—यों कह वे चुप हो गईं—सो वह सब कथा यहां पर इस लिये लिख दी है कि हमारे यहां की सब स्त्रियें समझें कि पति के साथ पतिव्रताओं के बोलने की यह रीति हुआ करती है न ठांय ठांय ॥ आंगे की कथा १७१ के सफे में लिखे नोट में देखो ॥

(१)

॥ रामसंदेशः ॥

—:****:—

॥ ३१७ ॥ चतुर्दशसु वर्षेषु, निवृत्तेषु, पुनः पुनः ।
लक्ष्मणं मां च सीतां च, द्रक्ष्यसे शीघ्र मागतान् ॥ १ ॥
॥ ३१८ ॥ एव मुक्त्वा तु राजानं, मातरं च सुमंत्र मे ।
अन्याश्च देवीसहिताः, कैकेयीं च पुनः पुनः ॥ २ ॥
॥ ३१९ ॥ आरोग्यं ब्रूहि कौसल्या, मथ पादाभिवंदनं ।
सीताया मम चार्यस्य, वचना ल्लक्ष्मणस्य च ॥ ३ ॥
॥ ३२० ॥ ब्रूया च्चापि महाराजं, भरतं क्षिप्र मानय ।
आगतः श्चापि भरतः, स्थाप्यो नृपमते पदे ॥ ४ ॥
॥ ३२१ ॥ भरतं च परिष्वज्य, यौवराज्ये भिषिच्य च ।
अस्मत्संतापजं दुःखं, न त्वा मभि भविष्यति ॥ ५ ॥
॥ ३२२ ॥ भरतश्चापि वक्तव्यो, यथा राजनि वर्तसे ।
तथा मातृषु वर्तेथाः, सर्वास्वेवा विशेषतः ॥ ६ ॥
॥ ३२३ ॥ यथाच तव कैकेयी, सुमित्रा च विशेषतः ।
तथैव देवी कौसल्या, मम माता विशेषतः ॥ ७ ॥
॥ ३२४ ॥ तातस्य प्रियकामेन, यौवराज्य मवेक्षता ।

लोकयो रुभयोः शक्यं, नित्यदा सुख मेधितुं ॥ ८ ॥
॥ ३२५॥ माता च मम कौसल्या, कुशलं चाभिवादनं।
अप्रमादंच वक्तव्या, ब्रूया श्चैना मिदं वचः ॥ ९ ॥
॥ ३२६ ॥ धर्मनित्या यथाकाल, मग्न्यागारपरा भव ।
देवि देवस्य पादौच, देवव त्परिपालय ॥ १० ॥
॥ ३२७ ॥ अभिमानं च मानं च, त्यक्त्वा वर्तस्व मातृषु।
अनुराजान मार्यां च, कैकेयी मंब कारय ॥ ११ ॥

भा०—विदित हो कि रामचंद्र अयोध्यासे सुमंत्र मंत्री के रथ पर सवार होकर गंगातट तक गए थे, वहां से उन्होंने रथ सहित सुमंत्र को जिस समय लौटाया उस समय उससे कहा कि भाई सुमंत्र, अब तुम आनंद से अयोध्या को जाओ और वहां सब से प्रथम राजभवन में जाकर हमारे पिता जी व देवी कौशल्या व सुमित्रा व केकई आदि हमारी सब माताओं के चरणों में लक्ष्मण व सीता के सहित हमारा अति नम्रता के साथ जुदा २ प्रणाम, कह कर उनको हम तीनों का बहुत २ कुशल सुनाओ और उसी प्रकार उन सब का कुशल हमारी तरफ से पूछ कर कहो कि आपकी कृपा से तीनों वन में बड़े ही आनंद से हैं इसलिये आप कोई किसी प्रकार की चिंता न करें—चौदह वर्ष पूरे होते ही अवश्य हम तीनों आपकी सेवा में उपस्थित होंगे ॥

मंत्रिवर तुम इस विषय में हमारे पिता जी महाराज की अधिकतर ख़ातिरी ऐसी कर देना कि जिससे उनके हृदय का सब खटका अच्छी-तरह निवृत्त होजाय, पश्चात् इसके उनसे निवेदन करना कि महाराज, राम ने कहा है कि यदि अभीतक आपने भरत को न बुलाया हो तो अब बहुत जल्द बुलाकर आप उसको यौवराज्य पर स्थापन करदें आशा है कि जिस समय आप भरत को हृदय से लगाकर युवराज बनावेंगे उस समय आपको मेरा शोक इतना नहीं सतावेगा जितना कि सांप्रत है

और जब वहां पर भरत आजाय तब उससे याद रखकर भाई सुमंत्र, तुम मेरा यह संदेसा कहना कि एक तो अपने राज्य का काम वह धर्म से चलावे द्वितीय यह कि जैसी सेवा राजा की करे उसी प्रकार समबुद्धि व समदृष्टि व समभाव से वह अपनी हमारी और लक्ष्मण की माता को समझे और उनकी निष्कपट सेवा करके उनको अति प्रसन्न रक्खे और ठीक ऐसा ही बर्त्ताव वह अवश्य अपनी इतर सब साढ़े तीन सौ माताओं के साथ रखकर यशस्वी होवे, तथा राज्य के सब काम, पिता की सम्मति ले ले कर ऐसे न्याय से चलाये जावें जिससे अपने कुल की बात रहे और हमारे परमप्यारे भाई भरत के दोनों लोक सुधरें, क्योंकि न्यायपद, जैसा स्वर्ग का द्वार है वैसा ही वह नरक का भी द्वार कहा जाता है—इस लिये कभी कोई पुरुष इस काम में आलस्य वा प्रमाद वा असावधानी न करे ॥

इस के अनंतर विशेष वार्ता मेरी जननी कौशल्या जी से मंत्रिवर तुम यह कहना कि माता रामचन्द्र ने बहुत कह २ कर प्रथम यह कह दिया है कि तुम कभी भूल कर भी व्यर्थ मेरी खटका में अपना अमौल्य काल व शरीर नष्ट न करना मैं जहां रहूंगा वहां आप के चरणों की कृपा से अत्यंत प्रसन्न रहूंगा और बहुत जल्द अपना नियत समय पूरा करके तुम्हारी सेवा में आजाऊंगा द्वितीय यह कि तावत् वे (कौशल्याजी) यथा पूर्व दोनों काल धर्मपरायण रहकर अतिआनन्द से अपना अग्निहोत्र अवश्य चलाएं जावें तथा राजा जी के चरणों की सेवा को सदा वे देव के समान जानती रहें—तृतीय यह कि क्षोभ, ईर्षा, द्वेष, मत्सर, मान और अभिमान का परित्याग कर जैसी आज तक आप मेरी अन्य सब माताओं के साथ प्रेमभाव से वर्तती चली आई हो उसी प्रकार बल्कि उस से अधिक आनन्दप्रद वर्ताव तुम्हारा उन के साथ आगे बना रहे—चौथी प्रार्थना मेरी उन माता जी के चरणकमलों में बहुत २ प्रणाम के साथ मंत्रिवर आप यह प्रविष्ट करना कि वे अनेक यत्न करके हमारी केकयी माता को राजा जी के अनुकूल अवश्य ही कर देवें अन्यथा मुझे बड़ा भारी डर यह है कि उस बेचारी का कहीं परलोक न बिगड़ जाय, सो किसी प्रकार न हो ऐसी चिंता वे करें—आशा है कि जिस समय वे अ-

च्छी तरह यह समझावेंगीं कि पति की अप्रसन्नता से अवश्य ऐसी २ कुगति स्त्री जाति की होती है—तो अवश्य देवी केकयी की नींद साफ़ उचक जावेगी और उसी क्षण से वे अपने सब काम सद्गति पाने के योग्य करेंगी ॥

विदित हो कि यह एक लघु संदेसा ऐसा महा अद्भुत और अनमोल है कि इस पर से किरोड़ों की संपति निछावर करके फेंक देना कोई बड़ी बात नहीं है जो स्त्रियें और लड़के इस पर अपना ध्यान जमावेंगे वे इस भरतखंड के सत्पुत्रों में गिने जावेंगे ॥

---

(२)

॥ रामसिद्धांतः ॥

॥ ३२८ ॥ अस्वाधीनं कथं दैवं, प्रकारै रभिराध्यते ॥
स्वाधीनं समतिक्रम्य, मातरं पितरं गुरुम् ॥ १ ॥

॥ ३२९ ॥ यत्र त्रयं त्रयो लोकाः, पवित्रं तत्समं भुवि ।
नान्य दस्ति शुभा पांगे, तेनेद मभि राध्यते ॥ २ ॥

॥ ३३० ॥ देवगंधर्वगोलोका, न्ब्रह्मलोकां स्तथा परान् ।
प्राप्नुवंति महात्मानो, मातापितृपरायणाः ॥ ३ ॥

॥ ३३१ ॥ पिताहि दैवतं तात, देवताना मपि स्मृतं ।
तस्मा दैवत मित्येव, करिष्यामि पितु र्वचः ॥ ४ ॥

भा०—ऐन, राज्याभिषेक के दिन रानी केकयी की आज्ञानुसार रामचंद्र जी, वन को जाने के विचार से तैयारी कर रहे थे, उस समय अनेक लोगों ने निषेध करके कहा, कि महाराज, राजा साहब के तो आप जीव

प्राण हैं, उनको कभी आपका बनको जाना इष्ट नहीं इसलिये उन्हों ने इस विषय में श्रीमुख से अभीतक आप से कुछ कहा भी नहीं है और कदाचित् वे कह भी बैठें तो भी उनका वह कथन अनेक प्रकार से अग्राह्य समझना चाहिये—इस पर रामचंद्र जी ने हँसकर कहा कि भाई आप लोगों की यह समझ और सम्मति ठीक नहीं—राजा जी बिलकुल स्त्रीजित वा भ्रांत हृदय, नहीं किंतु पूरे समझदार और सत्य प्रतिज्ञ हैं अर्थात् अपने मुख से कही बात को वे सदा से जैसी सत्य करते चले आए हैं उसी प्रकार की यह भी एक बात, आज उनके सन्मुख उपस्थित होगई है—वे प्रेमवश जैसा मुझ से नहीं कह सके उसी प्रकार सत्यवश मुझे रोक भी, नहीं सके ॥

ऐसी दशा में कौन ऐसा साहसी है जो सत्य को पीछे हटा देने सक्ता है—विशेष कर रघुकुल की तो प्रसिद्धी यही है कि "प्राण जांय पै वचन न जांई" और यदि पुत्रधर्म की तरफ़ दृष्टि की जाय तो भी यही सिद्ध होता है, कि मैं अवश्य, बन को जाकर अपने पिताजी को इस महा संकष्ट से छुड़ाऊं अतः इस समय मुझे यह भी उचित नहीं कि मैं उनके कथन की मार्ग प्रतीक्षा करूं—और यदि करूं तो मेरी सत्पुत्रों में गणना नहीं हो सक्ती क्योंकि सर्वोत्तम पुत्र, वही कहाता है जो बिना ही कहे पिता की इच्छा और प्रसन्नता के सब काम करे—जो कहे पर करता है वह मध्यम, और कहे पर भी न करे वह मल (विष्ठा) कहाता है—जिन चांडाल और मदांधों को माता पिता और गुरू की महिमा वा माहात्म्य नहीं मालूम, वा जानबूझ कर जो कोई कुपात्र अंधे वा बहिरे बनते हैं, वे घोर नरक में पड़ते हैं ॥

सत्य तो यह है कि इन तीनों (माता पिता और गुरू) के बराबर संसार में मनुष्यों का हितकारी कभी कोई चौथा नहीं हो सक्ता—परन्तु महा शोक की बात है कि बहुत से भ्रष्टबुद्धि, इस पर ज़रा भी विचार नहीं करते परंतु जगत् के सब सुखों को तो वे अवश्यमेव लूटा चाहते हैं—कहो कैसे वे मिलें ? कहीं स्वप्न के मनोरथ भी सिद्ध हुए हैं—कभी नहीं ? अतः "यत्र त्रयं त्रयो लोका" आदि मेरे कहे वचनों पर अवश्य विश्वास

किया जाय–सत्य समझो वे पशु से भी गए बीते हैं जो अपने हाथ के इन तीनों प्रत्यक्ष देवों को छोड़ कर स्वार्थ सिद्धी के लिये, अन्य अप्रत्यक्ष देवों की उपासना करते हैं–और तुम्हारे लिये तीनो देव हैं तो यही हैं, तीनों वेद वा लोक हैं तो यही हैं और तीनो अग्नि हैं तो यही हैं–जो इस महा पवित्र व अनुपम हितकारक अपनी देवतात्रयी को उन की जीवित दशा तक संतुष्ट रखते हैं उन का सब तरह मनुष्य जन्म सफल होकर उन्हे अवश्य सब उत्तमोत्तम लोकों की प्राप्ति होती है, ऐसी यह देवतात्रयी है और इन तीनों में अधिक महिमा पितृ चरणों की है * अतः कुछ हो मैं तो भाई अवश्य, अपने पिता की आज्ञा का प्रतिपालनही करूंगा ऐसा स्पष्ट उत्तर सब को देकर जैसा उन्हों ने कहा वैसा करभी दिखाया- इन्हीं कारणों से हमारे देश में श्री रामचन्द्र जी ···राज, आज तक सर्वत्र पूजे जा रहे हैं ॥

जो रामचन्द्र के सच्चे भक्त हैं— जिन की सत्यधर्म पर सच्ची और अचल श्रद्धा है व जिन को सत्पुरुष बनने व कहाने का सचमुच उत्साह है तथा जिन को नरजन्म की क़ीमत वा कुछ क़दर मालूम है–वे ठीक इस सिद्धान्त के अनुकूल चलकर अपने दोनों लोक अवश्यमेव बनावेंगे ॥

——*****——

* ॥ इसी प्रकार मनुवचन भी सुन लो ॥
॥ यं माता पितरौ क्लेशं, सहेते संभवे नृणाम् ॥
॥ न तस्य निष्कृतिः शक्या, कर्तुं वर्षशतै रपि ॥ १ ॥

वे कहते हैं कि हे मनुष्यपुत्रो तुम्हारे माता पिता तुम्हारी उत्पत्ति और पालन में जो क्लेश सहते हैं उसका बदला वास्तव्य में सैकड़ों ही वर्ष से नहीं हो सक्ता ऐसा उन का ज़बर्दस्त ऋण अपने सिर पर समझ कर सब लड़के लड़कियों को उचित है कि वे निरंतर अपने माता पिता को उन के ज़िन्दगी भर अति प्रमुदित रक्खें तभी उन के जन्म की सफलता हो सक्ती है अन्यथा कदापि नहीं ॥

(३)

॥ रामानुरागः ॥

॥३३२॥ प्राप्स्यामि यानद्य गुणान्, कोमेश्व स्तान् प्र-
दास्यति। अपक्रमण मेवातः, सर्व कामै रहं वृणे ॥१॥
॥ ३३३ ॥ पुरं च राष्ट्रं च महीच केवला, मया विसृष्टा
भरताय दीयतां । अहं निदेशं भवतो नुपालय, न्वनं
गमिष्यामि चिरा यसेवितुं ॥ २ ॥
॥३३४ ॥ मया विसृष्टां भरतो मही मिमां, सशैलखं-
डां सपुरोपकाननां । शिवासु सीमा स्वनुशास्तु के-
वलं, त्वया यदुक्तं नृपते तथास्तु तत् ॥ ३ ॥
॥ ३३५ ॥ न मे तथा पार्थिव दीयते मनो, महत्सु
कामेषु न चात्मनः प्रिये । यथा निदेशे तव शिष्ट-
संमते, व्यपेतु दुःखं तव मत्कृते नघ ॥ ४ ॥
॥ ३३६ ॥ तदद्य नैवा नघ राज्य मव्ययं, न सर्व
कामा न्वसुधां न मैथिलीं । न चिंतितं त्वा मनृतेन
योजय, न्वृणीय सत्यं व्रत मस्तु ते तथा ॥ ५ ॥
॥ ३३७ ॥ फलानि मूलानि च भक्षयन्वने, गिरींश्च
पश्य न्सरितः सरांसि च । वनं प्रविश्यैव विचित्र
पादपं, सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः ॥ ६ ॥

भा०—श्री रामचन्द्र जी महाराज अपनी वनयात्रा के समय, महाराजा दशरथ के सन्मुख हाथ जोड़कर परम विनीत भाव से बोले कि भगवन् आपका यह चरणसेवक यात्रा के अर्थ तैयार हो आया है—जो लाभ व आनंद आज मुझे इस यात्रा में सूझ पड़ते हैं वे यहां मुझे राज्योपभोग में मिलना महा असंभव हैं—इसलिये मैं सब छोड़ छांड़कर उधर जाने का निश्चय, और तैय्यारी, बड़े ही आनंद के साथ करके इस समय आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं—कृपा करके मुझे उधर जाने की आज्ञा समर्पण कीजिये, आपकी आज्ञा के प्रतिपालनार्थ मैं बड़ी ख़ुशी से १४ वर्षतक आरण्य सेवन करने को अभी जाता हूं ॥

इधर आप मेरा छोड़ा हुआ संपूर्ण राज्यपाट आदि ऐश्वर्य, जल्द मेरे परम प्यारे भाई भरत को देने की तयारी कीजिये वह उसे पावे और जहां तक अपने राज्य की सुखदायक चारो सीमा नियत हैं वहां तक वह बड़ी ख़ुशी और सावधानी के साथ सब काम काज चलाकर उसका उपभोग करे—अर्थात् आपने मेरी माता केकयी को जिस प्रकार दो वरदान दिये हैं उसी प्रकार हम दोनो भाई महा आनंद के साथ अपने २ मार्ग में चलकर संसार में भले कहावें ॥

महाराज मैंने जन्मसे लेकर आज तक कभी अपने कोई ख़ास छोटे वा बड़े काम, ऐसे नहीं रक्खे कि जिनमें मेरा मन फँसा हो वा आज उनके छोड़ने का कुछ भी खेद मुझे होता हो, सारांश मेरा चित्त आपकी आज्ञा का प्रतिपालन व आपकी प्रसन्नता रखने के विचार में ही सदा उत्कंठित रहा है—इसलिये आपको मेरी जुदाई का शोक व दुःख कदापि न रहना चाहिये—शपथ पूर्वक कहता हूं कि मुझे राज्यपाट वा पृथ्वी वा सीता वा कोई मित्रादि अन्य पदार्थ, यहां पर ऐसा इष्ट वा प्रिय नहीं जैसा कि आपका सत्यव्रत सिद्ध रहना इष्ट है अर्थात् सदैव परमात्मा से मैं यही प्रार्थना करता हूं कि वह आपका सत्यव्रत निरंतर निर्विघ्न चलाएं जांय—महाराज मैं जिस वन वा जंगल को अब जाता हूं वहां के एक से एक बढ़कर वन, उपवन, नदी, पर्वत, व भांत २ के वृक्षादिकों को देखता हुआ उनके अमृतोपम फल मूलादि का भक्षण करूंगा तथा चित्र विचित्र सरोवरों

का निर्मल जल पीकर सर्वत्र अति आनंदित रहूंगा, अतः वारंवार परम विनय पुरःसर हाथ जोड़ आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप, अपने अंतःकरण में यत् किंचित् भी मेरा शोक वा चिंता वा खेद अब अवशिष्ट न रक्खें बल्कि बने उस रीति सदैव सर्व प्रकार से आप अति प्रमुदित रहें—तथा निरंतर आपका सर्वत्र विजय होय, विजय होय विजय होय ॥

इस प्रकार पिता के चरणों में अनुराग अर्थात् सच्चा प्रेम रखने वाले लड़के सत्पुत्र कहाए और कहावेंगे ऐसा सब होनहार लड़के निश्चय समक्ष स्तुति प्राप्त करें ॥

॥ इति रामायणांशसार द्वितीयखंडः समाप्तः ॥

॥ सूचना ॥

इस भांत अपने पुत्रों को सदुपदेश करती हुई स्त्रियें, कहीं खुद भूल में न पड़जांय इस कारण उनको सावधान करने के विचार व शिष्ट रीति के अनुसार अपने असली आरंभित विषय की एक सर्वोत्तम कथा यहां पर पुनः एक वार और सुनाकर इस पुस्तक की परिसमाप्ति करता हूं ॥

॥ अथांतिमोदाहरणम् ॥

॥३३८॥ भार्यापुत्रो थ दुहिता, सर्वमात्मार्थ मिष्यते ।
व्यथां जहि स्वबुध्यात्त्व, महं यास्यामि तत्र च ॥ १ ॥

॥ ३३९ ॥ एतद्धि परमं नार्याः, कार्यं लोके सनातनं ।
प्राणानपि परित्यज्य, यद् भर्तु हिंत माचरेत् ॥ २ ॥

॥ ३४० ॥ तत्र तत्र कृतं कर्म, तवापीदं सुखावहं ।
भवत्यमुत्र चाक्षय्यं, लोके स्मिंश्च यशस्करं ॥ ३ ॥

॥३४१॥ परित्यक्तः सुतश्चायं, दुहिते यं तथा मया ।
बांधवाश्च परित्यक्ता, स्त्वदर्थेजीवितं च मे ॥ ४ ॥
॥३४२॥ यज्ञै स्तपोभि र्नियमै, र्दानै श्च विविधै स्तथा ।
विशिष्यते स्त्रियो भर्तु, र्नित्यं प्रियहिते स्थितिः ॥ ५ ॥
॥ ३४३ ॥ तदिदं य च्चिकीर्षामि, धर्मं परमसंमतं ।
इष्टं चैव हितं चैव, तव चैव कुलस्य च ॥ ६ ॥
॥३४४॥ इष्टानि चाप्य पत्यानि, द्रव्याणि सुहृदः प्रियाः ।
आपद्धर्म प्रमोक्षाय, भार्या चास्ति सतां मते ॥ ७ ॥
॥३४५॥ तत्कुरुष्व मया कार्यं, तर्पयात्मान मात्मना ।
अनुगृह्णीह मा मार्ये, सुतौ मे परिपालय ॥ ८ ॥

भा०—विदित हो कि यह महाभारत की कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है कि पांडवों के चचेरे भाई, जो कौरव कहकर प्रसिद्ध थे—वे, पांडवों के श्रेष्ठ गुणों से सदा जलते रहते थे, अतएव हमेशा वे यह भी चाहते थे कि इन को कोई दग़ा करके मार डालें जिस से कि निश्चिंती हो— इस विषयक बहुत से उपाय भी वे कर चुके थे, लेकिन उन का कोई उपाय अब तक सिद्धी को नहीं पहुंचा था—सोचते २ इन्हों ने कहीं दूर जंगल में एक कारीगर से कहकर बहुत उत्तम एक ऐसा लखेरा मकान बनवाया कि जिस में सोते हुए पांडव आग लगाकर बात की बात में भस्म कर दिये जांय वहां वे बेचारे इन के कहे अनुसार भुलावे में आकर एक दिन संध्या के समय पहुंच भी गए, और कौरवों के संकेतानुसार अर्धरात्र पीछे उस मकान में आग भी लगादी गई थी और उस में वे पांचों भाई पांडव मारे जाने की ख़बर भी सर्वत्र हा हा कार के साथ फैल गई थी—परन्तु इस होनहार कपट की ख़बर इन के एक प्रकार के सौतेले चचा विदुर जी को प्रथम में से ही लग चुकी थी अतः उन्हों ने बहुत

दूर से उस स्थान तक एक सुरंग मार्ग बना रक्खा था, उस राह से वे आग लगने से पहले ही इन पांडवों को निकाल कर अलग कर गए थे इस के अनंतर वे अपनी माता कुंती सहित पांचो भाई, छुपे २ बहुत दूर आड़ में पड़े हुए किसी महा अप्रसिद्ध गांव में किसी एक परमदयालु ब्राह्मण के घर जा बसे ॥

तहां एक दिन कुछ रात गए पीछे पड़ोस के किसी एक ब्राह्मण के घर हका हक हाय दैया होने लगी—उस कुहराम को सुन, चुपका कुंती माता अपने बिस्तर से उठकर उस घर तक जा पहुँची और दूर से ही वे अनुसंधान करने लगीं कि हा दैव अकस्मात् इन बेचारों पर यह क्या विपत्ति आ गुज़री—उस समय जहां ये जाकर खड़ी हुई थीं वहां और भी दो चार दयालु बुढ़िया स्त्रियें आगईं उन के मुख जान पड़ा कि कोई बक नाम का असुर हमारे इन आस पास के ग्रामों में बड़ी हानि मचाए रहता था ॥ २७ ॥ लाचार उस से बहुतसी मिन्नत करके उसकी यह व्यवस्था यहां पर कर दी गई है कि हम तुझे गांव के बाहिर अमुक पर्वत पर इस प्रकार सामग्री तेरे भोजन के लिये उपस्थित कर दिया करेंगे, उस में तुझे एक मनुष्य भी बराबर मिला करेगा, सो सब तूं भक्षण करके सीधा लौट जाया कर—तब से बारी बांध दी गई है—जिस दिन जिस घर की बारी आ पड़ती है उस दिन उस घर से किसी एक मनुष्य को लेकर

॥ २७ ॥ सूचित किया जाता है कि अपने यहां के आधुनिक संस्कृत ग्रंथों की कथाओं में बहुत सी शंका हुआ करती हैं तदनुकूल वे यहां भी कुछ कथाओं में लिपट आई हैं उन की निवृत्ति के अर्थ कुछ विचार इस ग्रंथ की भूमिका में प्रथम से ही लिख दिया है उसका स्मरण समस्त, सत्पुरुष, यहां वैसे हर मौके पर अवश्य कर लिया करें तथा यह भी समझें कि प्रत्येक उदाहरण सर्वत्र सर्वांग संपन्न नहीं मिलता अतः विद्वान् लोग उस के मुख्यार्थ पर अपनी पूर्ण दृष्टि रखते हैं अर्थात् उतना सिद्ध हो जाना परमावश्य समझते हैं वह हुआ कि सब हुआ वे जान लेते हैं ऐसा शिष्ट सांमदाय है ॥

ग्रामाधीश उसे वहां पहुंचाता है—उस व्यवस्था के अनुसार आज इस बेचारे ब्राह्मण की ओसरी है इस लिये वह और उस के स्त्री पुत्रादिक हा हा कार मचा रहे हैं ।

बहनी अब अधिक दुःख और कष्ट की बात इस ठौर यह है कि इस महा गरीब व दरिद्र ब्राह्मण के घर में उस की तरुणा स्त्री के सिवाय एक कन्या और एक पुत्र है उन दोनों की उमर बहुत ही कम है अतः इस पुरुष के मरे पीछे उन तीनों का पालन, आँगे होना अति कठिन है—इस प्रकार बात चीत इन की हो रही थी कि इतने में वे सब रो पीट कर कुछ थंमे और उस ब्राह्मण की स्त्री अपने पति से महादीन स्वर से यह कहने लगी कि महाराज सिर पर आये हुए इस संकष्ट में आप के चले जाने से केवल आप की ही मृत्यु नहीं किंतु आप के कुल भरे का विनाश हो जाने वाला है अर्थात् बहुत जल्द तड़फ २ कर हम तीनों के प्राण अवश्य अभी चले जावेंगे—इस लिये परम विनय और नम्रता के साथ आप के चरणों में वारंवार प्रणाम करके जो प्रार्थना इस समय मैं करती हूं उस को यदि आप कृपा करके मान लेवें तो अवश्य मेरे ऊपर आप का बड़ा ही उपकार और अनुग्रह हो, क्योंकि मेरी महा निकृष्ट समझ में एक के पीछे संपूर्ण कुटुंब का नाश कर लेना किसी तरह ठीक नहीं जान पड़ता।

सो वह तुच्छ बुद्धि, इस दासी की हे प्राणप्रिय यह है कि आप स्वयं उस काल के मुख से बचकर मुझे उस ठौर जाने की आज्ञा देवें—मैं बड़ी ख़ुशी और आनन्द से वहां जाने को अभी सन्नद्ध हूं—इसी में मेरे शरीर और मेरे जन्म की सफलता और अपने कुल व कुटुंब की अभिवृद्धि है—हाल में मेरे मरण से जो कुछ क्लेश वा विपत्ति होगी वह सब आप का द्वितीय विवाह होगए पीछे तुरंत मिट जावेगी, उसी दिन आप फिर तीन के चार और आँगे उसके न जाने कितने अधिक न दीखने लग जावेंगे—संसार में क्या भार्या क्या पुत्र अर्थात् वे सब, केवल आत्महितार्थ ही तो होते हैं—सो न सधा तो वे स्त्री पुत्र नहीं किंतु ईंट पत्थर हैं—उनमें मैं अपनी गिन्ती नहीं कराना चाहती, मेरा तभी अहोभाग्य कहावेगा जब मेरे शरीर और प्राणों से आपकी आत्मा का बचाव होगा, क्योंकि स्त्रीधर्म

में स्पष्ट ऐसा ही कहा है कि वह पति की रक्षार्थ अपने प्राण तक लगा देवे, तथा आप स्वयं सोचिये कि "आत्मानं सततं रक्षेत्, दारै रपि धनै रपि,, ऐसी आज्ञा पुरुष के लिये जो कही है उसका अर्थ यही है वा कुछ और कि पुरुष, अपनी स्त्री के प्राणों तक को खर्च में डालकर अपने तईं बचावे, अर्थात् ठीक शास्त्र के अनुकूल यह मेरा सब कथन है—और वैसा करना आपका भी परमधर्म है ॥

महाराज मेरी यह प्रार्थना मानलेने से मेरे दोनो लोक सुधर जाने वाले हैं—कहिये ऐसी मौत मुझे कहां मिले जिससे कि मेरा सुयश के साथ इस धरती पर तौलों नाम रहे जौलों कि चंद्र सूर्य प्रकाशमान हैं—सोचें तो यह मरनां नहीं, किंतु मेरा अमर होजाना है—हे प्राणवल्लभ, नाना प्रकार के बड़े से बड़े लाखों यज्ञ, दान, तप, तीर्थ और नियम व व्रतादि करने से स्त्री की जाति को जो लाभ होना असंभव हैं वे सब मुझे आज आप के चरणों की कृपा से अभी प्राप्त हो सक्ते हैं—इसलिये मैं दुख से नहीं किंतु महा आनंद से अपने प्राणप्रिय पुत्र व कन्या व अपने सब स्वजनों और अपने जीवन को इस समय आपके सुखार्थ छोड़ती हूं—इससे इस पुत्र का व कन्या का व मेरा व आपका और आपके श्रेष्ठ कुल का हित ही हित है—हे प्राणप्रिय पतिनाथ, सब सच्चे विद्वानों का स्पष्ट सिद्धांत यही है कि स्त्री, पुत्र, मित्र और दौलत आदि जितने प्राणप्रिय पदार्थ संसार में हैं वे सब इसीलिये हैं कि उनसे अपनी विपत्ति दूर की जाय, सो समय आपके सन्मुख समुपस्थित है—इसलिये हे दीनदयाल आप अपना पूर्ण अनुग्रह करके अतिसत्वर मेरी आत्मा से अपनी आत्मा को बचावें और मेरे परमप्यारे इन दोनों बच्चों का आप अच्छीतरह परिपालन करके सदा प्रमुदित रहें और सर्वत्र विजय पावें—ऐसी मेरी अति प्रबल मनोकामना है—उसे आप पूर्ण करें ॥

यहां तक हुई सब बातें कुंती माता ने अपने कानों सुनी और प्रभुकृपा से उनका उसी क्षण चित्त उमड़ आया, तुरन्त उन्हों ने जंज़ीर खटकाकर उस के किवाड़े खुलाए और उस स्त्री को बड़े प्रेम से गलें लगाकर माता के समान मिलीं और बहुत फूट २ कर रोईं तथा बोलीं कि बेटी धन्य है तेरा

जन्म, तुझ ऐसी पतिव्रता जगत् में हैं तभी, यह धरती टिकी है-तेरी ऐसी बुद्धि, ज्ञान, विचार, धीरज, नम्रता, शील और विद्या जगत् की सब स्त्रियों में परमात्मा दिखावे-तूने अपने समस्त सद्गुणों से त्रिलोकी जीतली कहूं तो मिथ्या न होगा संसार में कौन ऐसा महापातकी होगा जो तेरे पातिव्रत और साहस व सुशीलादि दिव्य गुणों की प्रशंसा न करेगा जिस असुर का नाम रूप सुन दूसरी स्त्रियें, रातभर थरथरा कांपें उसके सामने जाने को आज तूं आधी रात लांग बांध रही है ॥

धन्यातिधन्य है तेरा यह पतिव्रत धर्म, जिस के सन्मुख तूने इन अपने बारे बच्चों का मोह तृणवत् तुच्छ करके पति के जीवनार्थ अपने प्राणों को निछावर कर देना चाहा— बेटी मैंने तेरी इस समय की एको एक बात अपने कानों सुनीं इस लिये मेरा जीव प्राण तेरे लिये बे- हद उमड़ रहा है—यदि तेरी ऐसी सुलक्षणा स्त्री, अपनी पूरी उमर भर पावे तो सचमुच इस जगत् का बड़ा ही उपकार हो—इस महाशुभ विचार से निश्चय पूर्वक तुम दोनों स्त्री पुरुषों से कहती हूं कि अब तुम दोनों अपने प्यारे बालकों को गलें लगा कर अच्छी तरह सुखकी नींद जन्म भर सोओ तुम पर आई हुई बला का बन्दोबस्त, मैं अभी अपने स्थान पर जात जात करें देती हूं—तब सोऊंगी बीच नहीं—परमात्मा की कृपा से आज मेरे पांच सच्चे आज्ञाकारी पुत्र हैं उन में से अभी एक को लाकर तुम्हारे द्वार पर बिठालें देती हूं-जब कोई तुम को बुलाने आवेगा तभी वह उस के साथ चुपचाप उठकर चला जावेगा अर्थात् तुम को खबर भी न पड़ेगी और सब काम हो जावेगा।

यह सुन वे दोनों कुंती माता के चरणों में औंधे होकर गिर पड़े तथा हाथ जोड़कर वे उन की इस महा विलक्षण करुणा का अनेक विध धन्यवाद करके बोले कि माता, जो स्त्री अपने पति वा पुत्रों के लिये अपने प्राणादि देवे, तो उस स्वाधिन की तारीफ़ ही क्या, सच्ची प्रशंसायोग्य तो यह आप की मूर्ति है जो बिना ही जान पेहचान इतनी रात गए दौड़ीं और इस प्रकार असीम दया विचार रही हैं कि जिस की तारीफ़ ही नहीं होसक्ती-खास अपनों के लिये ऐसा कोई नहीं करता और यदि उनके

लिये, अथवा लोभवश किसी भाग्यवान् की प्रसन्नतार्थ, कोई ऐसा करे तो कर भी गुज़रे परंतु मुझ ऐसे महा ग़रीब अनाथ परदेसी पर इतना प्रेम दर्शानेवाला तो संसार में माता जी सर्वथा अनमिल है—हमको रह २ कर आपके इस अलौकिक कृत्य का तब से बड़ा ही विस्मय हो रहा है आपके इतने ही उपकार से हम अति तृप्त हैं इससे अधिक आप अब और कुछ न कहें और न करें—हमको अपनी आईहुई विपत्ति, बर्न उस रीति खुद भोग लेना उचित है—परंतु अपने जीवनार्थ आपके किसी पुत्र पर आपत्ति बिताना किसी तरह इष्ट नहीं, बल्कि उसका अत्यंत असह्य खेद है—परमेश्वर् आपको और आपके सब पुत्रों को सदा सब तरह सुखी रक्खे सो अच्छा है क्योंकि अपना ऐसा प्रेम, और प्राण, सबका जानना चाहिये ॥

तब कुंती ने कहा कि बेटा सज्जनों का चित्त, धर्म और बातें ऐसी ही होतीं हैं जैसी कि इस समय तुम्हारी देखती व सुनती हूं परंतु विदित रहे कि मेरी और मेरे पुत्रों की समझ तो साफ़ २ यह है कि "धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्," अपना धन और अपना जीवन परहित में लगा देना ही ठीक है—क्योंकि बचेंगे तो वे वैसे भी नहीं—इसलिये अब अधिक हट इस पर बेटा तुम कुछ मत करो, जिस दीनदयाल ने तुम पर दया की, वह मेरे पुत्र पर भी यदि ऐसी ही अपनी कोई कृपा कर दिखावे तो क्या आश्चर्य है—ऐसा मुझे पूर्ण निश्चय है वैसा तुम भी पूर्ण भरोसा अपने हृदय में रक्खो और सुंदर सुख से कुछ खा पीकर बेटा आराम से अब तुम सब सोओ—तुम्हारे घर यह ऐसी एक पतिव्रता देवी है कि जिसके प्रभाव से केवल तुम्हारी ही क्या किंतु इस देशभर की तमाम विपत्तियां सदा दूर होती रहेंगी अतः ऐसी स्त्री को हाथ से खोदेना किसी तरह ठीक नहीं ॥

परिणाम में वैसा ही सब हुआ अर्थात् उस पर्वत पर पहुँचते ही महाबली कुंती पुत्र भीमसेन ने उस बकासुर के गदरा चीरकर उसकी धज्जियां उड़ादीं, जिससे उस देश के सैकड़ों ग्रामों की प्रजा सदैव के लिये सुखी होगई—उसी दम घर २ आनंदमंगल के बाजे बजने लगे और चहुँओर

इन पांचो पांडवों तथा इनकी माता कुंती और इस प्रशंसित पतिव्रता देवी का सुयश, सब स्त्री पुरुष, सावित्री के समान गाने लग गए तथा सैकड़ों ही स्त्री पुरुष, उस दिन से प्रतिदिन इनके समीप आ २ कर इनकी देवता के समान पूजा व सत्कार करने लगे ॥

ऐसा यह पतिव्रतधर्म है—इसलिये उस की महिमा यहां वारंवार इतनी लिख जताई और उस के प्रत्येक प्रसंग में और भी अनेक प्रकार के सर्वोत्तम उपदेश यहां ठौर २ किये गये हैं—जो स्त्रियें और हमारी प्यारी बहू बेटीं इस पुस्तक के हरएक लेख पर अपना चित्त अच्छी तरह लगा कर उन के अनुकूल चलेंगी वे अवश्य व निःसंदेह अपने होनहार समस्त पुत्र पुत्री सहित जगत् के समस्त सुखों को सदा आनन्द मंगल के साथ भोगेंगीं और चंद्रिका के समान उनकी विशद सत्कीर्ति, निरंतर सर्वत्र सब को सुखदाई होगी सो पृथक् ॥ शुभं भूयात्—शुभं भूयात्—शुभं भूयात्—पुनः पुनः ॥

हमारे समस्त देश की सब परम प्यारी बहू बेटियों को उन का विवाह उन का घर द्वार और यह सद्ग्रंथ, सदा शुभ हो, शुभ हो, शुभ हो—ऐसा परमेश्वर से वारंवार आशीर्वाद मांगकर परिणाम में थोड़ा सा निवेदन उन के घरवालों से करना परमावश्य है सो करता हुआ इस ग्रंथ की उसी ठौर पर परिसमाप्ति करता हूं ॥

॥३४६॥ अश्वः शस्त्रं शास्त्रं, वीणा वाणी नरश्च नारी च। ॥ पुरुष विशेषं प्राप्य, भवंति योग्याऽयोग्याश्च ॥१॥

॥ ३४७ ॥ सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणःसुतः, सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः ॥ सुचिंत्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं, सुदीर्घकालेपि नयाति विक्रियां ॥ २ ॥

विदित हो कि ऊपर लिखे श्लोकों का अर्थ यह है कि घोड़ा, हथि-

यार, शास्त्र, वीणादि वाद्य, बोल चाल, व नर व नारी अर्थात् ये सातों पदार्थ, वैसे ही भले वा बुरे हो जाते हैं जैसे के कि हाथ वे पड़ते हैं अर्थात् उन का बनाव वा बिगाड़ बिलकुल पुरुषों के आधीन है, अतः नोट नंबर ७ में लिखी सुचना के अनुसार यदि हमारे सर्व बन्धुगण स्वयं सावधान होकर अपनी बहू बेटी और स्त्री पुत्रों का सुधार चाहेंगे तो अवश्य वह अति सत्वर ऐसा सर्वोत्तम हो जावेगा कि फिर कभी चिरकाल तक उस में किसी तरह का भी विकार उत्पन्न न होगा ॥

सोचो तो सही क्या थे और क्या होगए अर्थात् जिनके पूर्व पुरुषा संपूर्ण भूमंडल भर का राज्य और सुधार करें उनकी सन्तान अपना राज्य, पाट, धन, धरती और धर्मादि सब ऐश्वर्य गमाकर यहाँ तक हतवीर्य व मतिहीन होजांय कि जिनसे अब अपने स्त्री पुत्रादिकों का भी सुधार न हो, तो कहो बाक़ी रहाही क्या ? अर्थात् जब कि हम घर के स्त्री पुत्रादिकों के सुखों से भी वंचित होजांय तो हमारा समस्त जीवन व्यर्थ होगया वा नहीं ? अस्तु हुआ सो हुआ अब भी चेतो और स्वदेश के सब कुसंस्कारों को एकदम से मिटाकर बने उस रीति अपने खोए हुए सब सत्वों को जल्द, अपने हाथ करो तथा निश्चय रक्खो कि जो कुछ अपने देश के सुधार में तुम अपने शुद्धांतःकरण से पुरुषार्थ करोगे उसमें अवश्य वह अनन्तशक्ति परमेश्वर, तुम्हारी पूर्ण सहायता करेगा—तथास्तु तथास्तु तथास्तु—किं विशेषेणेति शम् ॥

॥ ३४८ ॥ चंद्रेषुनिधिभूम्यब्दे, श्रावणेथ सितेदले ॥
॥ दशम्यां शनिवारे वै, ग्रंथोयं पूर्णता मियात् ॥

अर्थात् श्रावण शुक्ला १० शनिवार संवत् १९५१ विक्रमी अर्थात् ११ अगस्त सन् १८९४ ई० में यह सद्ग्रंथ नगर फ़र्रुख़ाबाद में परमान्द पूर्वक समाप्त हुआ समझो ॥

—:***०***:—

ओ३म्

॥ विश्वानि देव सवित दुरितानि परासुव ॥
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

॥ ओ३म् ॥

॥ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

इति.

॥ विनायक मुकुन्दाख्यौ, लक्ष्मीयौ यस्य द्वौ सुतौ ।
॥ मुद्रांकितं सकुरुते, जानकी हरिजः कविः ॥ १ ॥